

॥ शासनाधिपति-श्रीमहावीरस्वामिभ्यो नमो नम ॥

॥ श्रीमदागमाधत्तारधीआनन्दनागरदही देरेभ्यो नम ॥

॥ श्रीमदीरमिश्रगणेशिष्याणुद्धरशीयश्रोदेवप्रणीत-विवरणसमेत-संक्षामणक च

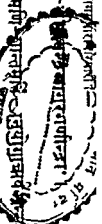
श्रीपादिकसूत्रम् ॥

शुनि गंगार

—

सुशोधका—सम्पादकाय—त्रैनागमाधत्तारगमोदत्त—मकलागमोदत्त—

श्रीआनन्दसागरसूरीश्वराणां विद्वदिनेया—पन्त्यासप्रवराः—



आगमोदत्तकानन्दसागरद्वीश्वराणां आद्यादिप्यस्त स्वर्गस्थ-य चारित्र्यवृद्धामणि-शान्तभूषि-त्रयुगप्रभव-श्रीमद्विष्णुसहस्रनामसमिती-
प्रवरश्रीविजयसागरगणिवर्याणां चरणारविन्दचञ्चरीकमुनिश्री-लडिधसागरकृतानवरकन्दर्पपुष्प-द्वय-भारतीय-
प्रोष्ठसितेन 'हुणाबाडा' इति ग्रामवास्तव्य-श्रेष्ठिधर्मचन्द्रात्मजशान्तिचन्द्रेण आद्वयमार्गानिस्वभावाध्यापिकपद्याइस्सुत्यर्थ
विक्रम-संवत्-२००६ अक्षयतीया] सादरमुपसंहारप्रियतेऽय ग्रन्थः । [धीर-संवत्-२०२६

शुद्धिपत्रकम्

| पत्राङ्क | पंक्ति | अशुद्ध |
|----------|--------|--------------|
| १ | १० | ०ष्टानानीति |
| ३ | १० | प्रतिकण |
| ३ | १२ | ०रयार चिन्त० |
| ४ | १ | अदावरणय० |
| ४ | १ | सज्जय भाषा |
| ४ | ९ | पणरसिण्ह |
| ५ | ९ | आयभ्रका० |
| ५ | १० | इयरेय |
| ७ | ७ | सिद्धस्ते |
| ७ | १२ | पच्छामा ९ |
| ८ | १ | भवन्ति |
| ८ | ४ | १ |
| ८ | ७ | द्रव्यलिङ्ग० |
| ८ | ६ | ०आरक० |
| ९ | ७ | सदेय |

| शुद्ध |
|---------------------------|
| ०ष्टनानीति' |
| प्रतिक्रमणं |
| ०रयार चिन्तित (चिन्तन्ति) |
| अदावणय० |
| सज्जयभासाप |
| पणरण्ह |
| आयदयका० |
| इयरेयि |
| सिद्धास्ते |
| पच्छामा १० |
| भवति |
| ७ |
| द्रव्यलिङ्गम्० |
| ०आरक० |
| ०तदेय |

| पत्राङ्क | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|----------|--------|----------|--------------|
| १ | ९ | ययहु | य यहु |
| १० | ११ | भणीय० | भणिय० |
| ११ | ३ | स वेदनम० | स पवा वेदनम० |
| १२ | ४ | ०ससारा० | ०ससगे० |
| १२ | ६ | मङ्गल | मङ्गल |
| १२ | १० | अपी | अपि |
| १२ | १२ | संलिनता | सलीनता |
| १३ | ३ | ॥ २ ॥ | ॥ ३ ॥ |
| १४ | ७ | ०नाधिकार | ०नाधिकार (२) |
| १६ | ८ | ४ | ५ |
| १६ | १० | राय | राय |
| १७ | १२ | उक्त | उक्त |
| १८ | ३ | अथवो | अथवो |
| २२ | ८ | ०चित्य० | ०विरत्य० |
| २५ | ७ | ॥ ८ ॥ | ॥ ७ ॥ |

| पत्राङ्क | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|----------|--------|----------------|-----------------------|
| २६ | १२ | ०पादक | ०पादकं |
| २७ | ५ | भवगहणेसु | भवगहणेसु |
| २७ | ११ | अहिंसा० | अहिंसा० |
| २८ | १ | ऊप० | उप० |
| ३१ | १३ | द्वीपसमुद्रान् | द्वीपसमुद्रान् |
| ३२ | १४ | निद्रावियुक्तो | निद्रावियुक्तो |
| ३३ | २ | अदुःखवणयाण् | अदुःखवणयाहे असोयणयाण् |
| ३८ | ३ | प्रायश्चित्त० | प्रायश्चित्त० |
| ४० | ८ | ग्राहयामि | ग्राहयामि अद्रुत्तं |
| ४१ | १३ | निर्विया० | निर्विव्या० |
| ४१ | १३ | निर्वित्ति० | निर्वित्ति० |
| ४३ | ३ | करन्तपि | करन्तपि |
| ४३ | १० | णं | णं |
| ४३ | १४ | ऊर्ध्वलोक | ऊर्ध्व लोके |
| ४६ | २ | दोगगाहं | दोगगाहं |
| ४६ | ६ | निवणियपिण्डो | निवणीयपिण्डो |

| पत्राङ्क | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|----------|--------|-------------|--------------|
| ४६ | ८ | भगन्ति | भगन्ति |
| ४६ | ८ | मानेण | मानेन |
| ४७ | ४ | पुर्वि | पुर्वि |
| ४८ | १ | -०याप | ०स्वयाप |
| ५१ | ६ | मुजेज्जा | मुजेज्जा |
| ५२ | २ | सययस्वित्ते | समययस्वित्ते |
| ५२ | ३ | कपाण | कसाण |
| ५४ | १० | अप्रसस्ता | अप्रशस्ता |
| ५५ | २ | ०ऽय उक्तो | ०ऽयमुक्तो |
| ५५ | ७ | एत्स् | एत्स् |
| ५५ | ११ | ०ऽ तिमो० | ० ऽतिक्रमो० |
| ५५ | १४ | रूपो | रूपो |
| ५६ | २ | अईमत्ते | अहमेत्ते |
| ५६ | ३ | वत्तीसं | वत्तीसं |
| ५६ | १२ | वयणमणुरस्से | वयमणुरस्से |
| ५६ | १३ | " " | " " |
| ५७ | ४ | ०निह० | ०निह० |

शुद्ध

पत्राङ्क पक्ति अशुद्ध

| | | | |
|----|----|------------------|------------------|
| ६३ | १३ | ०मुपक० | सुपक० |
| ६३ | १३ | पुरिसहि | पुरिसेहि |
| ६५ | १ | छिन्द्व तदो | तदो |
| ६५ | १० | सम्यगासेवतो | सम्यगासेवातो |
| ६५ | ५ | ०गिच्छाण | गिच्छिण |
| ६६ | ५ | ०भङ्गा० | ०भङ्गा० |
| ६६ | १३ | चतु भि० | चतुभि० |
| ६७ | ३ | चियमास० | चितमास० |
| ६८ | ६ | दुहसेजाड | सुहसेजाड |
| ६८ | ११ | पव्वइण | पव्वइण |
| ६८ | १२ | जा | जाय |
| ७० | १२ | रागातुते | रागातुरे |
| ७१ | १२ | लब्धयु० | लब्धु० |
| ७४ | १ | ०भुट्ठाणे० | ०भुट्ठाणे |
| ७४ | १२ | ०प्रवृत्त्यादि० | ०प्रवृत्त्यादि० |
| ७४ | १३ | श्रुताद्यार्थिना | श्रुताद्यार्थिना |

शुद्ध

पत्राङ्क पक्ति अशुद्ध

| | | | |
|----|----|--------------|----------------------|
| ५७ | ६ | ०रूपि० | ०रूपि० |
| ५७ | १२ | ०विसाद० | ०विसंयाद० |
| ५८ | ७ | नो | भो |
| ५८ | ० | समिओ | ०समिओ |
| ५९ | १० | ०परिणम० | ०परिणाम० |
| ५९ | ११ | ०विशेषाच्च | ०विशेषाच्च |
| ६० | ३ | ०भूता | भूतो |
| ६० | १३ | वस्त्याभ्या० | वस्त्याभ्या० |
| ६१ | १२ | तेच ध्याने | तेच धिसख्ये च ध्याने |
| ६१ | १२ | धर्म्यं | धर्म्यं च |
| ६२ | ४ | विहा | किण्हा |
| ६२ | ५ | काउत्ति | काउत्ति |
| ६२ | १२ | इत्थादि० | इत्थादि० |
| ६३ | ७ | परिणा० | परिण० |
| ६३ | १२ | ०पट्टु० | पट्टु० |
| ६३ | १२ | " | " |

| पत्राङ्क | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|----------|--------|---------------|---------------------|
| ७५ | १ | ०व्युत्थित्वं | ०व्युत्थित्वं |
| ७५ | १२ | ०त्वाद्धेति | ०त्वाद्धेति |
| ७६ | १ | यावत् कथिक | यावत्कथिकं |
| ७६ | ११ | नवर | नवरं |
| ७७ | १ | पत्त | पत्तं |
| ७८ | ६ | ०देवा | ०देव |
| ७९ | ३ | इत्येव० | इत्येव० |
| ८० | २ | तात्र | तत्र |
| ८० | १२ | सत्तिक्रयति- | तथा सत्तिक्रयति |
| ८१ | १ | ०सप्तकैकः | ०सप्तकैकः |
| ८१ | २ | परक्रिया० | परक्रिया० |
| ८१ | ११ | च-तयेतु० | चतद्वर्जनं च तयेतु० |
| ८२ | १ | समित्यश्च | समित्यश्च |
| ८२ | ४ | णमंसह | १णमंसह |
| ८२ | १४ | " | १ पसमह प्र०। |
| ८३ | १० | चरंमि | चारंमि |

| पत्राङ्क | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|----------|--------|-------------------|-------------------|
| ८३ | १४ | पट्टप | पट्टीप |
| ८५ | ३ | विलीयं य | विलीयं इय |
| ८५ | ४ | गुस्तिवर्गगुप्तिः | गुस्तिवर्गगुप्तिः |
| ८५ | १० | प्रयोजन० | प्रयोजना० |
| ८५ | १० | करण० | कर० |
| ८५ | ११ | काद्वय० | काद्वय० |
| ८६ | १ | चेउ | चेद |
| ८६ | १ | ॥ ५ ॥ | ॥ ६ ॥ |
| ८६ | ७ | मित्य | मित्य |
| ८६ | ७ | ताहमिव | ताहमिव |
| ८६ | ८ | घम्मं | घम्म |
| ८६ | १० | चिन्तेइ | चिन्तेइ |
| ८७ | ३ | उप्पज्जाइ | उप्पज्जाइ |
| ८७ | ३ | पण्डियज्जा | पण्डियज्जा |
| ८७ | ३ | विन्तेइ | चिन्तेइ |
| ८७ | ३ | इमे | इमे |

| पत्राङ्क | पंक्ति | अनुद्ध | शुद्ध |
|----------|--------|----------------|----------------------|
| ९८ | २ | ० नाशातना | ० नाशातना |
| ९८ | २ | आशातनाश्च | आशातनाश्च |
| ९८ | ३ | ० केवल० | केवलि० |
| ९८ | ६ | ० स्वाध्यय० | ० स्वाध्यय० |
| ९८ | ६ | कालास्वाध्यय | ० काला (ल) स्वाध्यय० |
| ९९ | १० | ० वेयण० | ० वेयण० |
| १०० | ८ | ० रक्षितम् | ० रक्षितम् |
| १०१ | १२ | ० विपर्यय० | विपर्यय० |
| १०२ | १ | १। इयणे | । ५३ इयणे |
| १०२ | ५ | ० दोसप्रसङ्गा० | ० दोषप्रसङ्गा० |
| १०२ | १ | पडिगहिता | पडिगगहिता |
| १०३ | २ | पडिगहिता त | पडिगगहिता त |
| १०३ | २ | असर्ण ४ | असर्ण वा ४ |
| १०३ | ५ | त रायणिपण | रायणिपण |
| १०३ | ८ | मनोकूल० | मनोनुकूल० |
| १०३ | ११ | सेहे | सेहे |

| पत्राङ्क | पंक्ति | अनुद्ध | शुद्ध |
|----------|--------|--------------|-----------------------|
| ८७ | ५ | नि गन्धी | निगन्धी |
| ८७ | ६ | देयतो | देय (या) नो |
| ८७ | १० | इमस्म | इमस्म |
| ८७ | ११ | धम्ममाइ० | धम्ममाइ० |
| ८९ | ८ | देयलदर्शना | केवलदर्शना० |
| ९० | १२ | ० त्रियतासु | ० त्रियतासु स्वपितासु |
| ९१ | ११ | ० कावण० | ० कारण० |
| ९२ | ६ | मक्तदेर्या | ० मक्तोदेर्या |
| ९२ | १० | ० रचयितो० | ० रचियतो |
| ९३ | २ | ० चोपिको० | चोपिको० |
| ९३ | ३ | एय तूप० | एय तूप० |
| ९४ | ११ | छत्रयोग० | छत्रयोग० |
| ९५ | ११ | वर्दानानन्त० | वर्दानानन्तर० |
| ९५ | १२ | ० यार्इम | ० यार्इ |
| ९६ | १२ | ० यद् | ० यद्वा |
| ९७ | १३ | ० माशातना | ० माशातना |

पत्राङ्क पंक्ति अशुद्ध

१०४ ६ भतेति
१०४ ७ भतेति
१०४ ७ सुतत्थ
१०४ ९ अवोच्छिन्ना
१०५ ११ वदन्ति
१०५ ११ चिन्ततो
१०५ १२ किम्मेच्चिरं
१०६ १ विन्द
१०६ १ गन्तुणं
१०६ ३ समागति
१०६ ६ चण्डुदस्स
१०६ ११ गम्भीर
१०६ १५
१०७ ७ अशुभयगया
१०७ १० सुद्धर
१०७ १० भुतच्चित्त

शुद्ध

मेसति
"
सुतत्थ
अवोच्छिन्ना
वदन्ति
चिन्ततो
किम्मेच्चिरं
विन्दम्
गन्तुण
समागओत्ति
चण्डुदस्स
गम्भीर
भयतोऽति गम्भीर प्र
अशुभयगया
सुद्धरण
भुतेच्चित्त

पत्राङ्क पंक्ति अशुद्ध

१०७ १२ सकुत्त
१०८ ३ पङ्कगारणरन्ति पङ्कगारणरन्ति
११० १ भान
११० २ गरियसि गरियसी
११० ७ सम्प्रधाया सम्प्रन्याया
११० ८ भगवतोऽत्ति भगवओत्ति
११० १३ प्रस्तावव प्रस्तावाव
१११ ३ अं अतं
१११ ४ विसिटो विसिदओ
१११ ४ तु दो तु र दो
१११ ७ पुरुषाड्य पुरुषाड्य
१११ ११ अकगण अकगण
१११ १२ गदकार गदप्रकार
११२ ५ ओऽप्यन ओऽप्ययन
११२ १० केनन ये केनन
११२ ११ मपयपि मपयपि

शुद्ध

| पद्याङ्क | पङ्क्ति | अनुष्टुप | शुद्ध |
|----------|---------|-------------------|-------------------|
| ११० | १ | तद्व्यतिरिक्त० | तद्व्यतिरिक्त० |
| ११५ | ७ | आयहिनिस्तोहि | आययिनीहि |
| ११५ | १४ | अत्रोत्कालिक० | अत्रोत्कालिक० |
| ११५ | १२ | निययहृगा | निययहृगा |
| ११७ | १ | दोरथो | दोरथो |
| ११८ | ४ | कव्यपाक० | कव्यपाक० |
| ११८ | ७ | प्रथमस्थान | प्रथमस्थान |
| ११९ | ६ | 'सुरपणत्तिस्ति' | 'सुरपणत्तिस्ति' |
| ११९ | ४ | तथा मयविद्या | तथा मयविद्या |
| ११९ | १० | जीव | जीव |
| ११० | ११ | विपमुपमोक्तु | विपमुपमोक्तु |
| १२१ | ३ | अतोस्ति | ओहिस्ति |
| १२१ | ३ | या निनारकादि० | यानि नारकादि० |
| १२१ | ९-१० | दुरन्तमि | दुरन्तमि |
| १२१ | १३ | सुयमरुणाणी | सुयमरुणाणी |
| १२२ | ४ | तथायामपि | तथायामपि |
| १२२ | ७ | विगर्हनिज्जुहियाह | विगर्हनिज्जुहियाह |
| १२३ | ० | पालेमोने | पालेमोने |

| पद्याङ्क | पङ्क्ति | अनुष्टुप | शुद्ध |
|----------|---------|-------------------|----------------------------|
| १२४ | १ | समुत्कीर्तित | समुत्कीर्तित० |
| १२४ | ० | खमासमणणां | खमासमणणा |
| १२४ | ० | ओहि | ओहि |
| १२४ | ४ | महहल्लीया | महहल्लीया |
| १२४ | ४ | वगचूलीपाप | वगचूलीपाप |
| १२४ | ६ | विवाहचूलियाप | विवाहचूलियाप |
| १२४ | ६ | परियावलिपाण | परियावलिपाण |
| १२४ | ६ | निरयावलिपाण | निरयावलिपाण |
| १२४ | ७ | जत्तीविसभावणाण | जत्तीविसभावणाण |
| १२४ | १३ | परियट्टय | परियट्टय |
| १२४ | १४ | गरिहानो विसोहेमो | गरिहामो विउट्टेमो विसोहेमो |
| १२५ | ११ | मामिणोय | ममिणी य |
| १२५ | ११ | धम्मघोसोधम्मजस्सो | धम्मघोसो धम्मजस्सो |
| १२६ | २ | नेवदेव | नेवदेव |
| १२७ | ३ | धुल्लिकाविमान | धुल्लिकाविमान |

प्रविभक्ति -- धुल्लिकाविमान
-- प्रविभक्तिर्महती-विमान
प्रविभक्ति

| पत्राङ्क | पंक्ति | अनुद्ध | शुद्ध |
|----------|--------|--------------------|------------------------|
| १२७ | ८ | ०तत्रैवोपगच्छति | ०तत्रैवोपगच्छति |
| १२८ | २ | ०बुत्तं | बुत्तं |
| १२८ | ८ | परियद्वेष्ट | परियद्वेष्ट |
| १२८ | ९ | निरयाचलिः | निरयाचलिः |
| १२९ | ७ | तल्लिचि दिनवृत्तेः | तल्लिचि दिनवृत्तेः |
| १२९ | ८ | विनाशयति | विनाशयति |
| १२९ | १२ | उद्ध्वत्तिवत | उद्ध्वत्तिवत |
| १३० | ३ | क्रितियोनोत्पातेन | क्रितियोनोत्पातेन |
| १३० | ५ | " | " |
| १३० | ८ | प्रतिपद्यते | प्रतिपद्यते |
| १३० | ९ | ०तीर्थकस्य | तीर्थकस्य |
| १३० | ११ | आचारः | आचारः |
| १३० | १२ | सूत्रेण सूत्रकृतं | सूत्रेण कृतं सूत्रकृतं |
| १३० | १ | ०आत्मार्थ | आत्मार्थ |
| १३० | ३ | ०आवाहस्तत्त्वार्थ | ०प्रधातस्तत्त्वार्थ |
| १३० | ५ | उवमाग | ०उवासाग |
| १३० | ५ | आवकस्तद | आवकस्तद |
| १३० | १३ | साम्प्रतं | साम्प्रत |
| १३३ | ५ | द्वावशा | द्वावशाङ्गं, |

| पत्राङ्क | पंक्ति | अनुद्ध | शुद्ध |
|----------|--------|-----------------------|------------------------------|
| १३३ | १२-२३ | ०दोषाद् परिपूर्णं | दोषाद् परिपूर्णं |
| १३४ | १ | अहं | अहं |
| १३४ | ७ | (गानाहं) | (गानाहं) |
| १३४ | ८ | समस्तीति | समस्तीति |
| १३६ | ५ | ०द्वानादिना | ०द्वानादिना |
| १३६ | ५ | ०द्वानिगद्योपपन्न | ०द्वानिगद्योपपन्न |
| १३६ | ८ | रोपः | रोपः |
| १३६ | ८ | रादरं | रादरं |
| १३६ | १३ | सामसाओ | सामसाओ |
| १३७ | ६ | हृष्टाणं अप्पायदाणं | हृष्टाणं तुष्टाणं अप्पायदाणं |
| १३७ | २ | हरणं अस्सरं | हरणं वा अस्सरं |
| १३८ | ५ | ०देवमियं पदिगरत्तासेउ | ०देवमियं रामेउ |
| १३८ | ८ | ०हणत्थमेव | ०हणत्थमेव |
| १३४ | ७ | ०जोयणाओ न | जोयणाओ परओ न |
| १३४ | १२ | पडमकाउस्सग | पडमकाउस्सग |
| १३५ | ७ | उहा | उहा |
| १३७ | ३ | ते | तेन |

॥ सक्षामणक-पाक्षिकसूत्रघृत्तौ सक्षेपतो विषयानुक्रम ॥

| क्रमांक | विषय | पृष्ठाङ्क | क्रमांक | विषय | पृष्ठाङ्क |
|---------|--|-----------|---------|---|-----------|
| १ | वृत्तिकारस्य मङ्गलाचरणम् । | १ | १५ | सर्वे महाव्रतानां निगमनम् | १०७ |
| २ | वृत्तिप्रारम्भे पूर्वपिटिका । | २ | १६ | श्रीमहावीरस्योत्कीर्तनम् | १०८ |
| ३ | सूत्रकारस्य मङ्गलाचरणं तद्व्याख्यानभारार्थनां मिसुगवर्णनञ्च | ५ | १७ | श्रीश्रुतोत्कीर्तनम् | १११ |
| ४ | प्रथमप्राणातिपातविरमणालापकं तद्व्याख्यानञ्च | १६ | १८ | श्रीआवदयकश्रुत-समुत्कीर्तनम् | १११ |
| ५ | द्वितीयमृगवाचदिविरमणालापकं | ३५ | १९ | श्रीउत्कालिकश्रुतसमुत्कीर्तनम् | ११५ |
| ६ | तृतीयादत्तादानविरमणालापकं | ३९ | २० | श्रीकालिक- " " | १२४ |
| ७ | चतुर्थमेयुनविरमणालापकं | ४३ | २१ | श्रीवङ्गप्रधिप्रश्रुत- " " | १३० |
| ८ | पञ्चमपरिमृहविरमणालापकं | ४८ | २२ | श्रुतदातृपात्रकेभ्यः नमस्कारभारमीयप्रसादविषये | |
| ९ | षष्ठारविमोजनविरमणालापकं | ५१ | २३ | मिथ्यादुष्टवृत्तञ्च | १३२ |
| १० | सप्तस्तवताम्युपगमाख्यापनम् | ५३ | २४ | श्रुतदेयताविमृशति | |
| ११ | महाव्रतानां यथाक्रमप्रतिचाराणुपदर्शनम् | ५४ | २५ | पाक्षिकवृत्तिसमाप्तिश्च | १३४ |
| १२ | निरतिचारवतपालनम् | ५६ | २६ | नेपप्रतिक्रमणविधि | १३७ |
| १३ | प्रकातरेण महाव्रतक्षणम् | ५८ | २७ | प्रथमक्षामणकम् | १३७ |
| १४ | शुभाशुभस्थानानां परिवर्तनमङ्गीकरणञ्च | ५९ | २८ | द्वितीयक्षामणकम् | १३८ |
| | | | २९ | तृतीयक्षामणकम् | १४० |
| | | | ३० | चतुर्थक्षामणकम् | १४३ |

गद्यभाषा तीरालाल लालन सरस्वती मुद्रणालय, गोपीपुरा, -सुरत

॥ सकलसमीहितपूरक—धीशद्वेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥
श्रीयशोदेवसूरिकृत—वृत्तिसमेतम्—

श्रीपाक्षिकसूत्रम् ।



॥ ऐँ ॥ ॐ^१ नमः मरुतयै ॥

१ शिवशर्मकनिमित्तं विद्वोघविघातिनं जिनं नमः । वक्ष्यामि सुखविबोधापाक्षिकसूत्रस्य वृत्तिमहम् ॥ १ ॥
एतच्चूर्ण्यनुसाराद्वन्थान्तरविवरणानुसाराच्च । प्रायो^२ निवरणमेतद्विधीयते मन्दमतिनापि ॥ २ ॥

१ नमो जैनागमाय प्र । २ शिवशर्मकनिमित्तान्विद्वोघविघातिनो जिनास्तत्त्वा । वक्ष्यामि सुखविबोधापक्षप्रतिक्रमणवृत्तिमहम् ॥ १ ॥
३ मन्दमतिनापि हि मया निवरणमिदमुच्यते प्रायः ॥

तत्र चार्हत्प्रवचनानुसारिसाधवः सकलपापमलमूलमावद्ययोगनिवृत्ता अपि सुविशुद्धमनोवाक्कायवृत्त्योऽप्यनाभोगप्रमादादेः सकाशात्प्रतिपिद्धकरणकृत्याकरणादिना समुत्पन्नस्य मूलोत्तगुणगोचरस्य^१ वादरेतरातिचारजातस्य विशेषनार्थं सदा दिवसनिशवसानेषु प्रतिक्रमणं विदधाना अपि पक्षचतुर्माससंवत्सरान्तेषु विशेषप्रतिक्रमणं कुर्वन्ति, उत्तरकरणविधानार्थम् तथाहि—यथा कश्चित्पुरुषस्तैलामलकजलादिभिः कृतशरीरसंस्कारोऽपि धूपनविलेपनभूषणवस्त्रादिभिरुत्तरकरणं विधत्ते, एवं साधवोऽपि प्रतिदिनप्रतिक्रमणेन विशुद्धचरणा अपि पाक्षिकादिषु विशेषप्रतिक्रमणेनोत्तरकरणं कुर्वन्ति—शुद्धिविशेषं कुर्वन्तीत्यर्थः। किंच “जह् गेहं पइदिवसं पि सोहिंयं तहवि पक्खसन्धीसु। सोहिज्जइ सविसेसं एवं इहयं पि नायव्वं” तथा नित्यप्रतिक्रमणे सूक्ष्मो वादरो वाऽतिचारोऽनाभोगादिना विस्मृतो भवेत्, स्मृतो वा भयगौरवादिना^२ समक्षं न प्रतिक्रान्तः स्यात्, प्रतिक्रान्तोऽपि परिणाममान्द्यादसम्यक्प्रतिक्रान्तः स्यादतः पाक्षिकादिषु तं स्मृत्वा सज्जातसंवेगाः प्रतिक्रामन्ति। अथवा—पाक्षिकादिषु विशेषप्रतिक्रमणेन प्रतिक्रामन्तो विस्मृतमप्यतिचारं स्मरन्ति प्रायशः, अथवा—प्रथमचरमतीर्थकराणां कालविशेषनियतोऽयं विधिः यदुत पाक्षिकादिषु विशेषेण प्रतिक्रामितव्यं यथा ‘सूत्रार्थपैरूपीप्रत्युपेक्षणादीनिप्रतिनियतकालकर्तव्यान्यनुष्ठनानीति’। अथवाऽतिचाराभावेऽपि युक्तं पाक्षिकादिषु विशेषप्रतिक्रमणं तृतीयवैद्यौपधकियातुल्यत्वात् यथा—

क्रिल धनधान्यसमुद्भवहुजनसमाकुले विविधसौधराजीरमणीये प्रचुरचारुसुरमन्दिरशिखरविराजिते क्षितिप्रतिष्ठिते नगरे शौर्यादिगुणरत्नसारस्य सदाऽलङ्घितनीतिवेलावल्यस्यासाधारणगाम्भीर्यशालिनोऽपूर्वलावण्यभाजः पाथोनिधेरिव जितशत्रो राज्ञो मनोरथशताप्तो बहुविधोपयाचितविधिलब्धः सकलान्तः पुरकमलवनराजहंसिकाया इव धारिणीदेव्या आत्मजः स्वजीवितव्यादप्यतिप्रियः कुमारः सम-

^१गुणजात० । ^२गुरुसमक्षं ।

स्ति स्म । तेन च राजा मा मम पुत्रस्य कथनापि रोगो भविष्यति, ततः अनागतमेव केनापि भिषजा क्रिया कारयामीति निश्चिन्त्य
त्रैद्या^१ शब्दिता भणिताश्च 'मम पुत्रस्य तथा क्रिया कुरुत यथा न रुदाचनापि रोगसमो भवति', तैरप्युक्तं कुर्मस्ततो राज्ञाभिहितं
रुथयत तर्हि यस्य कीदृशी क्रियेति तत्रैकेनाभिहितं 'मदीयौपधानि यद्यग्रे रोगो भवति ततस्तमाशु क्षमयन्ति, अथ नास्ति ततस्त
प्राणिनमण्ड एव मारयन्ति' ततो राज्ञोक्तमलमैतैरौपधैः स्वहस्तोदरप्रमर्दनश्लव्यथोत्थापनन्यायतुल्यं । द्वितीयेनोक्तं 'यद्यस्ति रोग-
स्ततस्तमुपशमयन्ति अथ नास्ति ततः प्रयुक्तानि प्राणिनो न दोष नापि कञ्चनगुणं कुर्वन्तीति' राज्ञा चोक्तमैतैरपि भस्माहुतिवलयैः
पर्याप्तम् । तृतीयेन च गदितं 'मदीयौपधानि यदि रोगे सति प्रयुज्यन्ते तदा त रोग निमूलमाप कपन्ति अथ न त्रिघते रोगस्तथापि तस्य
देहिनस्तानि प्रयुक्तानि वलग्णरूपयौवनलाग्न्यतया परिणमन्ति अनागतव्याधिप्रतिग्रन्थाय च जायन्ते' । एवं चोपश्रुत्य राजा तृतीयभिषजा
स्वपुत्रस्य क्रिया कारिता । जातश्च व्यङ्ग्यग्लीपलितलली(ल)त्यादिदोषवर्जितो निरामयमूर्तिः^२ प्रकृष्टबुद्धिचलशाली नवनीरदोदारस्वरश्चेति ।
एवमिदमपि प्रतिक्रमण यद्यतिचारदोषा^३ सन्ति ततस्तान् शोधयति, यदि न सन्ति ततश्चारित्र शुद्धतर करोतीति । ततः स्थितमिद-
मतिचारो भवतु वा मा वा तथापि प्रथमचरमतीर्थरतीर्थेषु पधान्तादिषु प्रतिक्रमणं कर्तव्यमेवेति । केन पुनर्निधनेति चेत् !, उच्यते—“इह
किल साहुणो कयमयलवेयालियरूणिजा सुरत्यमणवेलाड सामाइयाइसुत्त पमड्डित्ता दिवसाइयारीचित्तणत्थ काउस्सग करन्ति, तत्थ य
गोसमुहणतगाइय अहिगयचेट्ठाकाउस्सगपजअसाण दिअसाइयार चिन्तन्ति, तओ नमोक्कारेण पारेत्ता चउवीसत्थय पढन्ति, तओ सण्डा-
मणे पडिलेहिच्चा उक्कडुयनिविट्ठा ससीसोवरिय कायं पमजन्ति, तओ परेण विणएण तिगरणविसुद्ध किइक्कम्म करन्ति, एव वदिच्चा

१ शब्दापिता प्र० २ कथयन्तु प्र० ३ निरामयकमनीयमूर्ति ० प्र० ।

उत्थाय उभयकरगहियरओहरणा अद्वावरणयकाया पुव्वपरिचिन्तिए दोसे जहारायणियाए सज्जयभापाए जहा सुगुरू सुणन्ति तहा पवड्डमाणसंवेगा मायामयविप्पमुक्ता अप्पणो विसुद्धिमित्तमालोएन्ति, जइ नत्थि अइयारो ताहे सीसेण संदिसहन्ति भणिएहिं^१ पडि-
कमहन्ति भणियव्वं, अह अइयारो तो पायच्छित्तं परिमुड्डाई दिन्ति, तओ गुरुदिन्नपडिवन्नपायच्छित्ता विहिणा निसिइत्ता समभावाड्डिया
सम्ममुवत्ता अणवत्थपसज्जभीया पाए पाए संवेगमावज्जमाणा दंसमसगाइ देहे अणगणेमाणा पयंपएण सामाइयमाइयं पडिक्कमणसुत्तं
कड्डन्ति जाव तस्स धम्मस्सन्ति पदं, तओ उद्धड्डिया अब्भुड्डिओमि आराहणाए इच्चाइयं जाव वन्दामि जिणे चउवीसन्ति भणित्ता गुरू
गिणिसन्ति, तओ साहू वन्दित्ता* भणन्ति इच्छामि खमासमणो उवड्डिओमि अड्ढिभन्तरपविखयं खामेउं, गुरू भणइ, अहमवि खामेमि
* थोभवंदणं दाउं इच्छाकारेण संदिसह भयवं पक्खियसुहपोत्तियं पडिलेहेमोत्ति भणित्ता सुहपोत्तियं पडिलेहिय कयकिइक्कम्मा भणंति
, इच्छामि खमासमणो । २ उवड्डि ओमि अड्ढिभन्तरपविखयं खामेउं, गुरूभणइ -अहमविखामेमि तुव्वेत्ति, ताहे साहू भणंति-पण्णर-
सण्हं दिवसाणं पण्णरसिण्हं राईणं जं किञ्चि अपत्तियं परपत्तियं इत्यादि, तओ पंचपभियओ भवंति । ३ जइ तथा उ तिण्णि जणे
खामेत्ति, जइ दो । ४ तिण्णि चउरो वा तो न खामेत्ति अत्र गाथा “वदित्ता तिण्णि जणे तत्तो जहजिड्डमित्थ खामेत्ति । जइ पणगाई
होत्ति दो तिअ चउरो य खामेत्ति ॥ १ ॥” तहा चाउम्मासिए जइ सत्तपभियओ तो पंच खामेत्ति ॥ अह छ पंच वा तउ तिण्णि
चेव खामेत्ति । संवच्छरिए पुण जइ नवपभियओ तो सत्त खामेत्ति । अह सत्तड्ड वा तो पंच खामेत्ति ॥ अत्रापिगाथा “चाउ-
म्मासे पंच उ संवच्छरिए उ सत्त खामेत्ति । जइडुण्णि उव्वहंते अण्णह तिअ पंच जह संखं ॥ १ ॥” उक्कोसेणं तिसुवि ठण्णेसु
सव्वे खामिज्जंति । एयं इति प्रत्यन्तरे धिकमत्र ।
१ भणिए गुरूहिं प्र० । २ अब्भुड्डिओमि प्र० । ३ तो जहाजेड्ड जइ. प्र० । ४ दोण्णि प्र०

तुम्हेचि तांहे साहू भणन्ति पन्नरसण्ह दिवसाण पन्नरसण्ह राईण ज किंचि अपसिय परपत्तिय इत्यादि । एवं जहणेण तिप्पि वा पच वा, चाउम्मासिए सवच्छरिए य सत्त, उक्कोसेण तिसुवि ठाणेषु सन्वे खामिज्जन्ति, एय सत्तुद्धाखाभण रायणियस्स भणिय, इत्थ कणिट्ठेण चेट्ठो खामेयव्वोत्ति वुच भवइ । तओ कयकिइक्कम्मा उद्धट्ठिया पत्तेयखाभण करेन्ति तत्थ य इमो विही-गुरू अओ वा जो गच्छमज्जे जेट्ठो सो पढममुद्धेउण उद्धट्ठिओ चैव कणिट्ठं भणइ अमुगनामथेया अन्भिन्नरपक्खिय खामेमो पन्नरसण्ह दिवसाण पन्नरसण्ह राईण इत्यादि, इमोवि भूमिनिहियजाणुसिरो कयज्जली भणइ भगवं अहमवि खामेमि तुम्हे पन्नरसण्हमित्यादि । सीसो पुच्छइ किं गुरू उट्ठित्ता खामेइ ? उच्यते, सन्वजइजाणागणत्थ 'जहा एस महप्पा मोत्तुमहकार जहा दव्वओ अप्पुट्ठिओ खामेइ एव भावओवि समुट्ठिओ खामेइत्ति' किं च जे गुरूसमीयाओ जच्चाइएहि उत्तमतारा मा ते चिन्तिज्जा एस नीयतरो अग्गे उत्तमत्ति काउ पणयसिरो खामेइत्ति, एव सेसावि अहारायणियाए खामेन्ति, जाव दुचरिमो चरिभन्ति । तांहे सन्वे कयकिइक्कम्मा भणन्ति देवसिय आलोएउं पडिक्कन्ता परसिय पडिक्कामो ? गुरू भणइ सम्मं पडिक्कमह इति पाक्षिकचूर्ण्यभिप्रायः । आवदयकाभिप्रायस्तु 'गुरू उद्धेउण जहा-रायणियाए उद्धट्ठिओ चैव खामेइ इयेरेव जहारायणियाए सन्वेवि अवणयउत्तमद्वा भणन्ति 'देवसियं पडिक्कन्त पक्खिय खामेमो पन्नरसण्हं दिवसाणमित्यादि' एव सेसावि जहारायणियाए खामन्ति पच्छा वन्दिता भणन्ति देवसिय पडिक्कन्त पक्खिय पडिक्कमावे-हत्ति, तओ गुरू गुरूसन्दिट्ठो वा पक्खिय पडिक्कमण कइइ सेसगा जहासोत्ते काउसग्गाइमण्डिया धम्मज्झाणोवगया सुणन्ति । तच्चेद ध्वनं-

तित्थकरे य तित्थे, अतित्थसिद्धे य तित्थसिद्धे य । सिद्धे जिणे रिसी महरिसी य नाण च वन्दामि ॥ १ ॥

अस्य व्याख्या—तित्थद्वारेति अत्रानुस्वारः प्राकृतलक्षणप्रभवो यदाह “नीयालोप(व)मभूया य आपिवा दीहविन्दुप्मा(न्भा)वा । अत्थं वहन्ति तं चिय, जो एसि पुव्वनिदिहो ॥ १ ॥” द्वितीयावहचनान्तं चेदम् । यदुक्तम्—“ए होइ आय(अया) रन्ते पयंमि वीयाए बहुसु पुछिङ्गे । तइआइसु छट्टीसत्तमीसु एगम्मि महिलत्थे ॥ १ ॥” ततश्च तीर्थं वक्ष्यमाणलक्षणं तत् कुर्वन्त्यानुलोभ्येन हेतुत्वेन तच्छीलतया वेति तीर्थकराः शास्तरः ॥ आह च “अणुलोभहेतुतस्सीलयाए जे भावतित्थमेयन्तु । कुव्वन्ति पमासन्ति उ ते तित्थकरा हियत्थकरस्ति ॥ १ ॥” तान् वन्द इति सर्वत्र योगः, चशब्दोऽस्तीतानागतादितीर्थकृद्भेदसंग्रहार्थः । तथा तित्थेचि विभक्त्यव्यत्यया-त्पाठान्तरतो वा तित्थंति । तीर्थतेऽनेनेति तीर्थं द्रव्यतो नद्यादीनां समोऽनपायश्च भूभागो भौतादिप्रवचनं वा, द्रव्यतीर्थता त्वस्या-प्रधानत्वादप्रधानत्वं च भावतस्तरणीयस्य संसारसागरस्य तेन तरीतुमशक्यत्वात्सावद्यत्वादस्येति; भावतीर्थं तु जिनप्रवचनं तदाधार-त्वाच्चतुर्वर्णश्रमणसङ्घश्च, यतो ज्ञानादिभावेन तद्विपधादज्ञानादितो भवाच्च भावभूतात्तारयतीति तर्चीर्थं कर्मतापन्नं नन्द इति ॥ तथा अतित्थबुद्धे यच्चि पाठान्तरतो वा अतिथ्यसिद्धे यच्चि अतीर्थे तीर्थाभावे, बुद्ध्या जातिस्मरणादिना लब्धापवर्गमार्गाः, सिद्धा वा जातिस्मरणादिनैव निर्दग्धकर्मणोऽस्तीर्थबुद्ध्याः अतीर्थसिद्धा वाऽतस्तान्, चः समुच्चये । श्रूयते च सुविधिप्रभृतीनां तीर्थकृतां सप्तस्व-न्तरेषु धर्मव्यवच्छेदः । यदाह—

“जिणंतरे साहुवोच्छेओत्ति”—तत्रापि केचिज्जातिस्मरणादिना प्राप्तापवर्गमार्गाः केवलिनो भूत्वा सिध्यन्तीति । मरुदेवीप्रभृतयो वाऽस्तीर्थबुद्ध्या अतीर्थसिद्धा वा, तदानीं तीर्थस्यानुत्पन्नत्वादिति । तथा तित्थसिद्धे यच्चि तित्थबुद्धे यच्चि वा । तत्र तीर्थे उक्तलक्षणे

१ ग्रन्थाद (१००). १ अनकृत् केव प्र० ।

सति सिद्धा निर्वृत्ता वा ज्ञातवन्तः परमार्थं जन्मसृष्ट्याद्यादिवदिति तीर्थसिद्धास्तीर्थयुद्धा वाजस्तान्, चशब्द ममुच्य एव ।
तथा सिद्धेति सिध्यन्तिस्म कृतकृत्या अभवन् सेधन्ति वा म्याऽगच्छन्पुनरावृत्त्या लोकाग्रमिति सिद्धा, सितं वा बद्ध कर्म ध्मात् दग्ध
धेस्ते निरुक्त(क्ति)वशात्सिद्धाः कर्मप्रपञ्चनिर्मुक्तास्तान् । इह च तीर्थातीर्थसिद्धभेदद्वये सर्वसिद्धभेदानामन्तर्भावेऽप्यज्ञातज्ञापनाय शेष-
सिद्धभेदसप्रहार्थं सिद्धग्रहण । तेचामी शेषसिद्धभेदाः-तीर्थररा-सन्तो ये सिद्धा ऋष्यादिवचे तीर्थकरसिद्धाः १ तथा अतीर्थकरसिद्धाः
सामान्यकेवलिनः सन्तो ये सिद्धा गौतमादिवत् २ तथा स्वयमात्मना युक्तालस्य ज्ञातवन्तः स्वयम्बुद्धास्ते सन्तो ये सिद्धास्ते स्वयम्बु-
द्धसिद्धाः ३ तथा प्रतीत्यैक किञ्चिद्दृष्ट्यभादिक अनित्यतादिभाननाकारण वस्तु युद्धा बुद्धयन्त परमार्थमिति प्रत्येकबुद्धास्ते सन्तो ये
सिद्धास्ते प्रत्येकबुद्धसिद्धाः ४ स्वयम्बुद्धप्रत्येकबुद्धानां च बोध्युपविश्रुतलिङ्गकृतो विशेषः तथाहि-स्वयम्बुद्धानां गालनिमित्तमन्त-
रेणैव बोधि प्रत्येकबुद्धानां तु तदपेक्षया, श्रूयते च “ वममे य ईदकेऊ वलए अवे य पुष्किए वोही । करकण्डुदुम्मुहस्सा नमिस्स
गन्धाररक्को य ॥ १ ॥ ” इति सूत्रे बालपृषभादिप्रत्ययमापेक्षा करण्णदीना प्रत्येकबुद्धानां बोधरिति, उपधिः स्वयम्बुद्धानां पात्रा-

दिद्वीदशविधस्तथा—

“पुन १ पचानन्धो २ पायट्ठण ३ पायकेमरिया ४ । पडलाइ ५ रयणाण च ६ गोच्छओ ७ पायणिज्जोगो ८ ॥ १ ॥ तित्तेव य
पच्छागा ९ रयहरण चैव ११ होइ मुहयोचिचि १२ ” एष सयबुद्धाण उगहिं मणिउ जिणमेहि प्रत्येकबुद्धानां तु जघन्येन रजो-
हरणसुरयोतिवारूपो द्विविध उपधिः, उत्कृष्टतः पुनथोलपट्टमात्रकऋष्यत्रिकवर्जो नवविध इति । स्वयम्बुद्धानां पूर्वोधीतश्रुतं मभवति
वा न वा, प्रत्येकबुद्धानां पुनस्तन्नियमाङ्गनति जघन्येनैकादशाङ्गानि उत्कृष्टतो भिन्नदशपूर्वाणीति । लिङ्गप्रतिपत्तिः स्वयम्बुद्धानां यदि

पूर्वाधीतश्रुतं नास्ति ततो नियमाद्गुरुसमीपे भवन्ति गच्छे च विहरन्ति, अथ श्रुतं भवति ततो देवता लिङ्गं प्रयच्छति गुरुसमीपे वा तत् प्रतिपद्यन्ते । यदि च एकाकिविहारयोग्यता इच्छा चास्ति तत एकाकिन एव विहरन्ति अन्यथा गच्छ एवासत इति प्रत्येकबुद्धानां पुनर्लिङ्गं देवतैव ददाति लिङ्गवर्जिता वा भवन्ति । भणितं च 'रूपं पतेयबुद्धिर्नि' । बुद्धबोधिता आचार्यादिवोधिताः सन्तो ये सिद्धास्ते बुद्धबोधितासिद्धाः ५ त एव प्रत्येकबुद्धवर्जिताः केचित् स्त्रीलिङ्गसिद्धाः, ६ केचित्पुरुषलिङ्गसिद्धाः १ केचित्पु तीर्थकरप्रत्येकबुद्धवर्जिताः नपुंसकलिङ्गसिद्धाः ८ तथा स्त्रीलिङ्गप्रतीत्य ये रजोहरणगोच्छकादिधारिणः सिद्धाः ९ अन्यलिङ्गसिद्धाश्चाकरपरित्राजकादि लिङ्गसिद्धाः, यदा अन्यलिङ्गिनामपि भावतः सम्यक्त्वादित्प्रतिपन्नानां केवलज्ञानमुत्पद्यते तत्समयं च कालं कुर्वन्ति तदैवं द्रष्टव्यं, अन्यथा यदि दीर्घमायुष्कमात्मनः पश्यन्ति ततः साधुलिङ्गमेव प्रतिपद्यन्त इति १० एवं गृहलिङ्गसिद्धा अपि मरुदेवीप्रभृतयो वाच्याः ११ तथा एकैकसमये एकैकजीवसिद्धिगमनादेकसिद्धाः १२ एकसमये आदीनामष्टशतान्तानां सेधनादनेकसिद्धाः ॥ १३ ॥ तत्रानेकसमयसिद्धानां प्ररूपणा गाथा " वत्तीसा अडयाला सट्टि वावत्तरी य बोधच्चा । तुलसीइ छंगडई दुरहि-यमद्दुत्तरसरयं च ॥ १ ॥ एतद्विवरणं—

यदा एकसमयेन एकादय उत्कर्षेण द्वाविंशत्सिध्यन्ति तदा द्वितीयेऽपि समये द्वाविंशत् एवं नेरन्तर्पेण अष्टौ समयान् यावद् द्वाविंशत्सिध्यन्ति, तत ऊर्ध्वमवश्यमेवान्तरं भवतीति । यदा पुनस्त्रयस्त्रिंशत् आरभ्य अष्टचत्वारिंशदन्ताः एकसमयेन सिध्यन्ति तदा निरन्तरं सप्त समयान्यावत्सिध्यन्ति ततोऽवश्यमेवान्तरं भवति । एवं यदा एकोनपञ्चाशत्तमादिकृत्वा यावत्पष्टिरेकसमयेन सिध्यन्ति तदा निरन्तरं षट्समयान् सिध्यन्ति तदुपरि अन्तरं समयादि भवति । एवमन्यत्रापि योज्यं, यावदष्टशतमेकसमयेन यदा सिध्यन्ति

तदारभ्यमेव ममयाद्यन्तरं भवतीति ॥ अन्ये तु व्याचक्षते-अष्टौ समयान् यदा नैरन्तर्येण सिद्धिस्तदा प्रथमसमये जघन्येनैकः सि-
द्ध्यति उत्कृष्टतो द्वात्रिंशदिति द्वितीयसमये जघन्येनैक उत्कृष्टतोऽष्टचत्वारिंशच्चेदं सर्वत्र जघन्येनैकः समये उत्कृष्टतो गाथार्योऽयं
भावनीय वचीसेत्यादि” । तथा जिज्ञेचि रागद्वेपादिशत्रुजेतारो जिना भवस्यकेवलिनस्तान् । तथा रिसिचि गच्छगगच्छनिर्गतादि-
भेदा साधन क्रपययस्तान् । तथा महारिसिचि क्रपय एवान्यतरलब्ध्युपेता महर्षयस्तान् । लब्धयश्चैताः-आमोसहि १ विष्णोसहि
२ खेलोसहि ३ जल्लओमहीचेव ४ । सव्योसहि ५ समिन्ने ६ ओही ७ रिउ ८ विउलमइलद्वी ९ ॥ १ ॥ चारण १० आसीविस
११ केनली य १२ गणधारिणो य १३ पुव्वधरा १४ । अरहन्ताः १५ चक्कवट्टी १६ वलेदेवा १७ वासुदेवा य १८ ॥ २ ॥ खीर-
मइसप्पिरासव १९ कोट्टगबुद्धी २० पयाणुसारी य २१ । तह वीयचुद्धि २२ तेयग २३ आहारग २४ सीयलेसा य २५ ॥ ३ ॥
वेउव्विदेहलब्धी २६ अक्खीणमहाणसी २७ । पुलागा य २८ । परिणामतववसेण एमाई हुति लब्धीओ ॥ ४ ॥ आसा च व्याख्या-
नगाथा.-सफरिमणमामोसो मुत्तपुरीसाण विप्फो अन्ने विडिचि विद्धा भासन्ति य पत्ति पासवण । १ । एए अन्ने यवहू जेसिं
सव्वे य सुरभओभयवा, रोगोवसमसमत्था ते होति तओसहिप्पत्ता । २ । एएत्ति एतौ विष्णूत्रावयवौ, अन्ने यत्ति अन्ये च खेलजल्ल-
केदनखादय* तओसहिप्पत्तत्ति । विष्णूत्रखेलजल्लकेदनखादौपधयः सर्वोपधयश्च साधवो भवन्तीत्यर्थः जो सुणइ सव्वओ सुणइ स-
व्वविसेए व सव्वसोएहिं । सुणइ वहुए व सदे भिन्ने समिन्नसोओ सो । १ । (सर्वतः सर्वेरपि शरीरप्रदेशैरिति) रिउ सामन्न तम्मत्त-
गाहिणी रिउभई मणोनाण । पाय विसेसविमुह । घडमेच चिन्तिय सुणइ । १ । विउल वत्थुविसेसणमाण तग्गाहिणी मई विउला ।

* अग्निद्वेत ।

चिन्तियमणुसरइ घटं पसंगओ पञ्जवसएहि । २। (वस्तुनो घटादेर्विशेषणानां मानं संख्यास्वरूपं वस्तुविशेषणमानं
अइसयचरणसमत्था जङ्घाविजाहि चारणा मुणओ । जङ्घाहिं जाइ पढमो नीसंकाउं रविकरे वि । १ ।

एगुप्पाएण गओ रुयगवरमिओ तओ पडिनियत्तो वीएणं नन्दिस्सरमिहं तओ एइ तइएणं । २ । पढमेण पण्डगवणं वीउ-
प्पाएण नन्दणं एइ । तइउप्पाएण तओ इह जङ्घाचारणो एइ । ३ । पढमेण माणुसोचरणगमि नन्दिस्सरं तु विइएणं । एइ तओ तइएणं
कयचेइयवन्दणो इहइ । ४ । पढमेण नन्दणवणे वीउप्पाएण पण्डगवणम्मि । एइ इहं तइएणं जो विज्जाचारणो होइ । ५ । आसी दाडा
तगयमहाविसासीविसा दुविहमेया । ते कम्मज्जाइमेएण गेगहा चउविहविगप्पा । ६ । (ते आशीविपाः कर्मभेदेन तिर्यगाद्यनेकविधाः
जातिभेदेन तु वृथिकमण्डूकसर्पमनुष्यभेदेन चतुर्विकल्पाः) खीरमहुसप्पिसाओवमाणवयणा तयासवा होति । कुट्टयधन्नसुनिगलसुचात्या
कोट्टबुद्धीया ॥ १ ॥ (क्षीरं चक्रवर्तिधेनुदुग्धं, मधु शर्करादिमधुरद्रव्यं, सारिरेतिशायिगन्धादि घृतं, एतत्त्वादोपमानवचना देरस्वा-
म्यादिवचदाश्रवाः क्षीरमधुसर्पिराश्रवा भवन्ति श्रोतृजनाप्यायकवचनत्वादिति भावः) जो सुचापएण वहुं सुयमणुधावइ पयाणुसारी सो ।
जो अत्यपएणत्थं अणुसरइ स वीयबुद्धीओ ॥ १ ॥ अक्खीणमहाणसिया भिक्खं जेणाणियं पुणो तेण । परिसुत्ते चिय खिज्जइ बहुएहि
वि न उण अन्ने हिं ॥ २ ॥ शेपास्तु ग्रसिद्धाः । भवसिद्धीयपुरिसाणं एयाओ हवन्ति भणीयलब्धीओ । भवसिद्धियमहिलाण वि जत्तिया
जा तयं वोच्छं ॥ १ ॥ अरहन्तचक्किंसववलसंभिन्ने य चारणा पुब्बा ।' गणहरपुलायआहारणं च न ह भवियमहिलाणं ॥ २ ॥
अभवियपुरिसाणं पुण दस पुब्बिल्लाओ केवल्लिचं च । उज्जुमई विउलमई तेरस एयाओ नहु होति ॥ ३ ॥ अभवियमहिलाणं पि हु

१ तीर्थंकर गण० प्र० ।

एयाओ न होन्ति भणियलक्ष्मीओ । महुखीरासवलक्ष्मी वि नेय सेसाओ अवरुद्धा ॥ ४ ॥ इत्यल प्रसङ्गेन प्रकृतमुच्यते । महरसि यचि चशब्दात्परमर्पयो गृह्यन्ते, ते च गणधराथतुर्दशपूर्विणश्च नानाविधलब्धिनिधयो द्रष्टव्या इति । तथा नाण चेचि ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति ज्ञानमाभिनियोधिकारिरूप तत्रार्थाभिमुखोऽविपर्ययत्वात् नियतोऽसशयस्वभावत्वाद्बोधो वेदनमभिनियोघः स वेदनमभिनियोधिकरु तच्च तत् ज्ञान चेत्याभिनियोधिकज्ञानमिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त ओघतः सर्वद्रव्यासर्वपर्यायमिति । तथा श्रूयते तदिति श्रुत शब्द एव तदेव भावश्रुतकारणत्वात् ज्ञान श्रुतज्ञानं श्रुतग्रन्थानुसारि ओघतः सर्वद्रव्यासर्वपर्यायविषयमक्षरश्रुतादिमेदमिति । तथा अवधीयतेऽनेनास्मादस्मिन् चेत्यवधि, अवधीयत इत्यधोऽधो विस्वृत परिच्छिद्यते मर्यादया वेति अवधिज्ञानावरणक्षयोपशम एव तदुपयोगहेतुत्वादिति, अवधान वा अवधिर्विषयपरिच्छेदनमिति, अवधिश्रसौ ज्ञान चेत्यवधिज्ञानं, इन्द्रियमनोनिरपेक्षमात्मनो रूपिद्रव्यसाक्षात्करणमिति । तथा मनसि मनसो वा पर्यय परिच्छेद स एव ज्ञान मन पर्यवज्ञान, अथवा मनसः पर्याया विशेषावस्थास्तेषु तेषां वा ज्ञान मन पर्यायज्ञान समयक्षेत्रगतसञ्ज्ञिमन्यमानमनोद्रव्यसाक्षात्कारीति । तथा केवलमसहाय मत्यादिनिरपेक्षत्वात्, अकलङ्क वा आवरणमलाभावात्, सकल वा तत्प्रथमतयैवाशेषतदावरणाभावतः सपूर्णोत्पत्तेः, असाधारण वा अनन्यसदृशत्वात्, अनन्त वा ज्ञेयानन्तत्वात्, तच्च तत् ज्ञान चेति केवलज्ञानमिति । चशब्द उक्तसमुच्चये अनुक्तदर्शनचारित्रसमुच्चये वा द्रष्टव्यः । वन्दे प्रणौ मि स्तौमि चेति । अनेन च तीर्थकरादि वन्दनेन शास्त्रादौ भावमङ्गल कृतं, तेन च तत्कर्तव्येवस्तो(श्रो)तृणा निर्विघ्नाऽमीष्टसिद्धिरुपजायते इति ॥ तथा—

पर्यायविषयमिति ० प्र० ।

जे य इमं गुणरयणसागरं अ(म)विराहिज्ज(हेउ)तिन्नसंसार। ते मङ्गलं करित्ता अहमन्नि आराहणाभिमुहो
ये महामुनयश्चशब्दो मङ्गलान्तरसमुच्चयार्थः । इमं जिनशासनप्रसिद्धं, गुणरयणसागरंति गुणा महाव्रतादयस्त एव रत्नानि विशिष्ट-
फलहेतुत्वात्सर्वस्तुसारत्वाच्च गुणरत्नानि तान्येव बहुत्वात्सागर इव सागरः समुद्रो गुणरत्नसागरस्तं, किमित्याह? अविराध्य अखण्ड-
मनुपाल्य, तीर्णसंसारालङ्घितभवोदधयो जाताः, तान् परमात्मनो, मङ्गलं कृत्वा शुभमनोवाक्तायगोचरं समानीयेत्यर्थः, अहमपि न
केवलमुक्तन्यायेनाराधकत्वात्ते तीर्णभवार्षावाः किं त्वहमपि संसारार्णवलङ्घनार्थमेव आराधनायाः संपूर्णमोक्षमार्गानुपालनायाः अभि-
मुखः संमुखः कृतोद्यम इत्यर्थः आराधनाभिमुखः सञ्जात इति ॥ २ ॥ तथा—

मम मंगलमरिहंता सिद्धा साहू सुयं च धम्मो य । खन्ती गुत्ती सुत्ती, अज्जवया महवं चेव ॥ ३ ॥

मम मे, मंगलं श्रेयः कल्याणमिति यावत्, के एते? इत्याह—अरिहन्ति अशोकघाष्टमहाप्रातिहार्यादिरूपां पूजामर्हन्तीत्यहन्त-
स्तीर्थनायकाः । तथा सिद्धिं सितं वद्धं कर्म ध्मातं येषां ते सिद्धाः शुक्लध्यानानलनिर्दग्धकर्मन्धना मुक्तिपदाभाजो जीवाः । तथा साहुचि
निर्वाणसाधकान् योगान् साधयन्तीति साधवो मुनयः ।^१ तद्रहणाचाचार्योपाध्याया अपी गृहीता एव द्रष्टव्याः यतो न हि ते न
साधवः । तथा सुयं चानि श्रूयत इति श्रुतं सामायिकाद्यागमः चशब्दस्तद्गतभेदप्रदर्शनार्थः । तथा धम्मो यचि धारयति दुर्गतां पतन्-
तमात्मानमिति धर्मश्चारित्रलक्षणः, चशब्दः स्वभेदप्रदर्शकः । तथा क्षान्तिः क्रोधपरित्यागो, गुप्तिः संलिप्तता, मुक्तिर्निर्लोभता, कापि

अहिंसारन्तीमुचीति पाठः सच सुगम एव, आर्जवता मायावर्जन, मार्दव मानस्यागः, चः समुच्चये, एवमशब्दः पूरणे, अनेनापि गाथा-
द्वयेन मङ्गलमुक्तं तत्प्रयोजनं च प्राग्वत् । नचात्र स्तोतव्यपदानां पौनरुक्त्यचिन्ता कार्या, स्तुतिवचनेषु पुनरुक्तदोषानभ्युपगमात् ।
आह्वय "सज्जायज्ज्ञानतवोसहेसु उवएसथुइययाणेसु । सतगुणकिक्त्तणासु य न होन्ति पुणरुक्तदोसा उ ॥ २ ॥

अथाराधनाङ्गभूतामेव महान्तोच्चारणा कर्तुं काम इदमाह—

लोक्यमिह सज्जया जं करिति परमरिसिदेसियमुगार । अहमवि उवट्ठिओ त महव्वयउच्चारण काउ ॥ ४ ॥

लोके तिर्यग्लोकलक्षणे सम्यग्यताः सयता. साधवः, या महान्तोच्चारणा प्रत्यहमुभयकाल विशेषतस्तु पक्षान्तादिषु, कुर्वन्ति
विदधति, किंविशिष्टा महान्तोच्चारणामत आह—परमर्षिमिस्तीर्थरगरणधरैर्देशिता कथिता परमर्षिदेशिता ता, पुनः कथयता ? उदारा
निशिष्टकर्मस्थयकारणत्वात्प्राधान्या, अत एव चादावियमेव प्रतिज्ञाता, अन्यथा श्रुतकीर्तनीदिरप्यत्र करिष्यमाणत्वात्, अहमपि न
केवलमन्ये साधव इत्यपिशब्दार्थः, उपस्थितः प्रह्वीभूतोऽभ्युद्यत इतियावत्, ता पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टा महान्ति बृहन्ति तानि च
तानि त्रतानि च नियमा महान्तानि, महत्त्व चैतेषां सर्वजीवादिविषयेन^१ महाविषयत्वात् । उक्तं च—“पढममि सव्वजीवा, वीए
चरिमे य सव्वदव्वाइ । सेसा महव्वया राखु, तदेवदेसेण दव्वाण ॥ १ ॥ ति ” तदेवदेसेणति तेषां द्रव्याणामेकदेशेनेत्यर्थः । तथा
यावज्जीव त्रिविध त्रिविधेनतिप्रत्याख्यानरूपत्वाच्च तेषामिति, देशविरतायेक्षया महतो वा गुणिनो न्तानि महाव्रतानीति । तेषामुच्चा-
रणा समुत्कीर्तना महान्तोच्चारणा महद्गतोच्चारणा वा ता कर्तुं विधातुमिति ॥ तत्रेदमादिश्वत्र-

^१ विषयत्वेन प्र० ।

से किं तं महन्वयउच्चारणा? महन्वयउच्चारणा पञ्चविंश पञ्चत्ता राई-भोगणवेरमणल्लहा

अथास्य सूत्रस्य कः प्रस्ताव इत्युच्यते प्रश्नश्चत्त्रभिदं, 'एतच्चादावुपन्यस्यन्निदं ज्ञापयति, पृच्छतो मध्यस्थस्य बुद्धिमतोऽर्थिनो विनयेस्य भगवदर्हदुपदिष्टतत्त्वप्ररूपणा कार्यो नान्यस्य तथा चोक्तं " मध्यस्थो बुद्धीमानर्थो श्रोता पात्रमिति स्मृत " इति । पात्रं योग्योऽर्होऽधिकारी चोच्यते तस्मा इदमप्यध्ययनं देयमिति । आह-शुभाध्ययनप्रदानाधिकारे समभावव्यवस्थितानां सर्वसत्त्वहिताय चोद्यतानां महापुरुषाणां किं योग्यायोग्यविभागिरीक्षणेन?, नहि परहितार्थमिह महादानोद्यता मर्ह्यामांशोऽर्थिगुणमपेक्ष्य दानक्रियायां प्रवर्तन्ते दयालव इति, अत्रोच्यते-ननु यत एव शुभाध्ययनप्रदानाधिकारः समभावव्यवस्थिताः सर्वसत्त्वहितोद्यताः महापुरुषाश्च गुरवोऽस्त एव योग्यायोग्यविभागिरीक्षणं न्याय्यं, मा भूदयोग्यप्रदाने तत्सम्यग्योग्याद्यमार्थिजनाऽनर्थ इति, न खलु तत्त्वतोऽचितप्रदानेन दुःखहेतुना विवेकिनमर्थिजनमनुयोजयन्तोऽप्यनवगतपरार्थसंपादनोपायाः पुरुषा भवन्ति दयालव इत्यवधूय मिथ्या-भिमानमालोच्यतामेतदिति । आह-क इवायोग्यप्रदाने दोष इति । उच्यते स ह्यचिन्त्यनिन्तामणिकल्पमनेकभवशतसहस्रोपात्तानि दृष्टुष्टाष्टकर्मराशिजनितदौर्गत्यविच्छेदक्रमपीदमयोग्यत्वादत्राप्य न विधिचदासेवते. लाघवं चास्यासाद्यापादयति, ततो विधिसमासेवक इव कल्याणं अधिधिसमासेवको महदकल्याणमासादयतीति, उक्तं च—" आमे घडे निहचं जहा जलं तं घडं विणासेइ । इय सिद्ध-न्तरहस्सं अप्पाहारं विणासेइ ॥ १ ॥ " ततोऽयोग्यश्रुतप्रदाने दातृकृतमेव वस्तुतस्तस्य तदकल्याणमित्यलं प्रसंजन, प्रकृतं प्रस्तुतः । तत्र सेशब्दो मागधदेशीप्रसिद्धो निपातोऽथशब्दार्थं द्रष्टव्यः, स च वाक्योपन्यासार्थः, किमिति परप्रश्ने ततश्चायं वाक्यार्थः । अथ किं

१ पत्तञ्चा. प्र० ।

तदस्तु महाप्रतोच्चारणा प्राकृतशैल्याभिधेयवह्निवचनानि भवन्तीति न्यायादेव द्रष्टव्य अथ का सा महाप्रतोच्चारणेति । एव सा-
मान्येन केनचित्पत्रे कृते सति भगवान् गुरुः शिष्यवचनानुरोधेनादरार्थं किञ्चिच्छिद्योक्तं प्रत्युच्चार्याह—महाप्रतोच्चारणाऽभिहितस्वरू-
पा पञ्चविधा पञ्चप्रकारैव प्रज्ञप्ता प्ररूपिता न चतुर्विधा प्रथमपश्चिमतीर्थकरतीर्थयोः पञ्चानामेव महाप्रताना भावात् । यदाह—“पञ्च
जप्ता पटमन्तिमजिणाण सेसाण चत्तारिचि ” । अनेन चागृहीतशिष्याभिधानेन निर्वचनसूत्रेणैतदाह—न सर्वमेव सत्र गणधरस्तीर्थकर-
निर्वचनरूप, किं तर्हि ? किञ्चिदेव, बाहुल्येन तु तद् दृढमेव तथा चोक्त—

“ अथ भासइ अरहा सुच गथति गणहर । पिउण ”ति तत्तच्च यदा तीर्थसरगणधरा एव प्रज्ञप्तेत्येवमाहुस्तदाऽयमर्थोऽवसेयो अ-
न्यैरपि तीर्थररगणधरैः प्ररूपितेति । यदा पुनरन्य- कश्चिदाचार्यस्तान्मतानुसारी प्रज्ञप्तेति ग्राह—तदा तीर्थकरगणधरैरेव देखितेत्ययमर्थो
द्रष्टव्यः । किञ्चिदपि सत्याह रात्रिमोजनविरमण—निशिजेमनवर्जेन पष्ठ यस्या सा रात्रिमोजनविरमणपष्ट । अथ रात्रिमोजनविर-
मणपष्ट पञ्चविधत्वमुपदर्शयन्नाह—

तज्जा—सञ्वाओ पाणाइवायाओ घेरमण १ सञ्वाओ सुसावायाओ घेरमणं २ सञ्वाओ अदिनादाणाओ
घेरमण ३ सञ्वाओ मेहुणाओ घेरमण ४ सञ्वाओ परिग्गहाओ घेरमण ५ सञ्वाओ राइमोयणाओ घेरमण ६ ॥
तदर्थेत्युपदर्शितार्थः, सर्वस्मान्निरवशेषान् प्रसत्यावरसहस्रवादरमेदभित्तान् कृतकारितानुमतिभेदाच्चेत्यर्थः, अथवा—द्रव्यतः पृथगी-
ग्रनिज्ञायविषयान्, क्षेत्रतस्त्रिलोकसम्भवात्, कालतोऽतीतादे रात्र्यादिप्रभवाद्वा, भावतो रागद्वेषसमुत्थात् प्राणानामिन्द्रियोन्मृत्सायुता-
दीनामतिपात- प्राणिन- मन्नाशादिभ्यः प्राणातिपातः प्राणिप्राणवियोजनमित्यर्थः, तस्माद्विरमणं सम्यग्ज्ञानश्रद्धानपूर्वक निवर्त्तनमिति ।

तथा सर्वस्मात्सद्भावप्रतिषेधा ? असद्भावोद्भावना २ श्रान्तरोक्ति ३ गह्वी ४ भेदात्कृतादिभेदाच्च, अथवा द्रव्यतः सर्वधर्मास्तिका-
यादिद्रव्यविषयात्, क्षेत्रतः सर्वलोकालोकगोचरात्, कालतोऽतीतादे रात्र्यादिवर्तिनो वा, भावतः कपायनोक्त्यादिप्रभवात् मृषाऽली-
कं वदनं वादो मृषावादस्तस्माद्विरमणं विरतिरिति ॥ २ ॥ तथा सर्वस्मात्कृतादिभेदादथवा द्रव्यतः सचेतनाचेतनद्रव्यविषयात्, क्षे-
त्रतो ग्रामनगरारण्यादिसम्भवात्, कालतोऽतीतादे रात्र्यादिप्रभवाद्वा, भावतो रागद्वेषमोहसमुत्थात्, अदत्तं स्वाभिनाऽवित्तीर्णं तस्या-
ऽऽदानं ग्रहणमदत्तादानं तस्माद्विरमणमिति ॥ ३ ॥ तथा सर्वस्मात्कृतकारितानुमतिभेदात्, अथवा द्रव्यतो दिव्यमानुयैतैश्चभेदात्
रूपरूपपुत्तलिका सहगतभेदाद्वा, क्षेत्रतस्त्रैलोक्यसंभवात्, कालतोऽतीतादे रात्र्यादिसमुत्थाद्वा, भावतो रागद्वेषप्रभवात्, मिथुनः स्त्री-
पुंसद्वन्द्वं तस्य कर्म मिथुनं तस्माद्विरमणमिति ४ तथा सर्वस्मात्कृतादेरथवा द्रव्यतः सर्वद्रव्यविषयात् क्षेत्रतो लोकसंभवात्, कालतोऽतीतादे
रात्र्यादिप्रभवाद्वा, भावतो रागद्वेषविषयात् परिग्रहणं वा परिग्रहस्तस्माद्विरमणमिति ४ तथा सर्वस्मात्कृतादिरू-
पाद्दिवा गृहीतं दिवा भुक्तम् १ दिवा गृहीतं रात्रौ भुक्तम् २ रात्रौ गृहीतं दिवा भुक्तम् ३ रात्रौ गृहीतं रात्रौ भुक्तमिति ४ च-
तुर्भङ्गरूपाचेत्यर्थः । अथवा द्रव्यतश्चतुर्विधहारविषयात्, क्षेत्रतः समयक्षेत्रगोचरात्कालतो रात्र्यादिसंभवात् भावतो रागद्वेषप्रभवात्
रात्रिभोजनात् रजनीजेमनाद्विरमणमिति ६ ॥ एवं सामान्येन व्रतपदकमभिहितमथ विशेषतस्तत्स्वरूपनिरूपणार्थमाह-

तत्थ खलु पढमे भन्ते महन्वा पाणाद्वायाओ वेरमेणं, सत्त्वं भन्ते पाणाद्वायायं पचक्खामि, से सुहमं वा थावरं
वा तसं वा थावरं वा नेव संयं पाणे अद्वायावज्जा, नेवत्तेहिं पाणे अद्वायायवज्जा, पाणे अद्वायायंते वि अन्ने न समणु-
जाणामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेण वायाए काणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजा-

णामि तस्स भन्ते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥

उत्र तेषु पदसु त्रेतेषु मध्ये, सलुशब्दादन्येषु च मध्यमतीर्थकरप्रणीतेषु चतुर्थीमेषु वाक्यालङ्कारार्थो वा सलुशब्दः, प्रथमे सूत्रक्रमप्रामाण्यादौ, भन्तेति गुरोरामन्त्रण अस्य च साधारणश्रुतित्वाद्भदन्त भवान्त भयान्त इति वा सस्कारो विधेयः, तत्र भदन्तः कल्याणः सुखश्चोच्यते तद् रूपत्वाच्चेदुत्वाद्धेति, तथा भयस्य ससारस्यान्तो विनाशस्तेनाचार्येण समाश्रितसत्त्वानां क्रियत इति भवान्तरत्वात् भवान्तः, तथा भयमिहपरलोकादानाकस्मादश्लोकजीविकामरणमेदात्सप्तधा वक्ष्यमाणलक्षणमेतस्य^१ सप्तविधभयस्य यमाचार्यं प्राप्यान्तो भवति स भयान्त इति । एतच्च गुर्वामन्त्रण गुरुसाक्षिकैव तत्रप्रतिपत्तिः साध्वीतिज्ञापनार्थं सर्वशुभानुष्ठानगुरुतन्त्रताप्रतिपादनार्थं चेति । महश्च तद्वत् च महात्रत तस्मिन्महात्रते, महन्च चास्य श्रावकसम्बन्ध्यणुव्रतापेक्षयेति । अत्रान्तरे सप्तचत्वारिंशदधिरूपस्याख्यानमङ्गशताधिकारस्तत्रोपरिष्टाद्वक्ष्यामः । प्राणा इन्द्रियादयस्तेषामतिपातो विनाशः प्राणातिपातो जीवस्य महादुःखोत्पादनं नतु जीवातिपात एव तस्माद्विरमण सम्यग्ज्ञानश्रद्धानपूर्वकं सर्वथा निवर्तनम् । भगवतोक्तमितिशेषः । यतश्चैवमतो उपादेयमेतदिति विनिश्चित्य सर्वं निर्वक्ष्ये न तु परिस्थूरमेव, भदन्तेति गुर्वामन्त्रण, प्रतिपदमनुवृत्तिज्ञापनार्थं च पुनरस्योपन्यासः, प्राणातिपात जीवितविनाश प्रत्यारयामि परिवर्जयामीत्यर्थः, अथवा प्रत्याचक्षे सधृतात्मा साम्प्रतमनागतप्रतिषेधस्यादरेणाभिधानं करोमीत्यर्थः । अनेन ततार्थपरिज्ञानादिगुणयुक्तो तत्रार्ह इत्यावेदयति उक्तं च—

१ तत्रेह लोकाद्भयमिह लोकभय । तथा परलोकात्परमवाद्भय परलोकाभय, तथाऽदानं द्रव्यजातं तस्य नाश हरणादिभ्यो भयमादानभय तथा बाह्यनिमित्तमन्तरेणाऽहेतुकं भयमक्रसाद्भय । तथाऽश्लोकोऽस्त्राद्या तस्माद्भय । तथा जीविकादुर्जीर्घिका तदुत्थ भयमाजीर्घिकाभय तथा मरण प्राणत्यागस्ततो भयं मरणभयम् ॥

“पट्टिण् कहिष अहिगय परिहर उवट्ठावणाए कप्पोत्ति । छक्कं तिहिं विसुद्धं परिहर नवण्ण भेएण ॥ १ ॥ पडपासाउरमाई, दिट्ठता, हुंति वयसमारुहणे । जह मलिणाइसु दोसा सुद्धाइसु नेयमिहइं पि ॥ २ ॥ एयासिं लेसओ विवरणं-पट्टियाए सत्थ (३००) परित्राए छज्जीवणियाए वा, तीए चैव कहियाए गुरूणा वक्खायाए, अहिगयाए अत्थवो परित्रायाए, सम्मं परिहरन्तो उवट्ठावणाए कप्पो जोगो, परिहारमेव वक्खाणेइ-छकन्ति छज्जीवनिकाए, तिहिं मणवयकाएहिं, विसुद्धं परिहरइ नवण्ण भेएण पत्तेयं मणाइक-यकारियाणुमइसरूवेण, सम्मं च परिक्खलण उवट्ठाविजइ नण्णहा, इमे य इत्थं दिट्ठता । मइलो पडो न रत्तिजइ सोधिओ चैव रत्तिजइ । असोहिए मूलपाए पासाओ न कीरइ, सोहिए चैव कीरइ । वसणाईहिं असोहिए आउरे ओसहं न दिज्जइ, सोहिए चैव दिज्जइ । आइसदाओ असंठविए रयणे पडिवंधो न किज्जइ संठविए चैव किज्जइ । एवं पट्टियकहियाईहिं असोहिए सीसे न वया-वरोवणं किज्जइ, सोहिए चैव किज्जइ । असोहिए य करणे गुरूणो दोसो सोहियापालणे सीसस्स दोसोत्ति ” कृतं प्रसंगेन प्रकृत-मुच्यते । तत्र यदुक्तं सर्वं भदन्त प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि तदेतद्विशेषतोऽभिधित्सुराह-से सुहमं^१ वेत्यादि । सेशब्दो मागधदेशी-प्रसिद्धः, अथशब्दार्थः स चोपन्यासे तद्यथा मूक्षं वा वादरं वा त्रसं वा स्यावरं वा । अत्र मूक्षभोऽल्पः परिगृह्यते न तु मूक्षमनाम-कर्मोदयात्तूक्ष्मः तस्य कायेन व्यापादनासम्भवान्, वादरोऽपि स्थूलो वाशब्दो परस्परपेक्षया समुच्ये, स चैकैको द्विधा त्रसः स्या-वरश्च, तत्र मूक्षमस्त्रसः कुन्थ्यादिः स्यावरो वनस्पत्यादिः, वादरस्तु त्रसो गवादिः स्यावरः पृथिव्यादिः । अत्रापि वाशब्दो समुच्ये । एतान् पूर्वोक्तान् नैव स्वयमात्मना प्राणिनो जीवान् अइवाणज्जत्ति विभक्तियत्ययादतिपातयामि विनाशयामि मारयामीतियावत्,

१ सोहिओ प्र० ॥ २ सुद्धुमं प्र० ॥

नैवान्यैरात्मव्यतिरिक्तजनैः प्राणिनोऽतिपातयामि, प्राणिनोऽतिपातयतोऽप्यन्यान् परान्न समनुजानाम्यनुमोदयामि कथमित्याह—
जावज्जीवाए इत्यादि । जावज्जीवाएचि प्राकृतत्वाज्जीवन जीवः प्राणधारण यावज्जीवो यावज्जीवो यावदियच्चे (सि ३-१-३१) इ-
त्यनेनाव्ययीभावसमासस्तत्तथा यावज्जीन प्राणधारण यावत् । अथवा अलाक्षणिकवर्णलोपाद्यावज्जीव भावो यावज्जीवता तथा
यावज्जीवतया आ प्राणोपरमादित्यर्थः । परतस्तु—न विधिर्नापि प्रतिषेधो विद्यामाश्रसादोपग्रसद्वात् प्रतिषेधे तु सुरादिषु अविरतेषूप-
नस्य भङ्गप्रसङ्गात् । किमित्याह—

तिस्रो विधा यस्य प्राणातिपातस्येति गम्यते अस्मां त्रिविधस्त त्रिविधेन करणेन, एतदेव दर्शयति—मनसान्तःकरणेन, वाचा
वचनेन, कायेन शरीरेण । अस्य च करणस्य कर्म उक्तलक्षणं प्राणातिपातः, तमपि वस्तुतो निराकार्यतया सूत्रेणैव दर्शयन्नाह—न
करोमि स्वयं, न कारयाम्यन्यैः, कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि नानुमन्येऽहमिति अत्राह—किं पुनः कारणमुद्देशक्रममतिलन्य व्य-
त्ययेन निर्देशः कृत इति ? अत्रोच्यते करणायत्ता कृतादिरूपा क्रिया प्रवर्तत इति दर्शनार्थं तथाहि—कृतादिरूपा क्रिया मनःप्रभृ-
तिरुपगवशा एव करणाना भावे क्रियाया अपि भावात् अभावे चाभावात्करणानामेव तथाक्रियारूपेण परिणतेरिति भावः । अपरस्त्वाह—
'न करोमि न कारयामि कुर्वन्त न समनुजानामी'त्येतावता ग्रन्थेन गतेषु अप्यन्यमित्यतिरिच्यते, तथाचातिरिक्तेन सूत्रेण नार्थ इत्यत्रो-
च्यते—सामिग्रायकमिदमनुक्तस्याप्यर्थस्य सग्रहार्थं यस्मात्सभजनार्थोयमपिशब्द उभयपदमध्यस्थ एतदावेदयति—यथा कुर्वन्त नानुजा-
नामि एव कारयन्तमप्यन्य अनुज्ञापयन्तमप्यन्य न समनुजानामीति, तथा यथा वर्तमानकाले कुर्वन्तमन्य न समनुजानामि एवम-
पिशब्दादतीतकाले कृतवन्तमपि कारितवतमपि अनुज्ञापितवन्तमपि, एवमनागतकालेऽपीति, तथा न क्रियाक्रियावतोर्भेद एवातो न

केवला क्रिया संभवतीतिख्यापनार्थमन्यग्रहणमिति । तथा तस्य त्रिकालभाविनोऽधिकृतप्राणातिपातस्य संबन्धिनमतीतमवयवं नतु वर्त्तमानमनागतं वा, अतीतस्यैव प्रतिक्रमणत्वात्, भदन्तेतिगुर्वामन्त्रणं प्राग्वत्, प्रतिक्र(क्रा)मामि मिथ्यादुष्कृतं तत्र प्रयच्छा-
मीत्युक्तं भवति; तच्च द्रव्यतो भावतश्च संभवति तत्राद्ये कुलालोदाहरणम्—

“किर एगया एगस्स कुंभगरस्स कुडीए साहुणो ठिया । तत्थेगो चेह्णगो चवलत्तणेण तस्स कुंभगरस्स कोलालाणि अङ्गुलि-
यधणुह (ग) एणं पाहाणेहिं विधेइ । कुंभकारेण पडिजगिओ दिट्ठो भणिओ खुडुगा ! कीस मे कोलाला(ला)णि काणेसि ? खुडुओ भणइ
मिच्छामिदुक्कडं न पुणो विधिस्सं मणागं पमायं गओमिति, एवं सो पुणोवि केलिकीलत्तणेण विधेज्जण चोइओ मिच्छामि दुक्कडं देइ ।
पच्छा कुंभकारेण सट्ठोचि नाज्जण तस्स खुडुगस्स कन्नामोडओ दिट्ठो, सो भणइ दुक्खविओऽहं । कुंभकारो भणइ मिच्छामिदुक्कडं ।
एवं सो पुणो पुणो कन्नामोडयं दाज्जण मिच्छामिदुक्कडं करेइ । पच्छा चेह्णओ भणइ । अहो सुन्दरं मिच्छामिदुक्कडन्ति, कुंभकारो
भणइ, तुब्भवि एरिसं चैव मिच्छामिदुक्कडन्ति । पच्छा ट्ठिओ विधेयव्वस्स । किञ्च । ‘जं दुक्कडन्ति मिच्छा तं चैव निसेवई पुणो पावं ।
पच्चक्खसुसावाई मायानियडीपसङ्गो य’ ॥ १ ॥ इदं द्रव्यप्रतिक्रमणं । भावप्रतिक्रमणे तु मृगावत्युदाहरणं—

“भगवं वद्धमाणसामी कोसंवीए समोसरिओ, तत्थ चन्दसूरा भगवंतं वन्दगा सविमाणा ओइन्ना, तत्थ मिगावई अज्जा उद-
यणमाया (उ) दिवसोत्ति काडं चिरं ठिया । सेसाओ साहुणीओ तित्थगरं वन्दिज्जण पडिगयाओ, चन्दसूरावि सट्ठणं पत्ता । ताहे
सिग्घमेव वियालीहूयं मिगावई वि संभन्ता, गया सोवस्सयं, साहुणीओ वि कयावस्सयाओ अच्छन्ति । तओ मिगावई आलोएडं ? सा
पवत्ता । अज्जचन्दणाए भन्नइ-कीस अज्जे ! चिरं ठियासि ? जुत्तं नाम तुज्ज उप्पमकुलप्पसूयाए एगागिणीए एच्चिरं अच्छंति ? सा

सन्भावणे मिच्छामिदुकुडं भणमाणी अज्जचन्दाए पाएसु निवडिया । अज्जचन्दाणाए वि ताए वेलाए संधारगगयाए निहा आगया,
मिगावईए वि तिव्वमवेगमावन्नाए पावडियाए चेव केवलणाण सद्युपन्न । सप्पो य तेण मग्गेण समागओ, अज्जचन्दाणाए य संथा-
रगाओ हत्थो लंनइ । मिगावईए मा राज्जिहिनि सो हत्थो संधारग चडाविओ । सा विबुद्धा भणइ-किमेय ति अज्जवि तुम अच्छ-
सिचि मिच्छामिदुकुड निदापमाणेण न उट्ठविया सि, मिगावइ भणई-एस सप्पो मा भे खादिहिचि अओ हत्थो चडाविओ । भणइ-
काहिं सो, सा दाएइ, अज्जचन्दाणा अपेच्छमाणी भणइ-अज्जे ! किं ते अइसयो, सा भणइ, आम तो कि छाउमत्थिओ केवलियोचि ।
सा भणइ-केवलियोचि । पच्छा अज्जचन्दाणा मियावईए पाएसु पडिउ भणइ मिच्छामिदुकुड केवली आसाइओ चि” । इद भाव-
प्रतिक्रमण । किञ्च ‘जइ य पडिक्कमियव्व, अवस्स काज्जण पावयं कम्मं । त चेव कायव्व, तो होइ पए पडिक्कन्तो ॥ १ ॥’ तथा
‘निन्दाभि गरीहामी’ति । अत्रात्मसाक्षिकी निन्दा, परसाक्षिकी गर्हा, जुगुप्सोच्यते । निन्दापि द्रव्यतो भावतश्च समवति । तत्र
द्रव्यनिन्दा चित्रकरदारिकाया इव—

“ सा क्रि चित्रकरदारिया ओवरिय पविसिज्जण क्वाडाणि पिहिज्जण चिराणए मणियए चीराणि य पुरओ काउ अप्पाण
निन्दियाइया जहा ‘तुम चित्रकरदारिया, एयाणि ते पिइसन्तियाणि चेलाणि आभरणगाणि य, इमा पुण पडुसुपरयणमाइया रायसिरी,
अवाओ य उन्नयकुलपइयाओ रायवरधूयाओ मोनु राया तुम अनुयचइ, ता मा गव्वं करेसिचि’ एसा दव्वनिन्दा । भावनिन्दा साहुणा
अप्पा निन्दियव्वो ‘जीव तए हिण्ढतेण नारयतिरियगईसु कहवि माणुसत्ते सम्मचानाचरिचाणि लद्धाणि जेसि पसाएण सव्वलोए
माणणिज्जो पूयणिज्जो य, ता मा गव्व काहिसि जहाह वहुस्सुओ उच्चमचरित्तो वचि । तथा हा दुट्ठ कय हा दुट्ठ कारिय अणुमयपि हा

दुष्टु । अन्तो अन्तो उज्झइ, सुसिरो व्व दुमो वणदवेणं ति ॥ १ ॥” गहीपि द्रव्यतो भावतश्च भवति । तत्र द्रव्यगर्हायां मरुक्रोदाहरणं “आणन्दपुरे नरये एगो मरुओ सो १मुल्लाए समं संवासं काऊण उवज्जायस्स कहेइ, जहा-सुविणए सुल्लाए समं संवासं गओमिचि ।” भावगर्हायां तु साधुरुदाहरणं । गन्तूण गुरुसगासे काऊण य अज्जलिं विणयमूलं । जह अप्पणो तह परे जाणवणा एस गरिहचि ॥ १ ॥” किं जुगुप्से इत्याह—आत्मानमतीतप्राणातिपातक्रियाकारिणमश्नाद्यम्, तथा व्युत्सृजामीति विविधं विशेषेण वा भृशं त्यजामि—व्युत्सृजामि अतीतप्राणातिपातमिति गम्यते । आह—यद्येवमतीतप्राणातिपातप्रतिक्रमणमात्रस्य सूत्रस्यैदम्पर्यं न प्रत्युत्पन्नसंवरणमनागतप्रत्याख्यानं चेति, नैतदेवं सत्त्वं भन्ते पाणाइवायं पञ्चक्खामि इत्यादिना तदुभयसिद्धेरिति । अपरस्त्वाह—ननु सर्वं भदन्त प्राणातिपातं प्रत्याख्यामीत्युक्ते प्राणातिपातनिवृत्तिरभिधीयते, तदन्तरं च व्युत्सृजामीतिशब्दप्रयोगे वैपरीत्यमापद्यते । तन्न, यस्मान्मांसादिविरमणक्रियानन्तरं व्युत्सृजामीतिप्रयुक्ते तद्विपक्षत्यागो मांसभक्षणनिवृत्तिरभिधीयते, एवं प्राणातिपातवित्यनन्तरमपि प्रयुक्ते व्युत्सृजामिशब्दे तद्विपक्षत्यागोऽवगम्यत इति न कश्चिदेष इति । व्युत्सर्गोऽपि द्रव्यभावभेदात् द्विधा तत्रोदाहरणं प्रसन्नचन्द्रो यथा—

“खितिपइट्ठिए नयरे पसन्नचन्दो राया, तत्थ य भगवं महावीरो समोसढो, तओ राया धम्मं सोउण सज्जायसंवेगो पव्वइओ गीयत्थो जाओ । अन्नया जिणकप्पं पडिचज्जिउकामो सत्तभावणाए अप्पाणं भावेइ । तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे मसाणे पडिमं पडि-वनो, तत्थ भगवं महावीरो समोसढो, विरइयं देवेहिं समोसरणं, लोगो य वन्दगो नीइ, दुवे य वाणिगया सुमुहदुमुहनामाणो खिइपइट्ठियनगराओ तत्थेव आगया, पसन्नचन्दं पडिमट्ठियं पासिउण सुमुहे ण भणियं एसो सो अम्हाणं सामी जो तहाविहं रायलळिच्छ परिच्चइय

१ ध्याप० प्र० ।

तवसिर् पडिवन्नो, अहो से धन्नया अहो से कयपुन्नयत्ति, दुम्मुहेण भणिय-सुतो एयस्स धन्नया, जो असञ्जायवल पुत्त रज्जे ठच्चिउण पव्वइओ, सो तवस्सी दाइएहि परिभविज्जइ, नगर च उच्चमख(मक्ख) य पडिवन्त, ता एवमणेण बहुलोगो दुक्खे ठविओ, ता सव्वहा अददुव्वो एसोत्ति । ताहे तस्स रायरिसिणो 'कोवो जाओ, चित्तिय चाणेण को मम पुत्तस्स अक्करेइत्ति, तू (नू)णममुगतो ता किं तेण एयवत्थ गओवि ण वावाएमि । माणससङ्गामेण रोइज्झाण पवन्नो । हत्थिणा हत्थि आसेण आस वावाएत्ति विभासा, इत्थ-न्तरे सेणिओ भगवओ वन्दिउ निगच्छइ, तेण दिट्ठो वन्दिओ य तेण ईसिपि न निज्झाइओ, तओ सेणिण चिन्तिय, सुवज्झाणोय-गओ भगव ता इदिसमि ज्ञाणे कालगयस्स का गई भवइत्ति भगवन्त पुच्छिस्सामि । तओ गओ वन्दिउण पुच्छिओ अणेण भगव, जम्मि ज्ञाणे ठिओ मए वन्दिओ प्रसन्नचन्दो तम्मि मयस्स कहि उववाओ भवइ ? । भगवया भणिय-अहे सत्तमपुढवीए । तओ सेणिण चिन्तिय हा किमेयंति । पुणोवि पुच्छिस्स । एत्थन्तरम्मि पसन्नचन्दस्स माणसे सङ्गामे पहाणनायेण सहावडियस्स अस्ति-सच्चिक्कप्पणीपमुहाइ खय गयाइ पहरणाइ, तओ णेण सिरचाणेण वावाएमिच्चि परामुसियमुत्तमङ्ग जाव लोय कय पासति तओ सवे-गमावन्नो अचन्तविसुज्झमाणपरिणामेण अत्ताण निन्दिउं पयट्ठो, समाहियमणेण पुणरवि सुक्कज्झाण । एत्थन्तरम्मि सेणिण भगव पुणोवि पुच्छिओ जारिसे ज्ञाणे सपइ पसन्नचन्दो वट्ठइ तारिसे मयस्स कहि उववाओ ? भगवया भणिय-अणुत्तरसुरेसु । तओ सेणि-एण भणिय-पुव्व किमन्नहा परूविय उयाहु मया अन्नहावहारियंति भगवया भणिय-नन्नहा परूविय नावि तए अन्नहावगय । तओ सेणिण भणिय-वहमेयन्ति । तओ भगवया मव्वो वुत्तंतो माहिओ । एत्थन्तरम्मि य प्रसन्नचन्दमहरिसिणो समीवे दिव्वो

१ तं सोउण कोवो० प्र० ।

देवदुन्दुहिसणाहो महन्तकलयलो उद्गाहओ, तओ सेणिएण भणिग्रं-भयवं किमेयन्ति?। भगवया भणिग्रं-तस्सेव विसुज्झमाणपरि
णामस्स केवलनाणं समुप्पणं, तओ देवो से महिमं करेतित्ति।” एवं प्रसचन्द्रो द्रव्यव्युत्सर्गभावव्युत्सर्गयोरुदाहरणं विज्ञेय इति ॥
साम्प्रतं प्रागुपन्यस्तप्रत्याख्यानभेदाः प्रदर्श्यन्ते, तत्र गाथा “ सीयालं भङ्गसयं, पचक्खाणंमि जस्स उवलद्धं । सो खलु
पचक्खाणे, कुसलो सेसा अकुसलाउ ” एतच्च प्रत्याख्यानभेदपरिमाणं साधून् श्रावकांश्चात्रित्यामुनोपायेन भावनीयं । “ तिन्नि-
तिया तिन्नि दुया, तिन्निक्केकाय होन्ति जोगेसुं । ति दु एक्कं, ति दु एक्कं, ति दु एक्कं चैव करणाइं ॥ १ ॥ पढमे लब्भइ एगो, से-
सेसु पएसु तिय तिय तियं च । दो नव तिय दोनवगा, तिगुणिय सीयालभङ्गसयं ॥ २ ॥ स्थापना चयं । भावना त्वियं । “ न क-
रेई न कारवेइ करेन्तमन्नं न समणुजाणइ मणेणं वायाए काएणं एस
एक्को ” अत्राह ‘न करेइच्चाइ तिगं गिहिणो कह होइ देसविरयस्स भन्नइ
विसयस्स चहिं पडिसेहो अणुमईए वि ॥ १ ॥ केई भणंति गिहिणो, तिचिहं
तिविहेण नत्थि संवरणं । तं न जओ निद्धिं, पन्नत्तोए विसेसेउं ॥ २ ॥ तो
कह गिज्जुत्तीए, अणुमइनिसेहोत्ति सेसविसयम्मि । सामणे वा नत्थि^१ उ, तिचिहं तिविहेण को दोसो ॥ ३ ॥ पुत्ताईसंतइनिमित्त, मित्त-
मेगारसिं पवन्नस्स । जंपंति केइ गिहिणो, दिक्खाभिमुहस्स तिचिहंपि ॥ ४ ॥’ आह कहं पुण मणसा, करणं कारावणं अणुमई य ।
जह वइत्तणुजोगेहिं, करणाई तह भवे मणसा ॥ ५ ॥ तदहीणत्ता वइत्तणुकरणाईण (मनोऽधीनत्वाद्दचनतनुकरणादीनामिति) म (णं अ)

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|--------|
| ३ | ३ | ३ | २ | २ | २ | १ | १ | १ | योगः । |
| ३ | २ | १ | ३ | २ | १ | ३ | २ | १ | करणाणि |
| १ | ३ | ३ | ३ | ९ | ९ | ३ | ९ | ९ | लब्धम् |

हव मणवरण सावज्जोगमणण पन्नत्त वीयरोगेहि ॥६॥ कारवण पुण मणसा चिन्तेइ करेउ एस सावज्ज । चिन्तेइ य कए उण सुहु कय अणुमेइ होइ ॥८॥' इयाणि वीओ मेओ-न करेइ न कारवेइ करन्तपि अन्न न समणुजाणइ मणेण वायाए एस एको, तहा मणेण काएण वीओ, तहा वायाए काएण तइओ ॥३॥ एम वीओ मूलमेओ गओ । एवमनया दिशा शेषा अपि भावनीयाः । सुगमत्वाद्विस्तर-मयाच्च न दर्शिताः । नवर 'लद्धफलमाणमेय, भङ्गा उ हवन्ति अउणपन्नास । तीयाणागयसइगुणिय कालेण होइ इम ॥१॥ सीयालं भङ्गसय कह । कालतिएण होइ गुणणाउ । तीयस्स पडिक्कमण, पच्चुपन्नस्स मवरण ॥२॥ पक्कखाण च तहा, होइ य एस्सस्स एव गुणणाउ । कालतिएण भणिया, जिणगणहरवायएहि च । ३ । अत्र चाद्यभेदत्रय साधुश्रावकोपयोगि, शेषभङ्गास्तु गृहस्थोपयोगिनः । आह-साधुप्रत्याख्याननिरूपणाया कः श्रामकप्रत्याख्यानभेदकथनस्यावसरः ? । उच्यते-प्रत्याख्यानसामान्यात् तदभिधानेऽपि न दोषः । कृत प्रसङ्गेन, प्रकृतमुच्यते-इह च सूक्ष्म वा नादर वेत्यादिना द्रव्यप्राणातिपातोऽभिहितोऽनेन चैकग्रहणे तज्जातीयग्रहण-मिति न्यायाच्चतुर्विधः प्राणातिपात उपलक्षित इत्यतस्तदभिधानायाह-

से पाणाइवाण चउव्विहे पन्नत्ते त जहा-दब्बओ खित्तओ कालओ भावओ, दब्बओ ण पाणाइवाए छसु जीव निक्काणसु, खेत्तओ ण पाणाइवाए सव्वलोण, कालओ ण पाणाइवाए दिया वा राओ वा, भावओ ण पाणा-इवाए राणेण वा दोसेण वा ॥

सेचि स पूर्वोक्त. प्राणातिपातः प्राणिप्राणवियोगः, चतुर्विधश्चतु प्रकारः प्रज्ञप्तो जिनैरभिहितस्तद्यथा-द्रव्यतो द्रव्यप्रधानतामा-थ्रित्य, क्षेत्रतः क्षेत्रमङ्गीकृत्य, कालत. कालं प्रतीत्य, भावत. भावसुरीकृत्य । एतानेव भेदान् व्याचष्टे-द्रव्यत इति व्याख्येयपदप-

रामर्शः, णमिति वाक्यालङ्कारे, प्राणातिपातः पट्सु पट्संख्येषु जीवनिकायेषु सूक्ष्मादिभेदभिन्नेषु प्राणिगणेषु संभवतीतिशेषः । क्षेत्रतो णमित्यलङ्कारे प्राणातिपातः सर्वलोके तिर्यग्लोकादिभेदभिन्ने भुवने भवतीति । कालतो णमिति प्राग्वत् प्राणातिपातो दिवा-वासरे, वा समुच्चये, रात्रौ-रजन्यां, वा समुच्चय एव स्यादिति । भावतो णमिति प्राग्वदेव प्राणातिपातो रागेण—मांसादिभक्षणाद्य-भिप्रायलक्षणेन, द्वेपेण—शत्रुहननादिपरिणामस्वरूपेण, वाशब्दौ समुच्चये, स्यादिति द्रव्यभावपदसमुत्था चतुर्भङ्गिका चात्र तद्यथा-द्रव्यतो हिंसा भावतश्च ? तथा द्रव्यतो न भावतः २ तथा भावतो न द्रव्यतः ३ तथा न द्रव्यतो न भावत इति ४ । तत्रायं भङ्ग-कभावार्थः—द्रव्यतो भावतश्चेति जहा ‘ केइ पुरिसे भियवहाए परिणते भियं पासित्ता आयन्नायड्डियकोदण्डजीवे सरं निसिरेज्जा, से य भिगे तेण सरेण विद्धे मए सिया, एसा दब्बओ हिंसा भावओ वि ’ । या पुनर्द्रव्यतो न भावतः सा खल्वीयादिसमितस्य साधोः कारणे गच्छत इति । उक्तं च “उच्चालियम्मि पाए इरियासमियस्स संकमट्टाए । वावज्जेज्ज कुलिङ्गी मरेज्ज तं जोगमासज्ज । २ । न उ तस्स तन्निमित्तो बंधो सुहुमो वि देसिओ समये । अणवज्जो उवओगेण सव्वभावेण सो जम्हा” २ इत्यादि । या पुनर्भावतो न द्रव्यतः सेयं ‘ जहा केइ पुरिसे मंदमंदप्पगासे पएसे संठियं ईसिं चलियकायं रज्जु पासित्ता एस अहिंत्ति तत्थ (तच्चह) हणणपरिणए निकट्टियासिपत्ते दुयं दुयं छिदिज्जा एसा भावओ हिंसा न दब्बओ चरमभङ्गस्तु शून्य इति । एवं प्राणातिपातं’ भेदतोऽभिधायथ तस्यैवातीतकालविहितस्य सविशेषनिन्दाप्रतिपादकं ब्रूवमाह—

जं मए इमस्स धम्मस्स केवलपन्नत्तस्स अहिंसात्तल्लणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खंतिप्पहाणस्स अहि-
रत्नसोवन्नियस्स उवसमपभवस्स नवबंधेरगुत्तस्स अपयमाणस्स भिक्खवाचित्तिस्स कुक्खवीसंबलस्स निरग्गिस-

रणस्स सपक्खालियस्स चत्तदोसस्स गुणगाहियस्स निव्वियारस्स निविच्चीलक्खणस्स पथमएव्वयजुत्तस्स असनिरिसचयस्स अविसवाइस्स ससारपारगामियस्स निव्वानगमणपज्जवसाणफलस्स पुब्बि अण्णाणयाए असवणयाण अवोहिण अणभिगमेण अभिगमेण वा पमाण्ण रागदोसपडियद्वयाण बालयाए मोहयाए मदयाए किट्ठयाण तिगारवगरुयाण चउकसाओवगण्ण पचिदिओवसेट्ठेणं पडुपन्नभारियाण सायासोक्खमणुपालयेतेणं इह वा भवे अनेसु वा भवगहणेसु पाणाइवाओ कओ वा काराविओ वा कीरतो वा परेहिं समणुज्जाओ तं निर्दामि गरिहमि तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएणं ।

अत्र च यो मयाऽस्य धर्मस्य केवलप्रज्ञासादिद्वाविंशतिविशेषेणविशेषितस्य पूर्वमज्ञानतादिभिश्चतुर्भिः प्रमादादिभिश्चैकादशभिः कारणैः प्राणातिपातः कृतस्त निन्दामीत्यादिसम्बन्धो द्रष्टव्यः । जमिति विभक्तिव्यत्ययाद्यः प्राणातिपात इति योगः । भाषामात्रे वा यदितिपद व्याख्येय । मेवेति प्रतिक्रामरूपाधुरात्मान निर्दिशति । अस्य खहृदयप्रत्यक्षस्य धर्मस्य प्रक्रमात्सर्वचारित्रात्मकस्य, अत्र च 'जपि य मए इमस्स धम्मस्स' तथा 'जपि य इम अम्हेहि इमस्स धम्मस्से'त्यादिपाठान्तराण्युक्तानुसारतः स्वय व्याख्येयानीति । किंविशिष्टस्य? केवलप्रज्ञास्य सर्वज्ञोपदिष्टस्य ॥ १ ॥ तथा अहिंसा प्राणिंसरक्षण लक्षणं चिद्ध यस्यासौ अहिसालक्षणः सत्त्वानुकम्पानुमेयसम्भव इत्यर्थस्तस्य ॥ २ ॥ तथा सत्येनावितथभाषणेनाधिष्ठितः समाश्रितः सत्याधिष्ठितः सत्यवचनव्याप्त इत्यर्थस्तस्य ॥ ३ ॥ तथा विनयो विनीतता मूल कारण यस्यासौ विनयप्रभग इत्यर्थस्तस्य ॥ ४ ॥ तथा क्षान्तिः क्षमा प्रथाना सारभूता यस्यासौ क्षान्तिप्रधानस्तस्य ॥ ५ ॥ तथा हिरण्यं रजत सौवर्णिकं सुवर्णमय कनककलशादि न विद्यते हिरण्यसौवर्णिके

यत्रा (स्या) सौ अहिरण्यसौवर्णिक ऊपलक्षणत्वात्सर्वपरिग्रहरहित इत्यर्थस्तस्य ॥ ६ ॥ तथोपशम इन्द्रियनोद्विन्द्वयजपस्तस्मात्प्रभवो जन्मोत्पत्तिर्यस्यासौ उपशमप्रभव इन्द्रियमनोनिग्रहलभ्य इत्यर्थस्तस्य ॥ ७ ॥ तथा नच ब्रह्मचर्याणि गुप्तिशब्दलोपात् वसतिकथाद्या नचब्रह्मचर्यगुप्तयस्ताभिर्गुप्तः संरक्षितो नचब्रह्मचर्यगुप्तिगुप्तस्तस्य ॥ ८ ॥ तथा न विद्यन्ते पचमानाः पाचका यत्राऽसौ अपचमानः पाकक्रियाविनिवृत्तसत्त्वासेवित इत्यर्थः । अथवा पचते पचमानो न पचमानोऽपचमानो धर्मो धर्मधर्म्मिणोर्भेदोपचारादेवमन्यत्राऽपि द्रष्टव्यम् ॥ ९ ॥ अत एव भिक्षावृत्तेर्भिक्षया भक्तादेः परतो याचनेन वृत्तिवर्तिनं धर्मसाधककायपालनं यत्रासौ भिक्षावृत्तिस्तस्य ॥ १० ॥ तथा कुक्षावेव बहिःसंचयाभावाज्जटार एव शम्बलं पार्थेयं यत्रासौ कुक्षिशब्दस्तस्य ॥ ११ ॥ तथा निरगतमग्नेः पावकाच्छरणं शीतादिपरित्राणं यत्र । अथवा निर्गते स्वीकाराभावादग्निशरणे बहिर्भवने यत्रासौ निरग्निशरणः तस्य । अथवा निर्गतमग्नेः स्मरणं यत्रासौ निरग्निस्मरणस्तस्य ॥ १२ ॥ तथा संप्रक्षालयति कर्ममलं शोधयतीत्येवंशीलः सम्प्रक्षाली तस्य कग्रत्ययोपादानाद्वा सम्प्रक्षालिकस्य सम्प्रक्षालितस्य वा सर्वदोषमलरहितस्य ॥ १३ ॥ तथा त्यक्ता हानिं नीता अभावमापादिता इतियावदोषा मिथ्यात्वज्ञानादिदूषणानि येनासौ त्यक्तदोषः । अथवा त्यक्तो द्वेषोऽप्रीतिलक्षणो यस्मिन्नसौ त्यक्तद्वेषस्तस्य ॥ १४ ॥ अत एव गुणग्राहिणो गुणग्रहणशीलस्य कग्रत्ययविधानाद्गुणग्राहिकस्य वा पाठान्तरं तथाहि—प्रकृतधर्मचारिणो गुणवद्गुणोपबृंहणपरा एव भवन्त्यन्यथा धर्मस्यैवाभावप्रसङ्गात् । यदाह—“ नो खलु अप्परिविडिन् निच्छयओमडलिण् व सम्मत्ते । होई तओ परिणामो जुत्तोणुववृहणार्इया ” ॥ १५ ॥ तथा निर्गतो विकारः कामोन्मादलक्षणो यस्मादसौ निर्विकारस्तस्य ॥ १६ ॥ तथा निवृत्तिलक्षणस्य सर्वसावद्ययोगोपरमस्वभावस्य ॥ १७ ॥ तथा पंचमहाव्रतयुक्तस्येतिप्रतीतं नवरं अहिंसालक्षणस्येत्याद्याभिधानेन्यस्याभिधानं महाव्रतानां प्राधान्यख्या-

यनार्थमनुक्तमहान्तसंग्रहार्थं च तथाहि-नात्रादत्तादान कण्ठतः केनापि विशेषणेनाभिहितमतो युज्यतेऽस्य (७) विशेषणस्योपन्यास इति ॥ १८ ॥ तथा न विद्यते सनिधिमौदकोदकत्वज्जूरहरतीतक्यादेः पयुषितस्य सचयो धारण यत्रासावसनिधिसचयस्तस्य ॥ १९ ॥ तथा अविस्वादिनो दृष्ट्याविरोधिनः पाठान्तरे वा अविस्वादितस्य सदृभूतप्रमाणावाधितस्येत्यर्थः ॥ २० ॥ तथा ससारपार भवार्ण-
वतीर गमयति तदारूढप्राणिनः पोटवत्प्रापयतीति ससारपारगामी तस्य, कप्रत्ययोपादानात् ससारपारगामिकस्य वा ॥ २१ ॥ तथा निर्वाणगमन मुक्तिप्राप्तिः, पर्यवसाने आनुपङ्गिचक्षुरमनुजसुखानुभवपर्यन्ते, फलं कार्यं, यस्यासौ निर्वाणगमनपर्यवसानफलस्तस्य ॥ २२ ॥ एवंविधस्य धर्मस्य पूर्वं धर्मप्रतिपत्तिकालात्प्राक् अज्ञानतया सामान्यतोऽवगमाभावेन ॥ १ ॥ तथाऽश्रवणतया प्रज्ञापकसु-
खादनाकर्णनभावेन ॥ २ ॥ अथवा श्रवणेपि अगोहिपि अगोच्या अवोधेन यथावद्धर्मस्वरूपापरिज्ञानेन ॥ ३ ॥ अथवा व्यवहारतः श्रवणावगमसद्भावेऽपि अणभिगमेणति अनभिगमेन सम्यगप्रतिपत्त्येत्यर्थः, अथवा अभिगमेण वत्ति विभक्तिव्यत्ययादभिगमे वा सम्य-
ग्धर्मप्रतिपत्तौ वा प्रमादेन मद्यविषयादिलक्षणेन ॥ १ ॥ तथा रागद्वेषप्रतिबद्धतया रागद्वेषाकुलतयेत्यर्थः ॥ २ ॥ तथा चालतया शिशुतया अपण्डिततया वा ॥ ३ ॥ तथा मोहतया विचित्रतया मोहनीयकर्मण्यत्ततया वा ॥ ४ ॥ तथा मन्दतया कायजडतया अलसतयेत्यर्थः ॥ ५ ॥ तथा क्रिडयाएत्ति क्रीडतया केलीकिलतया द्युतादिक्रीडनपरतयेत्यर्थः ॥ ६ ॥ तथा त्रिगौरवगुरुकतया ऋद्धि-
रससातलक्षणगौरवत्रिरुभारिकतया ॥ ७ ॥ तथा चतुःरुपायोपगतेन क्रोधाद्युदयवशगमनेनेत्यर्थः ॥ ८ ॥ तथा पञ्चेन्द्रियाणां स्पर्शना-
दिहृषीकाणां उप सामीप्येन वश आयतता वर्णलोपात्पञ्चेन्द्रियोपवशस्तेन यदार्त्तमार्त्तध्यान विह्वलतेत्यर्थः पञ्चेन्द्रियोपवशात् तेन ॥ ९ ॥ तथा पडुपन्नभारियाएत्ति । इह प्रत्युत्पन्न वर्तमानमुत्पन्न वोच्यते ततश्च प्रत्युत्पन्नश्चासौ भारश्च कर्मणामिति गम्यते प्रत्युपन्नभारः स

विद्यते यस्यासौ प्रत्युत्पन्नभारी तस्य भावः प्रत्युत्पन्नभारिता तथा कर्मगुरुतयेत्युक्तं भवति । पाठान्तरस्तु प्रतिपूर्णभारितया भावार्थः पूर्ववत् ॥ १० ॥ तथा सातात्सातवेदनीयकर्मणः सकाशात्सुखं शर्म सातसुखं, अथवा सातं च तत्सुखं च सातसुखमतिशयसुखं तदनुपालयताऽनुभवता सुखासक्तमनसेत्यर्थः । पाठान्तरे तु सदा सर्वकालं सुखमनुपालयतेति व्यक्तम् ॥ ११ ॥ इहं वचि विन्दुलोपात् इह वास्मिन्ननुभूयमाने भवे मनुष्यजन्मनि, अन्येषु वा असाज्जन्मनोऽपरेषु भवग्रहणेषु जन्मोपादानेषु प्राणातिपातः कृतो वा स्वयं निवर्तितः, कारितो वाऽन्यैर्विधापितः, क्रियमाणो वा विधीयमानः परैरन्यैः समनुज्ञातोऽनुमोदितस्तं प्राणातिपातं । निन्दाभि सप्रत्यक्षमेव जुगुप्से, तथा गर्हामि गुरुसमक्षं जुगुप्से, त्रिविधं कृतकारितानुमतिभेदान् त्रिप्रकारं त्रिविधेन त्रिप्रकारेण करणेन । तदेवाह—मनसा वाचा कायेनेति प्रतीतमेव ॥ सांप्रतं त्रैकालिकप्राणातिपातविवर्ति प्रतिपादयन्नाह—

अह्यं निन्दाभि पटुपन्नं संवरेमि अणागयं पचयत्वामि सन्धं पाणाह्वायं

अतीतं अतीतकालकृतं, निन्दाभि । तथा प्रत्युत्पन्नं वर्त्तमानसमयसम्भविनं संवृणोमि भवंतं वारयामीत्यर्थः । तथाऽनागतं भविष्यत्कालविषयं प्रत्याख्यामीति पूर्ववत् । किं तदित्याह—सर्वं समस्तं न पुनः परिस्थिरमेव प्राणातिपातं जीवितविनाशं । इदमेवानागतप्रत्याख्यानं विशेषयन्नाह—

जावज्जीवाए अणिसिओहं नेव संयं पाणे अह्वाएज्जा नेवजेहिं पाणे अह्वायावेज्जा पाणे अह्वायन्ते वि अन्ने न समणुजाणामि

यावज्जीवं प्राणधारण यावत् अनिश्चितोऽह इहपरलोकाशसाविप्रशुक्तोऽह ममेतो व्रतानुपालनात् किञ्चिदमरसुप्त मनुजसुख वा भूयादित्याकाधारहित इत्यर्थः । नैव स्वय प्राणानन्दन् अङ्गाएज्जति उक्तहेतोरतिपातयामि, नैवान्यैः प्राणान् अङ्गाया-
वेज्जति अतिपातयामि, प्राणानतिफलयतोऽप्यन्यान् समनुजानामि, कापि नेव सयमित्यादिपदानि न दृश्यन्ते । कतिसाक्षिक पुनरिदं
प्रत्याख्यानमिति चेत् ? उच्यते, अहंदादिपञ्चकसाक्षिक, एतदेव दर्शयति—

तज्जहा-अरहन्तसखिखय सिद्धसखिखयं साहुसखिखय देवसखिखय अण्णसखिखय

तद्यथेत्युपदर्शनार्थः अहंतस्तीर्थकरास्ते साक्षिणः समक्षभाववर्त्तिनो यत्र तत्, शेषाद्वेति (७-३-१७५) कप्रत्ययविधानादहं-
त्साक्षिक प्रत्याख्यानक्रियाविशेषण चैतदेवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् । तथाहीहक्षेत्रवर्त्तिनोऽन्यक्षेत्रवर्त्तिनो वा तीर्थकराः केवलवरज्ञानप्रधा-
नचक्षुषा ममेदं प्रत्याख्यानं पश्यन्तीत्यतस्तत्साक्षिकमुच्यते एव सिद्धा मुक्तिपदप्राप्ताः साक्षिणो दिव्यज्ञानभावेन समक्षभाववर्त्तिनो-
यत्र तत्सिद्धसाक्षिक । आहोभयप्रत्यक्षभावे लोके साक्षिकव्यवहारो रूढः, नचात्र प्रत्याख्यानकर्तुः सिद्धाः प्रत्यक्षा अतीन्द्रियज्ञानगो-
चरत्वाच्चेष्टा, तत्कथं ते तस्य साक्षिणः ? उच्यते-श्रुतवासितमतेस्तत्स्वरूपज्ञस्य तस्य ते भावकल्पनया प्रत्यक्षा इवेति कथं न साक्षिण
इति । तथा साधवो मुनयस्ते सातिशयज्ञानवन्त इतरे वा विरतिप्रतिपत्तिसमयसमीपवर्त्तिनः साक्षिणो यत्र तत्साधुसाक्षिकं । तथा देवा
भजनपत्यादयस्ते जिनभवनार्थाधिष्ठायिनस्तिर्यग्लोकसञ्चारिण्यवो वा विरतिप्रतिपत्तिक्रमभाविनश्चैत्यवन्दनाधुपचारात्समीपमुपगताः
स्वस्थानस्था वा कथंचित् द्वीपमुद्रान् प्रति प्रयुक्तावधयः साक्षिणो यत्र तदेवसाक्षिकं । यदाह-चूर्णिकारः 'विरट्पण्डितिकाले चिद-

वंदणाङ्गोवयारेण अवस्समहासंनिहिया देवया सन्निहाणम्मि भवइ अतो देवसखिखयं भणियं । अहवा 'भवणवणजोइ (स) वेमा-
णिया देवा सट्ठाणत्था चेव अहापवत्तोवहिणा दीवं दीवपज्जवेहिं समुदं समुदपज्जवेहिं बहवे नारयतिरियमणुयदेवे य विविहभावसं-
पउत्ते पेच्छमाणा साहुंणि पाणाइवायविरइं पडिवज्जमाणं पेच्छन्ति, विसेसओ तिरियजम्भगा दियराओ दिसिविदिसासुं चरन्तित्ति ।'
तथात्मा स्वजीवः स स्वसंवित्प्रत्यक्षविरतिपरिणामपरिणतः साक्षी यत्र तदात्मसाक्षिकं । इह ससाक्ष्यं कृतमनुष्ठानमत्यन्तदृढं जायत
इति साक्षिणः प्रतिपादिताः । पृथग्जनेऽपि प्रतीतमेव तद्यदुत ससाक्षिको व्यवहारो निश्चलो भवतीति । एवं च कृते यत्संपद्यते तदाह
एवं भवइ भिक्खू वा भिक्खुणी वा सज्जयविरयपडिहयपच्चखायपावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ
वा सुत्ते वा जागरमाणे वा ।

एवमिति प्रागुक्तप्रत्याख्याने संपन्ने सति किमित्याह—भवति जायते, क इत्याह—भिक्षुर्वेति आरम्भत्यागाद्धर्मकायपरिपालनाय
भिक्षुणशीलो भिक्षुरेवं भिक्षुक्यपि, पुरुषोत्तमो धर्मइति कृत्वा भिक्षुर्विशेष्यते । तद्विशेषणानि च भिक्षुक्या अपि द्रष्टव्यानीत्याह—
संयतविरतप्रतिहृतप्रत्याख्यातपापकर्मा तत्र सामस्त्येन यतः संयतः सप्तदशप्रकारसंयमोपेतस्तथा विविधमनेकधा द्वावशविधे तपसि
रतो विरतस्ततश्च संयतश्चासौ विरतश्च संयतविरतः । तथा प्रतिहतं स्थितिहासतो ग्रन्थिभेदेन विनाशितं प्रत्याख्यातं च हेत्वभावतः
पुनर्वृद्धयभावेन निराकृतं पापमशुभं कर्म ज्ञानावरणीयादि धेन स तथाविधस्ततः पुनः पूर्वपदेन सह कर्मधारयः, दिवा वा दिवसे
वा रात्रौ वा रजन्यां वा एकको वा कारणिकावस्थायामसहायो वा, पर्पद्गतो वा साधुसंहतिमध्यवर्त्ती वा, सुप्तो वा रात्रिमध्ययामद्वये
निद्रागतो वा, जाग्रद्वा निद्रावियुक्तो वेति । शेषं तथैवेति । सांप्रतं प्राणातिपातविरतिमेव स्तुवन्नाह—

एतत् खलु पाणाइवायस्स घेरमणे हि ए सुहे खमे निस्सेसिण आणुगामिण सन्वेसिं भूयाणं सन्वेसिं
जीवाण सन्वेसिं सत्ताण अदुक्खणयाण अजूरणयाण अतिप्पणयाण अपीडणयाण अपरियावणयाण अणोद्वणयाण
महत्थे महागुणे महाणुभावे महापुरिसाणुचिन्ने परमरिसिदेसिण पसत्थे त दुक्खल्लयाण कम्मक्खयाण मोक्खलयाण
योहिलाभाण ससारुत्तराणाण त्तिक्कट्ट उवसपज्जित्ताण विहरामि ॥

एतच्च लिङ्गव्यत्ययादिदमधिकृत खलु निश्चयेन प्राणातिपातस्येति विभक्त्यत्ययात्प्राणातिपाताजीवार्हिसायाः घेरमणेति
विरमण निवृत्तिर्वर्तते, किमित्याह-द्विएचि हित कल्याण तत्कारित्वाद्विदित पथ्यभोजनवत् । तथा सुख शर्म तद्वेतुत्वासुख पिपा-
सितशीतलजलपानवत् । तथा क्षम युक्त सद्गतमुचितरूपमितियावत् । तथा निस्सेसिएचि प्राकृतत्वेन यकारलोपात् निःश्रेयसो मोक्ष-
स्तत्कारणत्वाग्निःश्रेयस तदेव निःश्रेयसिक । तथा आनुगामिकमनुगमनशील भवपरम्परानुबन्धिसुखजनकमित्यर्थः । कथमिदमेववि-
धमित्याह-सर्वेपा निःश्रेयाणा प्राणा इन्द्रियपञ्चकमनःप्रभृतित्रिविधबलोच्छ्वासनिश्वासासार्धलक्षणा असवो विद्यन्ते येषा तेऽतिशायनार्थ-
मत्वर्थीयात्प्रत्ययविधानात्समग्रप्राणधारिणः प्राणाः पञ्चेन्द्रियप्राणिन इत्यर्थस्तेषा । तथा सर्वेपा समस्ताना अभूवन् भवन्ति भविष्यन्ति
चेति भूतानि पृथिवीजलज्ज्वलनपवननस्पतयः कालत्रयच्यपिसत्तासमन्वितस्तास्तेषा । तथा निरुपक्रममजीवितेन जीवन्तीति जीवाः
देवनारकोचमपुरुषाऽसख्येयवर्षयुस्तिर्यङ्मनश्चरमशरीरिलक्षणा यथोपनिबद्धजीवनधम्मर्माणस्तेषा । तथा सर्वेपा लोकोपकारमात्रहेतु-
सत्त्वोपेतत्वात्सच्चा सोपक्रमायुषस्तिर्यङ्मनुष्याः असपूर्णप्राणभाजो द्वित्रिचतुरिन्द्रियाश्च तेषा, काप्यमीपा परस्परमेव विशेषो दृश्यते
यथा “प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ता भूतास्तु तरवः स्मृताः । जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः शेषाः सत्त्वा इतीरिताः” एकार्थिकानि चैतान्यत्या-

दररक्षणीयताख्यापनाय नानादेशजविनेयानुग्रहाय प्रयुक्तानीति । एतेषां च अदुःखणयाएचि अदुःखनतया अदुःखोत्पादनेन मान-
सिकासातानुदीरणेनेत्यर्थः । तथा अशोचनतया शोकानुत्पादनेन । तथा अजूरणतया शरीरजीर्णत्वाऽविधानेन, दृश्यन्ते चारम्भिणो
जना भारवाहनाहारनिरोधकशलाकुशारानिपातादिभिर्वृषभमहिषाश्चक्रिकरभरासभादीनां शरीराणि जूरयन्तोऽतस्तदकरणेनेति ।
तथा अत्तेपनतया स्वेदलालाश्रुजलक्षरणकारणपरिवर्जनेन । तथा अपीडनतया पादाद्यनवगाहनेन । तथा अपरितापतनया समन्ताच्छ-
रीरसन्तापपरिहारतः । तथा अनवद्रावणतया उत्त्रासनकरणाभावेन मारणपरिहारेण वा । किंचेदं प्राणातिपातविरमणपदं महार्थं महान्
प्रभूतोऽर्थः फलस्वरूपाद्यभिधेयं यस्य तन्महार्थं महागोचरं । तथा महांशसौ गुणश्च महागुणः सकलगुणाधारत्वान्महाव्रतानामिति ।^१
तथा महानतिशायी अनुभावः स्वर्गापवर्गप्रदानादिलक्षणं माहात्म्यं यस्य तन्महानुभावं । तथा महापुरुषैस्तीर्थकरणगणधरादिभिरुत्त-
मनरैरनुचीर्णं एकदासेवनात्पश्चादप्यासेवितं महापुरुषानुचीर्णं । तथा परमर्षिभिस्तीर्थकरादिभिरेव देशितं भव्योपकाराय कथितं पर-
मर्षिदेशितं । तथा प्रशस्तं अत्यन्तशुभं सकलकल्याणकलापकारणत्वात् यतैश्वर्यमतस्तप्राणातिपातविरमणं दुःखक्षयाय शारीरमानसा-
नेककेशविलयाम्, कर्मक्षयाय ज्ञानावरणाद्यदृष्टवियोगाय मोक्षाय पाठान्तरतो मोक्षतायै परमनिःश्रेयसायेत्यर्थः, बोधिलाभाय जन्मा-
न्तरे सम्यक्त्वादिसद्धर्मप्राप्तये, संसारोत्तारणाय महाभीमभवभ्रमणपारगमनाय, मे भविष्यतीति गम्यत इतिकृत्वा इतिहेतोः, उप-

१ सकलव्रतज्येष्ठत्वादाद्यव्रतस्य । आह च-पक्वं चिय पृथ चयं निदिष्टुं जिणचरेहिं सव्वेहिं । पाणार्हवायविरमणवसेसा तस्स
रक्खणहु ॥ तथा पठितं श्रुतं च शास्त्रं गुरुपरिचरणं च गुरुतपश्चरणं घनगर्जितमिव विजलं सर्वं विफलं दयाविकलं प्र० ॥

सपथ तदेव मामस्तेनाङ्गीकृत्य, विहरामि मासकल्पादिना सुसाधुविहारेण वर्त्ते,^१ अन्यथा ब्रह्मप्रतिपत्तेर्वैयर्थ्यग्रसङ्गादिति । अथ
प्रतप्रतिपत्तिं निगमयन्नाह—

पदमे भन्ते महव्यण उवट्टिओमि सन्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण ॥

प्रथमे भदन्त महात्रते किमित्याह—उप सामीप्येन तत्परिणामापत्त्यर्थः स्थितो व्यवस्थितोऽस्मि अहं ततश्च इत आरभ्य मम
सर्वस्मान्निःशेषात्प्राणातिपाताङ्गीवाहिसाया विरमण निवृत्तिरिति । अत्र च भदन्त इत्यनेन गुर्वमन्त्रणवचसादिमध्यावसानेनूपन्य-
स्तेन गुरुमनापृच्छ्य न किञ्चित्कर्तव्यं, कुत च तस्मै निवेदनीयमेव तदाराधित भवतीत्येतदाह । दोषाद्येह प्राणातिपातकर्तृणा नरक-
गमनाल्पायुर्बहुरोगित्वकुरूपदयो वाच्याः । इत्युक्त प्रथम महात्रत ॥ इदानीं द्वितीयमाह—

अहवरे दोचे भन्ते ! महव्यण सुसावायाओ वेरमणं सन्व भन्ते ! सुसावाय पचक्खामि से कोरा वा लोहा वा भया
वा हासा वा नेव सय सुसं चण्जा नेवत्तेहि सुस वायावेज्जा सुस वायन्तेवि अन्ने न समणुजाणामि जावज्जीवाण
तिचिह् तिग्गिहेण मणेण वायाण फाण्ण न करेमि न कारवेमि करन्तंपि अन्न न समणुजाणामि तस्स भन्ते ! पडिक्क-
मामि निंदामि गरिहामि अप्पणं वोसिरामि ॥

अथेति प्रथममहात्रतानन्तरे अपरस्मिन्नन्यसिन् द्वितीये सूत्रक्रमप्रामाण्यात् द्विसंख्ये द्वितीयस्थानवर्त्तिनीत्यर्थः । भदन्त महात्रते

१ प्राग्व तगरादिषु पर्यणामि अधिकं प्र० ॥

किमित्याह—मृपावादादलीकभाषणाद्विरमणं सम्यग्ज्ञानश्रद्धानपूर्वकं सर्वथा निवर्तनं भगवतोक्तमिति वाक्यशेषः । स च मृपावादश्चतुर्विधः तद्यथा सद्भावप्रतिषेधः १ असद्भावोद्भावनं २ अर्थान्तराभिधानं ३ गहर्वचनं च ४ तत्र सद्भावप्रतिषेधो यथा “ नास्त्यात्मा नास्ति पुण्यं पापं वेत्यादि ” मृपात्वं चास्यात्माद्यभावे दानध्यानाध्ययनादिसर्वक्रियावैथर्यप्रसङ्गात् जगद्वैचित्र्याभावप्रसङ्गाच्च । असद्भावोद्भावनं यथा “ श्यामाकतन्दुलमात्र आत्मा ललाटस्थो हृदयदेशस्थः सर्वगतो वेत्यादि ” अलीकता चास्य वचसः “ श्यामाकतन्दुलमात्रे ललाटस्थे वात्मनि सर्वशरीरे सुखदुःखानुभवानुपपत्तेर्निरात्मनि वस्तुनि वेदनाया अभावात्, सर्वजगद्व्यापित्वे सर्वत्र शरीरोपलम्भः सुखदुःखानुभवश्चाविशेषेण स्यान्नचैवं दृश्यते तस्मादलीकतेति । अर्थान्तराभिधानं “ गामध्वं ब्रुवाणस्येत्यादि ” । गहर्वचनं तु “ काणं काणमेव वदत्यकाणमपि वा काणमाह एवमन्धकुब्जदासादिष्वपि भावनीयं ” अथवा परलोकमङ्गीकृत्य गहर्हि वचनं गहर्वचनं तच्च “ दम्यन्तां वलीवर्दीदयः, प्रदीपतां कन्या वरायेत्यादि ” । यतश्चैवमत उपादेयमेतदिति विनिश्चित्य सर्वं समस्तं भदन्त ! मृपावादमनृतवचनं प्रत्याख्यामि । सेति तद्यथा क्रोधाद्वा कोपात्, लोभाद्वा, अभिष्वङ्गात् । आद्यन्तग्रहणाच्च मानमायापरिग्रहो वेदितव्यः । भयाद्वा भीतिः, हास्याद्वा हसनात्सकाशात्, अनेन तु प्रेमद्वेषकलहाभ्याख्यानादिपरिग्रहः । वा शब्दाः समुच्चये । अस्मात्किमित्याह—“नेव सयं मुसं वएज्जत्ति” नैव स्वयमात्मना, मृपा मिथ्या, वदामि वद्धिम, नैवान्यैः परैर्युष्मा वितथं, यायावेज्जत्ति वादयामि भाषयामि, मृपावदतोऽपि भाषमाणानप्यन्यानपरान् न नैव समनुजानामि अनुमोदयामि । कथमित्याह—यावज्जीवं यावत्प्राणधारणं, त्रिविधं कृतकारितानुमतिभेदात् त्रिप्रकारं, त्रिविधेन मनःप्रभृतिना त्रिप्रकारेण करणेन । तदेवाह—मनसा वाचा, कायेनेति । अस्य च करणस्य कर्मोक्तलक्षणो मृपावादस्तमपि वस्तुतो निराकार्यतया सूत्रेणैव दर्शयन्नाह—नं करोमि स्वयं

न सारयाम्यन्यैः कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि । तथा तस्य त्रिकालभाविनोऽधिकृतमृषावादस्य संबन्धिनमतीतप्रवयवं भदन्तं प्रति-
क्रमामि भूतान्मृषावादाद्विर्वर्तेऽहमित्युक्तं भवति । तस्माच्च निवृत्तिर्यत्तदनुमतेर्विरमणमिति । तथा निन्दाभि गर्हामितीति अत्रात्मसा-
क्षिकी निन्दा, परसाक्षिकी गर्हो, आहव—“मणसा मिच्छादुक्कडकरण भावेण इह पडिक्कमण । सचरित्तपच्छयागो निन्दा गरिहा
गुरुसमक्कर” सचरित्रस्य स्वप्रत्यक्षमेव पथात्तापो निन्देति । किं जुगुप्से इत्याह—आत्मानमतीतमृषावादभाषिणं स्वं, तथा व्युत्सुजामि
भूतमृषावादं परित्यजामि, इह च क्रोधाद्वा भयोद्वेत्यादिना भावतो मृषावादोऽभिहितोऽनेन चैकग्रहणेन तज्जातीयग्रहणमिति न्यायाच्चतु-
र्विधो मृषावाद उपलक्षित इत्यतस्तदभिधानायाह—

से मुसावाण चउव्विहे पन्नत्ते तज्जहा—दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ । दव्वओ णं मुसावाण सव्व दव्वेसु।
खेत्तओ ण मुसावाण लोण वा अलोण वा । कालओ ण मुसावाण दिया वा राओ वा । भावओ णं मुसावाण
रागेण वा दोसेण वा ।

सेत्ति स पूर्वाभिहितो, मृषावादश्चतुर्विधः प्रवृत्तस्तद्यथा—द्रव्यतो द्रव्यप्राधान्यमाश्रित्य १ क्षेत्रतः क्षेत्रमङ्गीकृत्य २ कालतः काल
प्रतीत्य ३ भावतो भावमधिकृत्य ४ द्रव्यतो णमित्यलङ्कारे मृषावादः सर्वद्रव्येषु, अन्यथाग्ररूपणतो धर्मोपधर्मादिसमस्तपदार्थेषु ॥१॥
क्षेत्रतो णमिति सर्वत्रालङ्कारमात्रे मृषावादः लोके वा लोकविषये अलोके वा अलोकविषये ॥ २ ॥ कालतो मृषावादो दिवा वा दि-
वसेऽधिकरणभूते विषयभूते वा, रात्रौ वा रजन्यामाधारभूताया विषयभूताया वा ॥३॥ भावतो मृषावादो रागेण वा मायालोभ-
लक्षणेन वा, तत्र मायया अग्लानोऽपि ग्लानोऽह ममानेन कार्यमिति वक्ति, भिक्षाटनपरिजिहीर्षया वा पादपीडा ममेति भावते इ

त्यादि लोभेन तु शोभनतरान्वलाभे सति प्रान्तस्यैपणीयत्वेऽप्यनेपणीयमिदमिति ज्ञेते इत्यादि । द्वेषेण वा क्रोधमानस्वरूपेण, तत्र क्रोधेन वदति त्वं दास इत्यादि, मानेन तु अवहुश्रुत एव बहुश्रुतोऽहमित्यादि । उपलक्षणत्वाद्भयहास्यादयोऽपीह द्रष्टव्याः तत्र भयात्किञ्चिद्वित्तं कृत्वा प्रायश्चित्तभयाच्च कृतमित्यादि भापते एवं हास्यादिनापि वाच्यमिति । ४ । द्रव्यभावपदप्रभवा चतुर्भङ्गिका चात्र द्रष्टव्या सा पुनरियं “दब्बओ नामेगे मुसावाए नो भावओ, भावओ नामेगे मुसावाए नो दब्बओ, एगे दब्बओवि भावओवि, एगे नो दब्बओ नो भावओ । तत्थ कोइ कओहि हिंसुज्जुओ भणइ इओ तए पसुमिगाइणो वोलिन्तगा दिट्ठति ? सो पुण दयाए दिट्ठेहिवि भणइ न दिट्ठति एस दब्बओ मुसावाओ न भावओ । अवरो मुसं भणीहामिति परिणओ सहसा सच्चं भणइ एसो भावओ न दब्बओ । अवरो मुसं भणीहामिति परिणओ मुसं चैव मणइ एस दब्बओवि भावओवि । चरिमभंगो पुण सुन्नोति॥

जं मए इमस्स धम्मस्स केवल्लिपन्नत्तस्स अहिंसालवणस्स सच्चयाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खंतिप्पहाणस्स अहिरणसोवन्नियस्स उवसमपभवस्स नववंभचेरगुत्तस्स अपयमाणस्स भिक्खवित्तिस्स कुक्खीसंयलस्स निरग्गि-सरणस्स संपक्खालियस्स चत्तदोसस्स गुणग्गमाहि्यस्स निव्वियारस्स निव्वितीलवणस्स पंचमहब्बयजुत्तस्स असंनिहिंसंचयस्स अविंसंवाइस्स संसारपारगामिस्स निव्व्याणगमणपज्जवसाणफलस्स पुब्बि अन्नाणयाए असवण-याए अबोहिए अणभ्भिगमेणं अग्गिमेणं अविंसंवाइस्स संसारपारगामिस्स निव्व्याणगमणपज्जवसाणफलस्स पुब्बि अन्नाणयाए असवण-तिगारवगरुययाए चउक्कसाओवगणं पंचिदिओवसंवेणं पटुप्पन्नभारियाए सायासोक्खलमणुपालयंतेणं इहं वा भवे अन्नेसु वा भवग्गहणेसु मुसावाओ भासिओ वा भासाविओ वा भासिज्जंतो वा परेहिं समणुत्ताओ तं निन्दामि

गरिहामि तिविहृण मणेण वायाण काणं अईयं निन्दामि पटुप्पन्न सवरेमि अणगयं पच्चक्खामि सन्व
मुसावाय जावल्लीवाण अणिस्सिओह नेव सयं मुस वण्जा नेवनेहिं मुस वायावेज्जा मुस वयतेवि अन्ने न समणुजा-
णामि तंजना अरहंत्तसक्खिय सिद्धसन्निवय साहुसक्खिय देयसन्निवयं अप्पसन्निवयं एतं भवइ भिम्बू वा
भिम्बुणी वा सजयविरयपडिहपच्चक्खायपावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा
जागरमाणे वा एसवत्थु मुसावायस्स वेरमणे हिण सुहे' खमे निस्सेसिए आणुगामिए सन्वेसिं पाणाणं सन्वेसि
भूयाण सन्वेसिं जीवाण सन्वेसिं सत्ताणं अदुक्खणयाण असोयणयाण अजूरणयाण अतिप्पणयाण अपीडणयाण
अपरियावणयाण अणोद्भवणयाण महत्थे महाणुणे महाणुभावे महापुरिस्साणुच्चिन्न परमरिसिदेसिए पसत्थे तां दुक्ख-
क्खयाण कम्मक्खयाण मोक्खाण बोहिलाभाण ससारुत्तारणाए तिकट्ट उवसपज्जित्ताण विहरामि । दोच्चे भन्ते
महन्वए उवट्ठिओमि सन्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥

एतत् सकलमपि क्षुर मृषावादाभिलाषेन ग्राग्वत्समवसेयमिति नवरमिह दोषाः मृषाभाषिणा जिह्वाच्छेदादविश्वास मूकत्वादयो
वाच्याः । इत्युक्त द्वितीय महाव्रतम् । साप्रत तृतीयमाह-

अहावरे तच्चे भते महन्वए अदिन्नादाणाओ वेरमण सन्व भन्ते अदिन्नादाण पच्चक्खामि से गामे वा नगरे वा
अरन्ने वा अप्प वा बहु वा अणु वा धूल वा चित्तमन्त वा अचित्तमन्त वा नेव सय अविन्न गिक्खिज्जा नेवनेहिं अ-

दिन्नं गिण्हावेज्जा अदिन्नं गिण्हते वि अन्ने न समणुजाणामि जावल्लीचाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करन्तंपि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भन्ते पडिक्कमामि निन्दाभि गरिहाभि अप्पाणं वोसिरामि ॥

अथापरस्मिँस्त्वृत्तये भदन्त महाग्रते अदत्तादानाद्विरमणं सर्वं भदन्त अदत्तादानं प्रत्याख्यामीति पूर्ववत् । सेत्ति तद्यथा ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वेत्यनेन क्षेत्रपरिग्रहः, तत्र ग्रसति बुद्ध्यादीन् गुणानिति ग्रामस्तस्मिन्, न विद्यते करोऽस्मिन्निति नकरं तस्मिन्, अरण्यं काननादि तस्मिन् । तथा अल्पं वा, बहु वा, अणु वा, स्थूलं वा, चित्तवद्वा, अनितवद्वेत्यनेन तु द्रव्यपरिग्रहः । तत्राल्पं मूल्यत एरण्डकाष्ठादि, बहु मूल्यत एव वज्रादि, अणु प्रमाणतो वज्रादि, स्थूलं प्रमाणत एव एरण्डकाष्ठादि, एतच्च चित्तवद्वा सचेतनं, अचित्तवद्वाऽचेतनं, किमित्याह—नैव स्वयमदत्तं गृह्णामि, नैव न्यैरदत्तं ग्राहयामि गृह्णतोऽप्यन्यात्र समनुजानामीत्यादि यावद्युत्सृजामीति पूर्ववद्ब्रूय्यं । अत्र च ग्रामे वा नगरे वेत्यादिना क्षेत्रतः अल्पं वा बहु वेत्यादिना तु द्रव्यतो अदत्तादानमुक्तमनेन च चतुर्विधमदत्तादानमुपलक्षितमित्यतस्तदभिधातुमाह—

से अदिन्नादाणे चउच्चिहे पन्नते तं जहा—दन्वओ लेत्तओ कालओ भावओ । दन्वओ णं अदिन्नादाणे गहणधारणि-
ज्जेसु दन्वेसु, खित्तओ णं अदिन्नादाणे गामे वा नगरे वा अरन्ने वा, कालओ णं अदिन्नादाणे दिया वा राओ वा, भावओ णं अदिन्नादाणे रागेण वा दोसेण वा ॥

न प्रागुक्तमदृशादानं स्वेयं गुप्तिं प्रगतं तद्यथा-द्रव्यतः शल्लो भावतः, तत्र द्रव्यतोऽदृशादानं स्यात्केचित्त्वाह-
प्रहनपार्वर्तयेषु द्रव्येषु तत्र गुणना इति ग्रहणान्युपादानाढाणि धार्यन्त इति धारणीयानि ततश्च ग्रहणानि च तानि धारणीयानि च
एवमधारणीयानि तेषु द्रव्येष्वनेन च धर्माधर्मोन्तिरापादिष्वदृशादानप्रतिषेधमाह-ग्रहणधारणानर्हत्वात्तत्पामत एवासर्वद्रव्यविषय-
मिदमधिगम्यत आह-“पटमस्मि मज्जीया नीए चरिमे य मज्जदव्याद । सेसा महव्यया मलु तदेकदेशेण दव्याण ” । धेप्रतोऽ-
दृशादानं प्राप्ते वा नगरे वाऽरण्ये वा अधिररणभूते भवति । शल्लोऽदृशादानं दिवा वा रात्रौ वा सम्भवति । भावतोऽदृशादानं रात्रौ
वा माषानोमलघुत्वेन द्रव्येण वा क्रोयमानव्यवस्थेन । तत्र मायया धूर्तानां, लोभेन वाणिज्यचौरादीनां, क्रोपेन वृषादीनां, मानेन
माभिमानपुराणामदृशादानसमसो भारणीयः । तथा लोभमन्त्रेणादृशादानासम्भवात् मायादिष्वपि लोभसम्भावो वेदितव्य इति ।
द्रव्यादिचतुर्भेदां हुनरिय-“द्रव्यञ्चो नामगे अदिद्रादाणे नो भावञ्चो । भावञ्चो नामगे नो दव्यञ्चो । एगे दव्यञ्चोवि भावञ्चोवि ।
एगे नो दव्यञ्चो नो भावञ्चो । तत्र अरचदुष्टस्स माहुणो रदिञ्चि अणुभावोऽल तणाइ गिण्डञ्चो दव्यञ्चो अदिद्रादानं नो भावञ्चो ।
इराभिनि प्रचुत्रयस्स तदगयनीण भावञ्चो नो दव्यञ्चो । एवं चैव सपचीए दव्यञ्चोवि भावञ्चोवि । चरममज्जो पुण मुञ्चोचि ॥

न सग इमस्स धम्मस्स केगलिपरस्सस्स अर्हिमात्वयगणस्स सत्त्वादिद्वियस्स विणयमूलस्स एतिप्पहाणास्स
अहिरघमोयगिण्यस्स उयसमपभवस्स नयवमचेरगुत्तस्स अपयमाणस्स भिन्नगमिचित्तस्स कुक्करीसपलस्स निरगि-
गरणस्स सपरगालिगस्स पत्तयोमस्स गुणत्तागिण्यस्स निविचारस्स निव्वितीलम्भणस्स पचमरग्गयजुत्तस्स
असनिहिसगणस्स अयितगगग्यस्स समारपरगामिस्स नित्राणगमणपच्चरसाणफलस्स पुत्ति अन्नाणयाप असयण-

याए अचोहिण् अणभिगमेणं अभिगमेण वा पमाणं रागदोसपडिवद्धयाए चालयाए मोहयाए मंदयाए किहुयाए तिगारयगरुययाए चउक्कसाओवगणं पंचिदिओवसइणं पटुप्पन्नभारयाए सायासोक्खलमणुपालयंतेणं इहं वा भवे अन्नेसु वा भवगगहणेसु अदिन्नादाणं गहियं वा गाहावियं वा वेपपंतं वा परेहिं समणुत्तायं तं निन्दामि गरिहामि तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं अइयं निन्दामि पटुप्पन्नं संचरेमि अणागयं पच्चक्खामि सच्चं अदिन्नादाणं जावल्लीवाए अणित्थिओहं नेव सयं अदिन्नं गिणहेज्जा नेवचोहिं अदिन्नं गिणहेतियि अन्ने न समणु जाणामि तंजहा—अरहन्तसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं देवसक्खियं अप्पसक्खियं एवं भवइ भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपाक्कम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा एस खलु अदिन्नादाणस्स वेरमणे हिण् सुहे खमे निस्सेसिण् आणुगामिण् सच्चवेत्तिं पाणाणं सच्चवेत्तिं भूयाणं सच्चवेत्तिं जीवाणं सच्चवेत्तिं सत्ताणं अदुक्खलणयाए असोयणयाए अजूरणयाए अतिप्पणयाए अपीडणयाए अपरियावणयाए अणुद्वणयाए महत्थे महाणुणे महाणुभावे महापुरिसाणुच्चिणे परमरिसिदेसिण् पसत्थे तं दुक्खलक्खयाए कम्मक्खयाए मोक्खयाए बोहिंलाभाए संसारुत्तारणाए त्तिकट्टु उवसंपज्जित्ताणं विहरामि । तच्चवे भन्ते महच्चए उवट्ठिओमि सच्चवाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥

एतच्च सर्वं सूत्रमदचादानाभिलापेन प्राग्बदवसेयं नवरमदचहारिणां वधवन्धनदारिग्रन्यासहरणादयो दोषा भगनीया इत्युक्तं तृतीयं महाव्रतम् ॥ अधुना चतुर्थमाह—

अश्वरे चउत्थे भन्ते मरुत्वा मेहुणाओ वेरमण सव्व भन्ते मेहुण पच्चक्खामि से दिव्व वा माणुसं वा तिरिक्ख-
जोणिय वा नेव सय मेहुण सेविज्जा नेवत्तेहि मेहुण सेवावेज्जा मेहुण सेवन्तेवि अन्ने न समणुजाणामि जावज्जीवाए
तिविह् तिबिहेणं मणेणं वायाण काएण न करेमि न कारवेमि करन्तपि अन्न न समणुजाणामि तस्स भन्ते पडिक्क-
मामि निन्दाभि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥

अयापरस्मिन् चतुर्थे चतुःसख्ये भदन्त महाप्रते मैथुनाद्विरमण जिनेनोक्तमतः सर्वं भदन्त मैथुन मिथुनकर्म प्रत्याख्यामि ।
सेसि तद्यथा-दैव वा मानुष वा तैर्यग्योन वेत्यनेन द्रव्यपरिग्रहः । तत्र देवानामिदं दैव अप्सरोऽमरसन्धीति भावः । मनुष्याणा-
मिदं मानुष स्त्रीपुरुषसत्कमित्यर्थः । तिर्यग्योनौ भय तैर्यग्योनं वडवाश्चादिप्रभवमित्यर्थः । नेव सयमित्यादि गतार्थः । अत्र च दैव
वेत्यादिना द्रव्यतो मैथुनमुक्तं, अनेन च चतुर्विध मैथुनमुपलक्षितमित्यतस्तद्वक्तुकाम आह-
से मेहुणे चउव्विहे पन्नत्ते तज्जाह-दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ । दव्वओ णं मेहुणे रूवेसु वा रूवसहगणसु वा ।
ण खित्तओ ण मेहुणे उट्टलोण वा अहेलोण वा तिरियलोण वा । कालओ ण मेहुणे दिया वा राओ वा । भावओ ण
मेहुणे रागेण वा दोसेण वा ॥

तन्मैथुन चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-द्रव्यतः १, क्षेत्रतः २, कालतः ३, भावतः ४ । तत्र द्रव्यतो मैथुन रूपेषु वा रूपसहगतेषु वा
द्रव्येषु भवति, तत्र रूपाणि निर्जीवानि प्रतिमारूपाण्युच्यन्ते, रूपसहगतानि तु सजीवानि पुरुषाद्भनादरीराणि । भूषणविक्रानि वा
रूपाणि, भूषणसहितानि तु रूपसहगतानि । क्षेत्रतो मैथुन ऊर्ध्वलोके वा मेरुवनपण्डसौधैर्मेशानादियु समभवति, अधोलोके वा अधो

ग्रामभवनपतिभवनोदिपु, तिर्यग्लोके वा द्वीपसमुद्राचलादिपु, अथ उद्धर्वाधस्तिर्यग्लोकपरिज्ञानार्थमिदमुच्यते— 'इहोद्धर्वाधश्चतुर्दश-
रज्जुप्रमाणस्य सर्वतो वृत्तस्य तिर्यक्स्थाने विचित्रमानस्य वैशाखस्थानस्थितकटिस्थकरयुग्मपुरुषाद्याकृतेलोकस्य बहुमध्यदेशभागे
उद्धर्वाधोऽष्टादशयोजनशतमानस्तिर्यग्लोक उच्यते, तस्य च बहुमध्ये अंगुलासंख्येयभागमात्रलोकाकाशप्रतरा अलोकेन संवर्तिताः
सर्वक्षुल्लकप्रतराः सर्वतो रज्जुप्रमाणाः सन्ति तेषां बहुमध्यवर्त्तिनो द्वयोः क्षुल्लकप्रतरयोर्वहुमध्ये जम्बूद्वीपे रत्नप्रभापृथिव्या बहुसमभू-
भागे मन्दरस्य बहुमध्ये अष्टप्रदेशो रुचकः समस्ति, यतोऽयं दिग्विभागः प्रवृत्त इति, एतत्तिर्यग्लोकमध्यं, एतस्मात्तिर्यग्लोकमध्या-
द्रज्जुप्रमाणक्षुल्लकप्रतरेभ्य उपरि तिर्यगसह्येयांगुलभागवृद्धिरुपरिमुखं चांगुलासंख्येयभागारोह एवास्ति, एवं तिर्यगुपरि चांगुलासं-
ख्येयभागवृद्ध्या तावल्लोकवृद्धिज्ञातिव्या यावदूद्धर्ध्वलोकमध्यं, ततः पुनस्तैनैव क्रमेण संवर्त्तः कर्त्तव्यो यावदुपरि लोकान्तो रज्जुप्रमाण
इति । तिर्यग्लोकमध्यरज्जुप्रमाणक्षुल्लकप्रतरेभ्योऽप्यधस्तात् तिर्यगांगुलासंख्येयभागवृद्धिरधोवगाहेनाप्यांगुलासंख्येयभागवृद्धिरेवं कर्त्त-
व्या, एवमधोलोकस्तावद्वर्द्धयितव्यो यावदधोलोकान्तो द्विधापि सप्तरज्जुप्रमाणो जायते इति । इह च वृद्धा वदन्ति— 'उपरिमुखादधो-
मुखाचांगुलासंख्येयभागाछवृत्तरास्तिर्यांगुलासंख्येयभागो द्रष्टव्योऽन्यथा लोकबहुत्वप्राप्तेरिति' ये च तिर्यगुपर्यधश्च तुल्यमेवांगुलासंख्ये-
यभागं वृद्धौ वर्णयन्ति, ये च तिर्यगुपर्यधश्च प्रतिप्रतरं प्रदेशवृद्ध्या लोकं वर्द्धयन्ति तदभिप्रायं न विप्रो न चायमागमेऽप्यस्माभिर्दृष्टः
सम्यग्विवचिन्त्यं चैतदिति । एवं च स्थिते रुचकादधो यावन्नव योजनशतानि तावत् तिर्यग्लोकः परतस्त्वधोलोक इति, तथा रुचका-
दुपरियावन्नव योजनशतानि यावत् ज्योतिश्चक्रस्योपरितलमित्यर्थः तावत्तिर्यग्लोकः ततः पर (मु) उद्धर्ध्वलोक इति । कुतं प्रसंगेन
प्रकृतमुच्यते । कालतो मैथुनं दिवा वा रात्रौ वा स्यात् । भावतो मैथुनं रागेण वा मायालोभलक्षणेन, द्वेपेण वा कोपमानलक्षणेन, तत्र

मायया मैथुनसम्भवो यथा—

एगो साहू एगाए अगरीए सञ्जायसंवन्धो वाहुछुपाये गच्छस्स परियारणाधिरहमलहन्तो नियाडिण गुत्त विनवेइ जया ' भयव दुक्खइ मे गाढसुदर ता अणुजाणेह जेण पचासन्नगिहे गन्तूण अहापवत्तगिणा पयावेमि ' गुरुणावि अवित्रायपरमत्थेण विसज्जिओ गन्तूण अगारि पडिसेविच्चा समागओ भणइ ' उवसन्ता मे वेयणत्ति ' । लोमेन तु मैथुनसम्भवो अयुनोदाहरणेन भावनीयः—
' तगराए नयरीए अरिहमिच्चो नाम आपरिओ विहरइ तस्स य समीवे दत्तो नाम वाणियओ भदाए मारियाए पुत्तेण य अरह-
न्नएण सद्धि पव्वइओ, सो त खुट्ठय न कयावि भिक्खाए हिंडावेइ, पढमालियाईहि पोसइ, एव च सो सुकुमालो जाओ, साहूण य अप्पत्तिय ज सो भिक्खाइसु न हिण्डइ, यर खन्तोवरोहेण न तरन्ति किञ्चि भणिउ, अन्नया सो खन्तो कालगओ, तओ साहुहिं तस्स दो तिन्नि दिवसे भन्न दाउ भिक्खाए ओपारिओ, सो सुकुमालसरीरो गिम्हे उवारि हेट्ठा य उज्झन्तो पस्सेयजलकिलिन्नगत्तो अतीव तण्णाभिभूओ छायाए वीसमन्तो एगाए पउत्थवइयाए वणियमहिलाए नियमवणट्टियाए दिट्ठो, ओरालसुकुमालसरीरोत्ति काउ तीसे (तहिं) अणुराओ जाओ, तओ चेडीए सदाविच्चा पुच्छिओ—' किं मग्गसित्ति ' तेषुत्त—' भिक्खन्ति ' तओ अणाए दवाविद्या से य मोयगा, तओ पुणो पुच्छिओ कि निमित्त तुम धम्ममिम करेसि ? , सो भणइ ' सुहनिमिच्च ' तओ तीए जपिय जइ एव तो माए चेव समण भोगे भुज्झहि, मा हत्थगय सुह परिचइज्जण अणागयसन्दिद्धसुहासाए अप्पाण किलेसेहेत्ति ' सोचि उण्णेण तज्जिओ उवसग्गि-
जन्तो य पडिभग्गो पच्छन्ने ठिओ भोगे भुज्झइ, साहुहि य मग्गिओ, न दिट्ठो, पच्छा से माया उम्मतिया जाया पुत्तसोगेण नयर भमन्ती अरहन्नय विलवन्ती ज जहि फासइ त तहि सन्न भणइ अरहन्नओ दिट्ठोत्ति, एव विलवमाणी भमइ, जावन्नया तेणोलोयण-

गण दिट्ठा, पच्चभिन्नाया, तओ ताहे चेव उयरित्ता पाएसु पडिओ, सावि तं पेच्छिज्ज ताहे चेव सत्यचिचा जाया, ताए भन्नाइ-
'पुत्तय पव्वयाहि मा तित्थयराणमाणं विराहिय दोगग्गं जाहिसि', सो भणइ- 'अम्मो न तरामि दीहकालं संजमं परिवाल्लिं जह
परं गहियसज्जमो खिप्पमणसणविहिणा कालं करेमि' मायाए भणियं- 'एवं करेहि, मा पुत्तय ! असज्जओ भविय संसारसागरे
निम्मज्जाहि यतः- " वरं पवेहुं जलियं हुयासणं, न यात्रि भगं चिरसञ्चियं वयं । वरं हि मच्चू सुविमुद्धकम्मुणो न यावि सीलकू-
खलियस्स जीवियन्ति " पच्छा सो गुरुसगासे आलोइय पडिक्कन्तो समारोवियपञ्चमहव्वयभरो कयाणसणो भविय ताहे चेव तत्त-
सिलायले पाओवगमणं करेइ, मुहुत्तेण सुकुमालसरीरोत्ति नवणियपिण्डो व्व उण्हेण विलीणोत्ति । कोपेन पुनर्यथा एगो साहू गाम-
न्तराओ गुरुसमीवमागच्छन्तो अन्तरा परिव्वाइयं संमुहमिन्ति पेच्छिय एयाए पवयणपच्चयाए वयम्भज्जागमिन्ति पटुट्ठचित्तो तत्थेव
तं पडिसेविचा गुरुसगासमागओ कहेइ-जहा 'मए दुट्ठपरिव्वाइयाए वयं भगन्ति' । मानेण पुनर्यथा- 'एगंमि गच्छे एगो तरुण-
समणो मणोहरागिई, तं दट्ठमेगा तरुणमहिला अज्जोववन्ना चिन्तेइ- 'अहो ण्हाणुव्वट्ठणाइविभूसावियारविरयस्सावि इमस्स साहुस्स
लावन्नसिरित्ति' तओ सा तं वहुसो ओभासेइ, न य सो तमभिलसइ, तओ अब्बया तीए भणियं जहा- 'फुडं तुमं नपुसगोसि जो
दट्ठाणुरत्तचिचं मणहरजोव्वणंमि मं न माणेसि' तओ साहुणावि संजायहक्कारेण सा दढं पडिसेवियत्ति । इह च वेदोदयप्रभवत्वा-
न्मैथुनप्रवृत्तेर्वेदोदयसत्ता सर्वत्र समवसेयेति । द्रव्यादिचतुर्भङ्गी पुनरियं दव्वओ नामेगे मेहुणे नो भावओ । भावओ नामेगे नो
दव्वओ । एगे दव्वओवि भावओवि । एगे नो दव्वओ नो भावओ । तत्थ अरत्तदुट्ठाए इत्थियाए वला परिभुज्जमाणीए दव्वओ मेहुणे नो
भावओ । मेहुणसन्नापरिणयस्स तदसंपत्तीए भावओ नो दव्वओ । एवं चेव संपत्तीए दव्वओवि भावओवि । चउत्थो पुण सुन्नोत्ति ।

ज मग इमस्स धम्मस्स केवलपन्नत्तस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स गतिप्पहाणस्स अहिरणसोवन्नियस्स उवसमपभवस्स नववभचेरगुत्तस्स अपयमाणस्स भिक्खावित्तिस्स कुक्कलीसवलस्स निरिगि-
सरणस्स सपक्खालियस्स चत्तदोसस्स गुणगाहिस्स निब्बियारस्स निवितीलक्खणस्स पचमहव्वयजुत्तस्स
असनिहिसचयस्स अयिसवाइयस्स ससारपारगामिस्स निब्बाणगमणपज्जवसाणफलस्स पुवि अण्णाणयाण असवण-
याण अवोहिण अणभिगमेण अभिगमेण वा पमाण रागदोसपडियद्धयाण बालयाण मोहयाण मदयाण किहुयाण
तिगारवगरुयाण चउक्कसाओवगण पच्चिन्दियवसंठुण पडुप्पन्नभारियाण सायासोम्लमणुपालयतेण इह वा भवे
अन्नेसु वा भवगहणेसु मेहुण सेविय वा सेवाजिन्त वा परेहिं समणुन्नाय त निन्दामि गरिहामि
तिविह तिविहेण मणेण वायाण काण अईय निन्दामि पडुपन्न सवरेमि अणागय पचक्कयामि सच्च मेहुण
जावल्लीयाण अणिस्सिओ ह नेव सग मेहुण सेविज्जा नेव्वेहिं मेहुण सेवाविज्जा मेहुण सेवन्तेवि अन्ने न सम णु-
जाणामि, तजहा-अरहन्तसक्खिय सिद्धसक्खिय साहुसक्खिय देवसक्खिय अप्सक्खियं एव भवइ भिक्खूवा
भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावक्कमे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागर-
माणे वा एस खल्ल मेहुणस्स देरमणे हिण सुहे खमे निस्सेसिण आणुगामिण (पारगामिण) सच्चवेसि पाणाणं सच्चवेसिं
भूयाण सच्चवेसि जीवाण सच्चवेसि सत्ताण अदुक्खणयाण असोयणयाण अजरुणयाण अतिप्पणयाण अपीडणयाण
अपरियावणियाण अणोइवणयाण महत्थे मराणुणे मराणुभावे मराणुसाणुचिण्णे परमरिसिदेसिए पसत्थे त दुक्ख-

याए कम्मचखयाए मोक्खयाए बोद्धिआभाए संसारुत्तरणाए त्थिकट्ठ, उवसंपजित्ताणं विहरामि । चउत्थे भंते महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं ॥

एतत्सकलमपि सूत्रं गतार्थम् । दोषाश्चेहात्रासेविनां वधवन्धनायशःकीर्तिपण्डकत्ववन्ध्यत्ववैधव्यादयो वाच्याः । इत्युक्तं चतुर्थे महाव्रतमधुना पञ्चममाह—

अहावरे पंचमे भन्ते महव्वए परिगगहाओ वेरमणं, सव्वं भन्ते परिगगहं पचक्खामि, से अप्पं वा वहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमन्तं वा, नेव सयं परिगगहं परिगिण्हेज्जा नेवत्तेहिं परिगगहं परिगिण्हविज्जा परिगगहं परिगिण्हन्ते वि अन्ने न समणुजाणामि जावज्जीवाए त्थिविहं त्थिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतपि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भन्ते पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पणं वोसिरामि ॥

अथापरस्मिन् पञ्चमे भदन्त ! महाव्रते क्रिमित्याह—परिगृह्यते स्वीक्रियत इति परिग्रहो धनधान्यहिरण्यादिस्तस्माद्विरमणं भगवतोक्तमतः सर्वं भदन्त ! परिग्रहं ग्रत्याख्यामि । सेति तद्यथा—अल्पं वा बहु वा अणु वा स्थूलं वा चिनवद्वा अचिनवद्वेत्यनेन द्रव्यपरिग्रहः, व्याख्या तु पूर्ववत्, नेन सयमित्याद्यपि पूर्ववदेव । अत्र चाल्पं वेत्यादिना द्रव्यपरिग्रह उक्तः, अनेन चतुर्विधपरिग्रह उपलक्षित इत्यतस्तदभिधानायाह—

से परिगगहे चउव्विहं पन्नत्ते तंजहा—दव्वओ भावओ । दव्वओ णं परिगगहे सच्चित्ताचित्तमीसेसु दव्वेसु, खेत्तओ णं परिगगहे लोए वा अलोए वा, कालओ णं परिगगहे दिया वा राओ वा, भावओ णं

परिगृहे अप्यगधे वा मन्त्रे वा रागेण वा दोसेण वा ।

स परिग्रहयतुर्विधः प्रज्ञस्तत्तथा-द्रव्यतः ४, तत्र द्रव्यतः सर्वद्रव्येषु आकाशादिसर्वपदार्थेषु यदाह चर्णिकारः-“गामघरङ्गणा-
इपएसेतु ममीकरणाओ आगासपरिगृहो, चङ्कमणपएसममीकारकरणाओ धम्मदव्वपरिगृहो, ठाणनिसीयणतुयट्ठणपएसममीकारकर-
णाओ अधम्मपरिगृहो, मायापिइमाइएतु जीवेसु ममत्तरणाओ जीउदव्वओ परिगृहो, हिरण्णसुववाइएतु दव्वेसु ममत्तरणाओ
योगलदव्वपरिगृहो, सीउण्हवरिसरालेसु रिउछके वा अन्नपरमुच्छियस्स कालपरिगृहोति ” क्षेत्रतः परिग्रहो लोकं वाऽलोकं वा
लोकालोकाशममत्वकरणादिति भावः । सब्वलोएत्ति क्वचित्पाठः सङ्गतथायं ग्रन्थान्तरैः सह सवादान् । कालतः परिग्रहो दिवा
वा रात्रौ वा दिनरात्र्यभिलाषादित्यर्थः, पठ्यते च-“रयणिमभिसारियाओ, चोरा परदारिया य इच्छन्ति । तालापरा सुभिक्षबहुधआ
केइ दुभिक्ष ” दिनरात्र्यधिकरणविवक्षया वा कालपरिग्रहो भावनीयः । भावतः परिग्रहोऽल्पार्थं वाऽल्पमूल्ये महार्थे वा बहुमूल्ये
द्रव्ये रागेण वाभिप्पङ्गलक्षणेन द्वेयेण वा अप्रीतिलक्षणेन अन्यद्वेयेत्यर्थः । द्रव्यादिचतुर्भङ्गी पुनरिय दव्वओ नामेगे परिगृहे नो
भावओ । भावओ नामेगे नो दव्वओ । एगे दव्वओवि भावओवि । एगे नो दव्वओ नो भावओ । तत्थ अरत्तदुट्ठस्स घट्ठमोवगरण
दव्वओ परिगृहो नो भावओ । मुच्छियस्स तदसपत्तीण भावओ नो दव्वओ । एव चेत्त सपत्तीण दव्वओवि भावओवि ।
चरमभङ्गो पुण सुओ ।

जं मए इमस्स धम्मस्स केवलपन्नत्तस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चवाहिट्ठियस्स विणययमूलस्स खंतिप्पहाणस्स अहिरत्तसोवणिग्यस्स उवसमप्पभवस्स नवबंभचेरगुत्तस्स अपयमाणस्स भिक्खवाचित्तस्स कुक्खवीसंबलस्स निरिगि-
सरणस्स संपक्खालियस्स चत्तदोसस्स गुणगाहिस्स निव्वियारस्स निवित्तिलक्खणस्स पंचमहव्वयजुत्तस्स
असंनिहिसञ्चयस्स अविंसंवाइयस्स संसारपारगामिस्स निव्वाणगमणपज्जवसाणफलस्स पुब्बिं अन्नाणयाए असवण-
याए अबोहिए अणभिगमेणं अभिगमेण वा पमाएणं रागदोसपडिबद्धयाए बालयाए मोहयाए मन्दयाए किड्डयाए
तिगारवगरुयाए चउक्कसाओवगएणं पच्चिन्दिओवसट्टेणं पडुप्पन्नभारियाए सायासोक्खमणुपालयंतेणं इहं वा भवे
अन्नेसु वा भवगगहणेसु परिगगहो गहिओ वा गाहाविओ वा धिप्पंतो वा परेहिं समणुन्नाओ तं निन्दामि गरिहामि
तिविहं तिबिहेणं मणेणं वायाए काएणं अईयं निन्दामि पडुपन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि सव्वं परिगगहं
जावज्जीवाए अणिस्सिओहं नेव सयं परिगगहं परिगिण्हेज्जा नेवन्नेहिं परिगगहं परिगिण्हेज्जा परिगगहं परिगिण्हेज्जा वि
अन्ने न समणुजाणामि, तंजहा-अरहन्तसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहुसाक्खियं, देवसक्खियं, अप्पसक्खियं, एवं भ-
वइ भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावक्कमे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वासुत्ते
वा जागरमाणे वा एस खलु परिगगहस्स वेरमणे हिए सुहे खमे निस्सेसिए आणुगामिए (पारगामिए) सव्वेसिं पा-
णाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं, अटुक्खणयाए, असोयणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए,
अपीडणयाए, अपरियावणयाए, अणोदवणयाए; महत्थे महागुणे महाणुभावे महापुरिसाणुचिण्णे परमरिसिदेसिए

पसत्येतां दुक्लक्लयाण कम्मक्लयाण मोक्खाण बोहिलाभाण ससारुत्तराणाए त्तिक्कु, उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ।
पञ्चमे भन्ते महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ।

एतदपि सुत्र पूर्ववद्भाष्येय, दोषाश्चेह परिग्रहिणा वधवन्धनमारणदु खितत्वनरकगमनादयो वाच्याः । इत्युक्तं पञ्चम महाव्रत
साग्रत षष्ठ ततमाह—

अहावरे छेट्ठे भन्ते वए राईभोग्याओ वेरमण, सब्ब भन्ते राईभोग्यण पच्चम्हामि, से असण वा, पाण वा, खाइम
वा, साइम वा, नेव सय राइ भुजेज्जा नेवन्नेहि राइ भुज्जावेज्जा राइ भुज्जन्ते वि अण्णे न समणुजाणामि जायज्जीवाए
त्तिविह त्तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करंतपि अन्न न समणुजाणामि तस्स भन्ते पडिक्क-
मामि निन्दामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।

अथापरस्मिन् षष्ठे भदन्त ! त्रे किमित्थाह—रात्रिभोजनात् रात्रौ गृह्णाति रात्रौ भुक्ते । रात्रौ गृह्णाति दिवा भुक्ते । दिवा गृह्णाति
रात्रौ भुक्ते । दिवा गृह्णाति दिवा भुक्ते सनिधिपरिमोगे । इत्येवविधमङ्गचतुष्कस्वरूपान्निशाम्यवहाराद्विरमणं भगवतोक्तमतः सर्वं
भदन्त ! रात्रिभोजन प्रत्याख्यामि, तद्यथा—असन वा पानं वा खाद्य वा इत्यनेन द्रव्यपरिग्रहः । तत्राप्यत इत्यशनमोदनादि,
पीयते इति पान मृद्विकापानादि, खाद्यत इति खाद्यं खर्जुरादि, खाद्यत इति खाद्य ताम्बूलादि । एतच्च नैव स्वय रात्रौ भुजे, नैवान्यै
रात्रौ भोजयामि, रात्रौ भुज्जानानप्यन्यान्न समनुजानामीत्येतत् यावज्जीवमित्यादि च भावार्थमधिकृत्य पूर्ववत् । अत्राशन वेत्यादिना
द्रव्यतो रात्रिभोजनमुक्त, अनेन च चतुर्विध रात्रिभोजनमुपलक्षितम् इत्यतस्तदभिधातुमाह—

से राईभोगणे चउव्विहे पन्नत्ते तंजहा-दव्वओ, खेत्तओ, कांलओ, भावओ णं राईभोगणे, असणे वा, पाणे वा, खाहमे वा, साहमे वा, खित्तओ णं राईभोगणे-सययखित्ते, कालओ णं राईभोगणे-दिया वा राओ वा, भावओ णं राईभोगणे, तित्ते वा, कहुए वा, कपाए वा, अंबिले वा, मधुरे वा, लवणे वा, रागेण वा, दोसेण वा ।

तद्रात्रिभोजनं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं तद्यथा-द्रव्यतः ४, तत्र द्रव्यतो रात्रिभोजनं अशने वा पाने वा खाद्ये वा स्वाद्ये वा, क्षेत्रतो रात्रिभोजनं समयेन कालविशेषेणोपलक्षितं क्षेत्रं समयक्षेत्रमर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रलक्षणं तस्मिन् संभवति, न परतः, मनुष्यलोकप्रसिद्धदिनरजन्यभावात्, कालतो रात्रिभोजनं दिवा वा सन्निधिपरिभोग इत्यर्थः रात्रौ वा रजन्यां वा, भावतो रात्रिभोजनं भवति केत्याह-तित्ते वा चिर्भिंटिकादौ, कहुके वा आर्द्रकतेमनादौ, कपाये वा वल्लादौ, अम्ले वा तक्रारनालादौ, मधुरे वा क्षीरदध्यादौ, लवणे वा प्रकृतिक्षारे तथाविधजलशाकादौ, लवणोत्कटे वा अन्यस्मिन् द्रव्ये, रागेण वाभिष्वङ्गलक्षणेन, द्वेषेण वा अनभिष्वङ्गलक्षणेनेति क्वापीदं पदद्वयं न दृश्यत एव । द्रव्यादि चतुर्भङ्गी पुनरियं-दव्वओ नामेगे राइ भुज्जई नो भावओ । भावओ नामेगे नो दव्वओ । एगे दव्वओवि भावओवि । एगे नो दव्वओ नो भावओ । तत्थ अणुग्गए खुरिए उग्गओत्ति अत्थमिए वा अणत्थमिओत्ति अरत्तदुट्टस्स, कारणाओ रयणीए वा भुज्जमाणस्स दव्वओ राईभोगणं नो भावओ । राईए भुज्जामिति मुच्छियस्स तदसंपत्तीए भावओ नो दव्वओ । एवं चैव संपत्तीए दव्वओवि भावओवि । चउत्थभंगो सुन्नो ।

जं मए इमस्स धम्मस्स केवल्लिपन्नत्तस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चवाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खंतिप्पहाणस्स अहिरण्णसोवन्नियस्स उवसमप्पभवस्स नववंभचेरगुत्तस्स अपयमाणस्स भिक्खावित्तिस्स कुक्खीसंयलस्स निरग्गि-

सरणस्स सपक्खालियस्स चत्तदोसस्स गुणगारियस्स निव्वियारस्स निवित्तिलक्खणस्स । पञ्चमहव्वयजुत्तस्स असनिहिसञ्चयस्स अविस्वाहस्स ससारपारगामियस्स निव्वानगमणपज्जवसाणफलस्सपुब्बि अन्नाणयाए असवणयाए अयोहिए अणभिगमेण अभिगमेण वा पमाणा रागदोसपडिबद्धयाए बालयाण मोहयाए मन्दयाण किङ्कयाए तिगारवगरुयाण चउक्कसाओवगण्ण पच्चिन्दिओवसट्ठेण पडिपुन्नभारियाण सायासोक्खलमणुपालयन्तेणइ ह वा भवे अन्नेसु वा भवगगहेसु राईभोयण भुजिय वा भुज्जान्तं वा परेहिं समणुन्नाय त निन्दामि गरिहामि तिविह तिविहेण मणेण चायाण काण्ण अईय निन्दामि पटुप्पन्न सवरेमि अणागय पच्चक्खामि सव्व राईभोयणं जावज्जीवाण अणित्थिओह नेव सय राई भुज्जेज्जा नेवनेहिं राई भुज्जावेज्जा राई भुज्जते वि अन्ने न समणुज्जाणामि, तंजहा-अरिहन्तसक्खिय, सिद्धसक्खिय, साहुसक्खिय, देवसक्खिय, अप्ससक्खिय, एव भवइ भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावक्कमे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा ण्स खल्लु राईभोयणस्स वेरमणे हिए सुहे खमे निस्सेसिण आणुगामिए सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाण, सव्वेसि जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं, अदुक्खणयाए, असोयणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अपीडणयाए, अपरियावणयाए, अणोइवणयाए, महत्थे महागुणे महाणुभावे महापुरिसाणुचिन्ने परमरिसिदेसिए पसत्थे ता दुक्खलक्खयाण कम्ममल्लयाए मोल्लयाए बोहिलाभाण ससारुत्तारणाए त्तिकट्ठ, उवसपज्जित्ताणं विहरामि । छट्ठे भन्ते वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राईभोयणाओ वेरमणं ।

एतत्सर्वं सकलमपि प्राग्वत्, एतच्च रात्रिभोजनव्रतं प्रथमचरमतीर्थकरतीर्थयोः ऋजुजडचक्रजडपुरुषापेक्षया मूलगुणत्वख्योपनाथं महाव्रतोपरि पठितं, मध्यमतीर्थकरतीर्थं पुनः ऋजुप्राज्ञपुरुषापेक्षयोत्तरगुणवर्गं इति । दोषाश्चेह रात्रिभोजिनां पिपीलिकाशलभादि-सत्त्वविनाशादयो वाच्याः । इत्युक्तं षष्ठं व्रतमथ समस्तव्रताभ्युपगमख्यापनायाह—

इच्छेयाइं पञ्च महन्वयाइं राईभोग्यवेरमणच्छुइं अत्तहियद्वयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ।

इत्येतान्यनन्तरोदितानि पञ्च महाव्रतानि रात्रिभोजनविरमणपष्ठानि किमित्याह—अत्तहियद्वयाएत्ति आत्मने जीवाय हित आत्महितो मोक्षस्तदर्थं आत्महितार्थाय, अनेनान्यार्थं तत्त्वतो व्रताभावमाह—तदभिलाषानुमत्या हिंसादावनुमत्यादिभावात् । उप सामीप्येन संप-
द्वांगीकृत्योपसम्पद्य विहरामि सुसाधुचिहारेण वर्त्तेज्जं, तदभावेऽङ्गीकृतानामपि व्रतानामभावप्रसंगादिति । कृता महाव्रतोच्चारणा, साम्प्रतं महाव्रतानामेव यथाक्रममतिचारानुपदर्शयितुमाह—

अप्पसत्त्या य जे जोगा परिमाणा य दारुणा । पाणाइवायस्स वेरमणे एस वुत्ते अइक्कमे । १ । रूपकम् ।

अप्रसस्ता हिंसाहेतुत्वादसुन्दराशब्दो वक्ष्यमाणपदापेक्षया समुच्चयार्थः, ये केचन योगा अयतचंक्रमणभाषणादयो व्यापाराः, परिणामाश्च भूतधाताद्याध्यवसायाश्च पूर्वपदापेक्षया समुच्चये, दारुणा रौद्राः, प्राणातिपातस्य प्राणि(प्राण)प्रहारस्य, विरमणे निवृत्तावे-
षोऽयमुक्तो भगवद्भिः प्रतिपादितोऽतिक्रमोऽतिचार इति मत्वा तान् परिहरेदितिभावः । एवमुत्तरत्रापि भावना कार्या । द्वितीयव्रत-
मधिकृत्याह—

तिन्वरागा य जा भासा तिन्वदोसा तहेव य । सुसावायस्स वेरमणे एस वुत्ते अइक्कमे ॥ २ ॥

तीव्ररागा उत्कटविषयानुबन्धा या काचिद्भाष्यत इति भाषा भारती, तीव्रद्वेषा उग्रमत्सरा, तथैव चेति समुच्चयपूरणार्थान्यव्ययानि शृणानादस्य पितृभारणस्य, विरमणे विरतावेयोऽय उक्तो जिनैर्गदितो, ऽतिक्रमो देशभङ्गः सर्वभङ्गो वेति भावः ।
तृतीयव्रतमाश्रित्याह—

उग्रहृ च अजाइत्ता अविदिण्णे य उग्रहे । अदिण्णादाणस्स वेरमणे णस्स वुत्ते अइक्कमे ॥ ३ ॥

अवगृह्यत इत्यवग्रह आश्रयस्तमयाचित्वा तस्मात् स्वामिनः स्वामिसन्दिष्टाद्वा सकाशादननुज्ञाप्य तत्रैव यदवस्थानमिति गम्यते, तथा अविदित्ते वाऽवग्रहस्वामिनाऽवितर्किणैश्चग्रहे प्रतिनियताऽवग्रहमर्यादाया बहिरित्यर्थः यच्चेष्टनमिति वाक्यशेषः । अदत्तादानस्य विरमणे एव उक्तोऽतिक्रमो विराधनेत्यर्थः । चतुर्थव्रतमङ्गीकृत्याह—

सद्धारुच्चारसागन्धाफासाणं पवियारणा । मेहुणस्स वेरमणे णस्स वुत्ते अइक्कमे ॥ ४ ॥

आकारस्येहागमिरूत्वात् शब्दाश्च प्रक्रमाद्वेषुवीणास्वामिनीसमुत्थकलध्वनयः, एव रूपाणि च ललनादिमनोहराकृतयः, रसाश्च मधुरादिविशिष्टास्वादाः, गन्धाश्च सक्चन्दनादिदिव्यपरिमलाः, स्पर्शाश्च मृदुतूलीयोपिदङ्गादिस्पर्शस्ते तथा, तेषां प्रविचारणा रागात्प्रतिसेवना, मैथुनस्याब्रह्मासेवनस्य, विरमणे एव उक्तोऽतिमोऽतिचारस्तस्मादेतान्न कुर्यादिति हृदयमिति । परिग्रहव्रतमुरीकृत्याह—

इच्छा मुच्छा य गेही य कहुवा लोभे य दारुणे । परिग्गहस्स वेरमणे एव वुत्ते अइक्कमे ॥ ५ ॥

इच्छा मूर्च्छा च गृद्धिश्च काक्षा लोभश्च दारुण इत्येकार्थानि अबुधबोधनायोपन्यस्तानि । अथवा-इच्छा अनागतान्यतरार्थप्रार्थना, मूर्च्छा च हतातीतनष्टपदार्थशोचना गृद्धिश्च विद्यमानपरिग्रहप्रतिबन्धः, अप्राप्तनिविधयर्थप्रार्थना काक्षा तद् रूपो लोभः काक्षालोभश्च,

चशब्दाः समुच्चये किञ्चिन्निष्ठौ ? दारुणस्तीव्रः, परिग्रहस्य विरमणे एव उक्तोऽतिक्रम इति पूर्ववत् ॥ पृष्ठत्रतसुररीकृत्याह—

अईमत्ते य आहारे सूरलेत्तो य संकिए । राईभोगणस्स वेरमणे एस बुत्ते अइक्कमे ॥ ६ ॥

साधूनां हि कवलापेक्षया भोजनमानमिदं यदुत “वत्तीसं किर क्वला आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ । पुरिसस्स महिलियाए अट्ठावीसं भवे क्वला ” पद्भागकल्पितजठरापेक्षया त्विदं—“अद्वं असणस्स सर्वजणस्स कुज्जा दवस्स दो भागे । चाउयवियारणट्ठा छवभागं ऊणगं कुज्जा ” ततश्चास्माच्छास्त्रीयभोजनप्रमाणादधिकोऽतिमात्रश्च पूर्ववदाहारो भोजनं युक्त इति गम्यते, दिवापि हि समधिकभोजने कृते रात्रौ युक्तान्नगन्धोदाराः प्रजायन्ते, वमनं वा कदाचित्, तत्रच रात्रिभोजनदोषः समुद्भित्तगलने च प्रभूततरा दोषा इति, सूरस्यादित्यस्य क्षेत्रम् उदयास्तलक्षणं नभःखण्डं सूरक्षेत्रं तस्मिन् शङ्किते उदयक्षेत्रमागतौ वा न वा, अस्तदेशं प्राप्तौ वा न वा दिनकर इत्यारेकिते आहारो युक्त इति वर्तते । रात्रिभोजनस्य विरमणे उक्तोऽतिक्रम इति व्याख्यातमेव दर्शिता महाव्रतेष्व-
तिचाराः । साम्प्रतं यथा तान्येवातिचाररहितानि परिपालितानि भवन्ति, तथा दर्शयितुमाह—

दंसणनानचरित्ते अविराहिता ठिओ समणधम्मै । पढमं वयमणुरक्खे विरया मो पाणाइवायाओ ॥ १ ॥

दंसणनानचरित्ते अविराहिता ठिओ समणधम्मै । वीयं वयमणुरक्खे विरया मो मुसावायाओ ॥ २ ॥

दंसणनानचरित्ते अविराहिता ठिओ समणधम्मै । तहयं वयमणुरक्खे विरया मो अदिन्नादाणाओ ॥ ३ ॥

दंसणनानचरित्ते अविराहिता ठिओ समणधम्मै । चउत्थं वयमणुरक्खे विरया मो मेहुणाओ ॥ ४ ॥

दसणनानचरित्ते अरिराहिता टिओ समणधम्मो । पञ्चम वयमणुरक्खे विरया मो परिगाराओ ॥ ५ ॥
दमणनानचरित्ते अबिराहिता टिओ समणधम्मो । छट्ठ वयमणुरक्खे विरया मो राईभोयणाओ ॥ ६ ॥

दर्शनं च सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चाभिनिर्गोधिऋदि चारितं च सामायिरुदि दर्शनज्ञानचारित्राणि कर्मतापत्रानि, अविराध्य अख-
ण्डितानि परिपाल्य, विराधना च ज्ञानदर्शनयोः प्रत्यनीकृतादिलक्षणा पञ्चविधा यदाह—“नाणपडिणीयनिह्ववञ्चासायणतदन्तरायं च ।
कुणमाणस्सइयारो नाणविसवायजोगं च” ॥ तत्र ज्ञानप्रत्यनीकृता पञ्चविधज्ञाननिन्दया तथा—आभिनीयोधिकज्ञानमशोभनं यतस्तद-
वगतं ज्ञानं नृदाचिदन्यथेति, श्रुतज्ञानमपि शीलविकल्पाक्रिञ्चितरूतत्वादशोभनमेव, अवधिज्ञानमप्यरुपिद्रव्यगोचरत्वादसाधु, मन-
पर्यायज्ञानमपि मनुष्यलोकावधिपरिच्छिन्नगोचरत्वादशोभनमेव, केवलज्ञानमपि समयभेदेन दर्शनज्ञानप्रवृत्तेरेकसमये अकेवलत्वादशोभन-
मिति । दर्शनप्रत्यनीकृता तु क्षायिरुदर्शनोऽपि श्रेणिरुदयो नररुपगता इत्यतः किं दर्शनेनेति निन्दया । निह्वयो व्यपलापः, स
च ज्ञानस्यान्यसंज्ञोऽधीतमन्यं व्यपदिशतो जायते, दर्शनेनस्यापि सम्मत्यादिदर्शनप्रभावकशास्त्राण्यधिश्रुत्यैवमेव द्रष्टव्यम् । अत्या-
ज्ञातना तु ज्ञानस्य “क्वाया वया य ते चिय ते चेव पमाय अपमाया य । मोक्खाहिगारियाणं जोइसजोणीहि किं कज्ज” दर्शनस्य
तु भिन्नेभिः समत्यादिभिः कलहाश्चात्रैरिति । अन्तरायं द्वयोरपि कलहास्वाध्यायिकादिभिः करोति । ज्ञानविसवादयोगोऽकालस्या-
ध्यायादिना दर्शनमिप्सादयोगस्तु शुद्धासाक्षादिनेति । चारित्रविराधना पुनः साधयोगानुमत्यादिलक्षणा विचित्रेति । एतान्यरिराध्य
किमित्याह—स्थितः समारुढः सन् क्वेत्याह—श्रमणधर्मे श्रमणानां साधूनां धर्मः धान्त्यादिलक्षणः समाचारः तस्मिन् किं करोमी-
त्याह—प्रथममाद्यं तत यमम्, अणुरक्खेति अनुवर्धामि सर्वोतिचारिरहितं पालयामि किंविशिष्टं इत्याह—रिरया मोत्ति वचनस्य

व्यत्ययाद्विरस्तोस्मि निवृत्तोऽहं कस्मात्प्राणातिपाताजीवधादिति । एवमन्यदपि द्वितीयादित्रयाभिलाषिष्यत्रपञ्चकमेतदनुसारेण
समवसेयमिति । अथ प्रकारान्तरेणापि महाव्रतरक्षणमभिधातुमाह—
आलयविहारसमिओ जुत्तो गुत्तो ठिओ समणधम्ममे । पढमं वयमणुरक्खे विरया मो पाणाइवायाओ ॥ १ ॥
आलयविहारसमिओ जुत्तो गुत्तो ठिओ समणधम्ममे । वीयं वयमणुरक्खे विरया मो सुसावाया (अलियनयणा)ओ । २ ।
आलयविहारसमिओ जुत्तो गुत्तो ठिओ समणधम्ममे । तइयं वयणमणुरक्खे विरया मो अदिन्नादाणाओ ॥ ३ ॥
आलयविहारसमिओ जुत्तो गुत्तो ठिओ समणधम्ममे । चउत्थं वयमणुरक्खे विरया मो मेहुणाओ ॥ ४ ॥
आलयविहारसमिओ जुत्तो गुत्तो ठिओ समणधम्ममे । पञ्चमं वयमणुरक्खे विरया मो परिग्गहाओ ॥ ५ ॥
आलयविहारसमिओ जुत्तो गुत्तो ठिओ समणधम्ममे । छट्ठं वयमणुरक्खे विरया मो राईभोयणाओ ॥ ६ ॥
आलयविहारसमिओ जुत्तो गुत्तो ठिओ समणधम्ममे । तिचिहेण अण्णमत्तो रक्खामि मट्ठवए पंच ॥७॥ सू० ७ ॥

आलयेति सूचकत्वादालयवर्त्ती, सकलकलङ्कविकलनिलयनिषेधीत्यर्थः । एवं विहारति यथोक्तविहारेण विहरन् । तथा ईर्या-
दिसमितिपञ्चकेन समितः । तथा युक्तो नागन्याख्यानभूशयनादन्तपवनशिरस्तुण्डमुण्डनभिक्षाभ्रमणक्षुत्पिपासाशीतातपादिसहनगुरूकु-
लत्रसनादिलक्षणैः श्रमणगुणैः समन्वितः । तथा गुप्तिवयेण गुप्तः, स्थितो व्यवस्थितः, श्रमणधर्मे क्षान्त्यादिके यत्यनुष्ठाने, प्रथममाद्यं

नत यमम् अनुरक्षामि सदातिचारविरहित पालयामि, विरयामोचि वचनव्यत्ययाद्विरतोऽस्मि(निवृत्तोऽस्मि) प्राणातिपातात्, इत्येव शेषद्वयाण्यपि द्वितीयादित्रयताभिलाषेन नेतव्यानि, नवर सप्तमद्वयस्योचराजैर्विशेषो यथा त्रिभिधेन मनोवाकापलक्षणेन करणेनाप्रमत्तः सुप्रणिहितः, रक्षामि स्वजीवितमिवादरेण पालयामि महान्तान्युक्तलक्षणानि पञ्चेति पञ्चसख्यानीति । इदानीमेकाधेकोत्तरद्वयद्विकाना दशान्ताना शुभाशुभस्थानाना परिवर्जनाङ्गीकारकरणद्वारेण महान्तपरिरक्षणामिधानायाह—

सावज्जजोगमेग मिच्छत ण्यमेव अन्नाण । परिवज्जतो गुत्तो रक्खाभि मरुव्वण पञ्च ॥ १ ॥

अवद्य पाप सहायेन यो वर्तते स सावद्य. सचासौ योगश्च व्यापारः सावद्ययोगस्तमेकमेकमेद सकलनिन्द्यकर्मणा सावद्ययोगत्वा-
व्यभिचारादिति । तथा मिथ्या इत्येतस्य साग्रे मिथ्यात्व, मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयजन्यो विपर्यस्ताव्यवसायरूपो जीवपरिणामस्त-
न्निमित्तलौकिकदेवतादिवन्दनादिक्रिया च तदेकम् आभिग्रहिकानाभिग्रहिकाभिनिवेशिकानाभोगिकसाद्ययिकमेदात्पञ्चविधमपि उपा-
धिभेदतो बहुतरभेदमपि वा विपर्ययसाम्यादेकप्रकारम् । तथा एवचि अनुस्वारलोपादेवं मिथ्यात्ववदेकाविधमित्यर्थः । अत्राणंति नवः
कुरसार्थत्वात् कुत्सित ज्ञानमज्ञान सद्यविपर्ययानध्यवसायात्माक्रोज्ञानावरणदर्शनावरणकर्मोदयप्रभवो जीवस्यावबोधपरिणामस्तत्प्रम-
वग्रन्थविशेषाच्च तदप्ययुक्तक्रमेणानेकविधमप्यवबोधसामान्यादेकाविधमिति । किमित्याह—परिवर्जयन् परिहरन् गुप्तो मनोवचन
शरिरैः सदृक्तः सन्, रक्षामि सुनिशुद्धानि परिपालयामि महान्तान्युक्तलक्षणानि पञ्चेति पञ्चसख्यानीति । तथा—

१ मध्यवरोध० प्र० ।

अणवज्जजोगमेगं सम्मत्तं एगमेव नाणं तु । उवसम्पन्नो जुत्तो रक्खामि महव्वए पञ्च ॥ २ ॥

अनवद्ययोगं कुशलानुष्ठानम् एकं सकलकुशलानुष्ठानानामनवद्ययोगत्वाव्यभिचारादेकप्रकारं । तथा सम्यक्त्वमिति सम्यक्शब्दः प्रशंसार्थः, सम्यगित्येतस्य भावः सम्यक्त्वं, दर्शनमोहनीयक्षयक्षयोपशमोपशमाविर्भूता जिनोक्ततत्त्वश्रद्धानरूप आत्मपरिणामस्तच्चोपाधिभेदाने-
कप्रकारमपि श्रद्धानसामान्यादेकमेव, एकप्रकारमेव एकजीवस्य चैकदैकरैव भावादिति । तथा नाणं तुत्ति तुशब्दस्याप्यर्थत्वात् ज्ञा-
नमप्येकविधमेव, तत्र ज्ञायन्ते, परिच्छिद्यन्ते अर्था अनेनेति ज्ञानमात्रणक्षयक्षयोपशमादिसमुत्पन्नो मतिश्रुतादिविकल्पात्मको जीव-
स्यावबोधपरिणामः, तच्चानेकमध्यवबोधसामान्यादेकमुपयोगोपापेक्षया वा तथाहि—लब्धितो बहूनां बोधविशेषाणामेकदा संभवेऽप्युप-
योगत एक एव सम्भवत्येकोपयोगत्वाजीवानामिति । नन्ववबोधसामान्यात्सम्यक्त्वज्ञानयोः कः प्रतिविशेषः । उच्यते?, रुचिः—सम्यक्त्वं
रुचिकारणं तु ज्ञानं यथोक्तं “नाणमवाययिईओ दंसणमिहुं जहोगेहेहाओ। तह तत्तरुई सम्मं रोइज्जई जेण तं नाणं” एतत्किमित्याह-
उपसंपन्नः—प्रतिपन्नो युक्तः श्रमणगुणैः रक्षामि, पालयामि महाव्रतानि भणितस्वरूपाणि पञ्चेति पञ्चमं लयापरिच्छिन्नानीति । तथा
दो चैव रागदोसे दुन्नि य झाणाइ अट्टरोदाइं । परिवज्जंतो गुत्तो रक्खामि महव्वए पञ्च ॥ ३ ॥

द्वावेव द्विसंख्यावेव कावित्याह—रागश्च द्वेपच द्वेपौ तत्र अनभिव्यक्तमायालोभलक्षणभेदस्वभावमभिज्वङ्गमानं रागः, अनभिव्य-
व्यक्तक्रोधमानलक्षणभेदस्वभावमग्रीतिमात्रं तु द्वेपः तौ परिवर्जयन्नितियोगः । तथा द्वे च द्विसंख्ये च ध्यायते—चिन्त्यते—
वस्त्वाभ्यमिति ध्याने, ध्याति वा ध्याने, अन्तर्मुहूर्त्तमात्रकालमेकाग्रचित्ताध्यवसाने यदाह—“अन्तोमुहुचमिच्चं चित्तावत्थाणमेगवत्थुं

१ चिरनिसखरूपाणि प्र० ।

मि । छउमत्थाणं ज्ञाण जोगनिरोहो जिणण तु "ते एव नामग्राहमाह-आर्त्तं च रौद्र चार्त्तरीद्रे तत्र क्रतुःख तस्य निमित्त, तत्र वा भव, क्रते वा पीडिते प्राणिनि भवमात्तं तच्चात्मनो ज्ञाना शब्दरूपरसगन्धस्पर्शलक्षणा त्रिपयाणा तदाश्रयभूतवायसादिवस्तूना वा समुपन-
ताना त्रिप्रयोगप्रणिधान, भाविना चाऽसप्रयोगचिन्तनम् ॥१॥ एव शूलशिशिरोरोगादिवेदनाया अपि विप्रयोगप्राप्त्यर्थम् ॥२॥ इष्टशब्दादिवि-
पयणां सातवेदनायाश्चात्रियोगसप्रयोगप्राप्त्यर्थम् ॥३॥ देवेन्द्रचक्रवर्त्यादिमन्त्रधृष्टिप्राप्त्यर्थम् च ॥४॥ शोकाक्रन्दनस्वदेहताडनविलपनादिल-
क्षणलक्ष्य तिर्यग्गतिगमनकारण विवेकम् । तथा रौद्रयतीति रुद्र आत्मैव तस्य कर्म रौद्र, तदपि सत्त्वेषु वयवेचन्धनदहनाङ्कनमारणादि
प्रणिधानम् ॥ १ ॥ पैशून्यासत्यामैर्दुभूतभूतथातादिवचनचिन्तनम् ॥ २ ॥ तीव्रक्रोपलोभाबुल भूतोपघातपरायण परलोकापायनिरपेक्ष
परद्रव्यहरणप्रणिधानम् ॥ ३ ॥ सर्वाभिगच्छनपर परोपघातपरायण शब्दादिविषयसाधकद्रव्यसरक्षणप्रणिधानम् ॥४॥ उत्सन्नधादिग-
म्य नरकगतिगमनकारण समवसेयम् । एते च किमित्याह-परिवर्जयन् गुप्तं सन् रक्षामि महाव्रतानि पञ्चेति । तथा--

दुविच चरित्तधम्म दुद्धि य ज्ञाणाइ धम्मसुक्काइ । उवसपन्नो जुत्तो रक्खामि महव्वण पञ्च ॥ ४ ॥
द्विविध देशसर्वाचारित्रमेदाद्विप्रकार चर्यते मुमुक्षुभिरासेव्यते तदिति, चर्यते वा गम्यतेऽनेन निर्वृताविति चरित्रं, अथवा चयस्य
कर्मणा रिक्तीकरणश्चरित्र निरुक्तन्यायादिति चारित्रमोहनीयक्षयाद्याविर्भूत आत्मनो विरतिरूपपरिणामस्तद्विषयो धर्मः श्रेयश्चारि-
त्रधर्मस्त, द्वे च ध्याने प्रणिधाने धर्म्यं शुक्लं च धर्म्यं शुक्लं तत्र श्रुतचरणधर्मादनपेतं धर्म्यं तच्च सर्वज्ञाज्ञाशुचिन्तनम् ॥ १ ॥ राग
द्वेषरूपायेन्द्रियवशवन्त्वपायविचिन्तनम् ॥ २ ॥ ज्ञानावरणादिशुभाशुभकर्मविषाकस्मरणम् ॥३॥ क्षितिवलयद्वीपसमुद्रप्रमृतिव-

१ विप्रयोगासंप्रयोग ० प्र० । २ दिसमृद्धि प्र० । ३ सभ्या ० प्र० ।

स्तुसंस्थानादिधम्मलोचनात्मकम् ॥४॥ जिनप्रणीतभावश्रद्धानादिचिह्नगम्यं देवगत्यादिफलसाधकं ज्ञातव्यम् । तथा-शोधयत्यष्टप्र-
प्रकारं कर्ममलं शुचं वा शोकं क्लमयत्यपनयतीति निरुक्तविधिना शुद्धम् एतदपि पूर्वगतश्रुतानुसारिनानानयमतैकद्रव्यगतोत्पत्ति-
स्थितिभङ्गादिपर्यायानुस्मरणादिस्वरूपम् । अवधासंमोहादिलिङ्गगम्यं मोक्षादिफलप्रसाधकं विज्ञेयम् । शेषं प्राग्वत् ज्ञेयमिति ॥ तथा-

किन्हा नीला काज तन्नि य लेसाउ अप्पसत्थाउ । परिवज्जन्तो गुत्तो रक्खामि महव्वए पञ्च ॥ ५ ॥

किण्वति विभक्तिव्यत्यात्कृष्णां एवं नीलति नीलां, काउत्ति कापोतीं; चेत्येतास्तिस्त्रिसंख्याः चशब्दो योजित एव, लिख्यन्ते श्लिष्यन्ते
प्राणिनः कर्मणा यकाभिस्ता लेख्याः कृष्णादिद्रव्योपाधिका जीवपरिणामविशेषाः, आह च-“श्लेष, इव वर्णवन्धस्य कर्मवन्धस्थितिचि-
धाव्यः । तथा-“ कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्परिणामो य आत्मनः । स्फटिकस्येव तत्रायं लेख्याशब्दः प्रयुज्यते” इति, ताः किंविशि-
ष्टा इत्याह-अप्रशस्ता अप्रशस्तस्वरूपत्वात् छिष्टकर्मवन्धहेतुत्वाचारित्रादिगुणलाभविघातनिमित्तत्वाच्चासुन्दराः किमित्याह-परिवर्ज-
यन्नित्यादि पूर्ववदिति । तथा-

तेज पम्हा सुक्का तन्नि य लेसाउ सुप्पसत्थाओ । उवसंपन्नो जुत्तो रक्खामि महव्वए पञ्च ॥ ६ ॥

तेजस्ति तैजसीं, पम्हत्ति पद्मां; सुक्कत्ति शुद्धां चेत्येतास्तिस्त्रिसंख्याश्चशब्दः प्राग्योजित एव लेख्याः परिणामविशेषाः, सुप्रशस्ताः
शुभस्वरूपत्वात् शुभकर्मवन्धहेतुत्वाच्चारित्रादिगुणलाभकारणत्वात् शुभगतिनिवन्धनत्वाच्च सुन्दराः किमित्याह-उपसंपन्न ईत्यादिपूर्व-
वदिति । तत्र कृष्णा वर्णतः-स्निग्धजीमूतगवत्वद्व्यालभमराजानादिसमानवर्णैः, रसतो रोहिणीपिचुमन्दकटुकतुग्न्यकादिसमधिकतमर-

सै, गन्धत'-कुथितगोरुडेवरादिसमधिकतमगन्धैः, स्पर्शत'-क्रूरचादिसमधिकतमस्पर्शैः, सकलकर्मप्रकृतिनिष्पन्दभूतैः, कृष्णद्रव्यै-
र्जनितत्वात्कृष्णाभिधाना । नीला तु वर्णतो नीलाशोकगुलिकावैद्यैर्न्यन्तनीलाचापिच्छादिसमवर्णैः, रसतो मरिचपिप्पलीनागरादिसम-
धिकतररसैः, गन्धतो मृत्तुरगशरीरादिसमधिकतरगन्धैः, स्पर्शतो गोजिह्वादिसमधिकतरकर्कशस्पर्शैः, सकलप्रकृतिनिष्पन्दभूतैर्नील-
द्रव्यैर्जनितत्वात्नीलाभिधाना । रूपोती तु वर्णतोऽतसीकुसुमपारापतशिरोधराफलिकन्दलादिधूपद्रव्यतुल्यवर्णैः, रसतस्तरुणाप्रवाल-
क्रापित्यादिसमधिकतररसैः, गन्धत'-कुथितसरीसृपादिसमधिकगन्धैः, स्पर्शतः-रुडोरपलाशतरुपादिसमधिकस्पर्शैः, सकलप्रकृतिनि-
ष्पन्दभूतैः रूपोताभद्रव्यैर्निष्पन्नत्वात्कापोतीसज्ञा । तैत्तसी तु वर्णतो वह्निज्वालशुक्रमुसकिंशुकतरुणाकहिंशुलुकादिलोहितद्रव्यसमा-
नवर्णैः, रसतः परिणाताश्रुपक्कफपित्थादिसमधिकरसैः, गन्धतो विचकिलपाटलादिसमधिकगन्धैः, स्पर्शत'-शालमलीफलतूलादिसम-
धिकस्पर्शैः, तेजोवर्णद्रव्यैर्निष्पन्नत्वात्तैजसीसज्ञा । पद्मा तु वर्णतो हरिद्राहरितालादिपीतद्रव्यसमवर्णैः, रसतो वरवारुणीमध्वादिस-
मधीतरसैः, गन्धत'-शतपत्रिकापुटपाकरुगन्धादिसमधिस्तरगन्धैः, स्पर्शतो नमनीतरुतादिसमधिकतरसुकुमारस्पर्शैः, पद्मगर्भाभद्रव्यैर्नि-
ष्पन्नत्वात्पद्माभिधाना । शुक्ला तु वर्णतः-शङ्खकुन्ददुहारक्षीररजतादिसदृशवर्णैः, रसतो मृद्वीकाखण्डक्षीररज्जूरशर्करादिसमधिकतम-
शुभ्ररसैः, गन्धतः-कर्पूरमालतीमाल्यादिसमधिकतमसुरभिगन्धैः, स्पर्शतः-शिरीषपुष्पादिसमधिकतमसुकुमारस्पर्शैः, शुक्लद्रव्यैर्जनित-
त्वाच्छुक्काभिधाना । आसा च स्वरूपतारतम्य जम्बूफलखादकपुरुषपद्दष्टान्तेन ग्रामघातरुचौरपुरुषपद्दष्टान्तेन च " जह जघुषायवेगो
मुपकफलभरियनमियसालग्नो । दिद्वो छहि पुरिसहि ते विन्ती जघु भक्खेमो । १ । किह पुण ते विन्तेगो आरुहमाणे जीय
सन्देहो । तो छिन्दिज्ज मूले पाडेउन्ताहे(इ)भक्खेमो । २ । निइयाह एदहेण जिन्नेण (कि) दुमेण अम्हन्ति । साहा महल्ल छिन्दह

छिन्दह तइओ बेइ पसाहाओ । ३ । गोच्छे चउत्थओ उण पञ्चमओ बेइ गिल्लइ फलाइ । छट्टो बेइ पडिया एए चिय खायहा धेनुं । ४ । दिट्ठन्तस्सोवणओ जो बेइ तरुं तु छिन्दिमो मूला । सो वड्डइ किण्हाए, सालमहल्लाउ नीलाए । ५ । हवइ पसाहा काऊ गुच्छा तेऊ फला य पम्हाए । पडिया य सुक्कलेसा अहवा अन्न इमाहरणं । ६ । चोरा गामवहत्यं विणिग्गया एगो वेइ धाएह । जं पेच्छह तं सव्वं दुपयं च चउप्पयं वावि । ७ । विईओ माणुसपुरिसे य तइओ य साउहे चउत्थो उ । पञ्चमओ जुज्जंते छट्टो पुण तत्थिमं भणइ । ८ । एकं ता हरह धणं वीयं मारेह मा कुणह एवं । केवल हरह धणन्ती उवसंहारो इमो तेसिं । ९ सव्वे मारेहत्ती वड्डइ सो किण्हलेसपरिणामे । एवं कमेणं सेसा जा चरिमो सुक्कलेसाए । १० । इति सूत्रद्वयभावार्थ इति ॥ तथा—

मणसा मणसच्चविज वायासच्चेण करणसच्चेण । तिविहेण वि सच्चविज रक्खामि महव्वए पञ्च ॥ ७ ॥

अस्य प्राकृतचूर्णानुसारिणी व्याख्येयं—मनसा शुभस्वभावरूपेण चेतसा करणभूतेन रक्षामि महाव्रतानि पञ्चेति सर्वत्र योगः, किंविशिष्टः सचित्याह—मणसच्चविजति; मनसः सत्यं मनःसत्यं मनःसंयम इत्यर्थः । स चाकुशलमनोनिरोधकुशलमनःप्रवर्त्तनलक्षणास्तं वेद्मि सम्यगासेवतो जानामीति मनःसत्यविद्वान्, तथा वाक्सत्येन कुशलाकुशलवचनोदीरणनिरोधलक्षणेन वाक्संयमेन करणभूतेन तथा करणसत्येन क्रियातथ्येन कायसंयमेनेत्यर्थः, स च सति कार्ये उपयोगतो गमनागमनादिविधानं तदभावे तु संलीनकरचरणाद्यवयवस्यास्थानं यदिति । अनेन च भङ्गत्रयाभिधानेनान्यदपि द्विकसंयोगभङ्गत्रयं सूचितं तद्यथा—मनोवाक्सत्येन मनः कायसत्येन वाकायसत्येन चेति तथा—तिविहेण वि सच्चविजति, त्रिविधेनापि मनोवाक्कायलक्षणेन करणेन सत्यविद्वान् संयमज्ञः शुद्धसंयमपालक इत्यर्थः, अनेन च त्रिकसंयोगभङ्गः प्रदर्शित इत्येवं सप्तविकल्पेन संयमेन, रक्षामि परिपालयामि, महाव्रतानि पञ्चेति । तथा ।

चत्तारि य दुहसेज्जा चउरो सत्ता तहा कसाया य । परिवज्जन्तो गुत्तो रक्खाभि मन्वए पञ्च ॥ ८ ॥

चतस्रथतु संख्याशब्दोऽभ्युच्ये, शेरते आस्विति-शय्या., दुःखदाः शय्या दुःसशय्याः, ताश्च द्रव्यतोऽज्ञायाविधिवद्वैरूपाः, भानतस्तु दुःस्थचित्ततया दुःश्रमणताम्भावाः, प्रवचनाश्रद्धान १, परलाभप्रार्थन २, कामाशसन ३, लानादि प्रार्थनविशेषिता मन्तव्याः । यदुक्तं म्यानाङ्गसूत्रे-“ चत्तारि दुहसेज्जाओ पन्नत्ताओ तत्थ सलु इमा पढमा दुहसेज्जा 'सेण मुण्डे भविता अगाराओ अणगारिय पव्वइए; निग्गथे पावयणे सकिए करिए वित्तिगिन्डिए भेयसमावन्ने कलुससमावन्ने निग्गथ पावयण नो सइहइ, नो पत्तिपइ, नो रोएइ निग्गथ पावयण असइहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे मण उच्चावय नियच्छइ विणिग्गायमावज्जइ पढमा दुहसेज्जा ' से इति स कश्चिद्वगुरुकम्मो, प्रवचने शासने, दीर्घत्व च प्राकृतत्वादिति, शङ्कित एकभावविषयसशययुक्तः, काक्षितो मतान्तरमपि साध्विति बुद्धिमान्), विचिकित्सत् फल प्रति शङ्कावान्, भेदसमापन्नो बुद्धेर्द्विभावापन्न एवमिदं सर्वं जिनशासनोक्तमन्यथावेति, कलुप-समापन्नो नैतदेवमिति विपर्यस्त इति, न श्रद्धेत्ते सामान्यनैवमिदमिति नो प्रत्येति प्रतिपद्यते प्रीतिद्वारेण, नो रोचयति अभिलाषा-तिरेकेणासेवनाभिमुखतयेति, मनश्चित्तमुच्चावचसमज्जस निर्गच्छति-याति-करोतीत्यर्थः, ततो विनिर्घात धर्मत्रय मसार वा आपद्य-ते एवमसौ श्रामण्यशय्याया दुःश्रामास्ते इत्येका । “ अहावरा दोच्चा दुहसेज्जा ' से ण मुण्डे भविता अगाराओ जाव पव्वइए सएणं लामेण नो तुसइ, परस्स लामं आसाणइ, पीहइ, पत्थेइ, अभिलसइ, परस्स लाम आसाएमाणे जाव अभिलसमाणे मणे उच्चावय नि-यच्छइ विणिग्गायमावज्जइ दोच्चा दुहसेज्जा ” स्वकेन स्वकीयेन लभ्यते लम्भन वेति लाभोऽन्नादे रत्तादेवा आशा करोतीत्याशयति

स नूनं ने दास्यतीत्येवमिति, आस्वादयति वा लभते चेद् भुङ्क्त एव स्पृहयति, प्राञ्छयति, याचते, अभिलपति; लब्धेऽप्यधि-
 कतरं वाञ्छतीत्यर्थः । शेषमुक्तार्थमेवमप्यसौ दुःखमास्ते इति द्वितीया । “अहावरा तच्चा दुहसेज्जा ‘से णं मुण्डे भविता जाव पव्वइए
 दिव्वमाणुस्सए कामभोगे आसाएइ, जाव अभिलसइ दिव्वमाणुस्सए कामभोगे आसाएमाणे जाव अभिलसमाणे मणं उच्चावयं निय-
 च्छइ विणिग्घायमावज्जइ तच्चा दुहसेज्जा” कण्ठैवेयं । अहावरा चउत्था दुहसेज्जा ‘से णं मुण्डे जाव पव्वइए तस्स णं एवं भवइ जया
 णं अहं अगारवासं आवसामि तथा णं अहं संवाहणपरिमद्दण्णायग्घज्जाउच्छोलणां से लभामि, जप्पभिइं च णं अहं मुण्डे जाव पव्वइए
 तप्पभिइं च णं अहं संवाहण जाव गाउच्छोलणां नो लभामि, से णं संवाहणं जाव गाउच्छोलणां आसाएइं जाव अभिलसइ, से णं
 संवाहण जाव गाउच्छोलणां आसाएमाणे जाव मणं उच्चावयं नियच्छइ विणिग्घायमावज्जइ चउत्था दुहसेज्जा” अगारवासो गृहवासः
 तमावसामि तत्र वर्ते संवाधनं शरीरस्यास्थिसुखत्वादिना नैपुणेन मर्दनविशेषः, परिमर्दनं तु पृष्टादेर्ममलनमात्रं परिशब्दस्य धात्वर्थ-
 मात्रवृत्तित्वात्, गात्राभ्यङ्गस्तैलादिनाङ्गप्रक्षणं गात्रक्षालनमङ्गधावनमेतानि लभे न कश्चिन्निषेधतीति शेषं कण्ठ्यमिति चतुर्थी । तथा
 चतसश्चतुःसङ्ख्याकाः का इत्याह-संज्ञानानि संज्ञा असातेदनियमोहनियकर्मोदयजन्योद्यतना, विशेषास्ताश्चेमाः आहारसंज्ञा १, भय-
 संज्ञा २, मैथुनसंज्ञा ३; परिग्रहसंज्ञा च ४ । तत्राहारसंज्ञा आहाराभिलापः, सा पुनश्चतुर्भिः स्थानैरुत्पद्यते, तद्यथा-“ओमकोट्टयाए १,
 छुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं २, मईए ३, तदद्दोवओणेणं ४ । “अवमकोट्टतया, मत्तया आहारकथाश्रवणादिज-
 नितबुद्ध्या, तदर्थोपयोगेन सततमाहारचिन्तया । भयसंज्ञा भयमोहनीयसंपाद्यो जीवपरिणामः, इयमपि चतुर्भिः स्थानैः समुत्पद्यते,
 तद्यथा-“हीणसत्तयाए १, भयमोहणिज्जोदएणं २, मईए ३; तदद्दोवओणेणं ४॥” हीनसत्त्वतया सत्त्वाभावेन, मतिर्भयवार्त्ताश्रव-

गभीरणदर्शनादिजनिता बुद्धिस्तया, तदर्थोपयोगेन इहलोकादिभयलक्षणार्थपर्यालोचनेनेति । मैथुनसङ्गा वेदोदयजनिता मैथुनाभिलाषः, इयमपि चतुर्भिः स्थानैरुपपद्यते, तद्यथा-“चियमससोणिषाए १, वेयमोहणिज्जोदण २, मईए ३, तदडोवओणेण ४ । चित्ते उपचिते मासशोणिते यस्य स तथा तद्भावस्तत्ता तया चियमासशोणिततया, मत्त्या सुरतकथाश्रवणादिजनितबुद्ध्या, तदर्थोपयोगेन मैथुनलक्षणार्थानुचिन्तनेनेति । परिग्रहसङ्गा चारित्रमोहोदयजनितः परिग्रहाभिलाषः, इयमपि चतुर्भिः स्थानैरुपपद्यते तद्यथा-“अवियुत्तयाए १, चारित्रमोहणिज्जोदण २, मईए ३, तदडोवओणेण ४ ” अवियुक्ततया सपरिग्रहतया मत्त्या सचेतनादिपरिग्रहदर्शनादिजनित-बुद्ध्या तदर्थोपयोगेन परिग्रहानुचिन्तनेनेति । तथा कषायाश्चेति तेन चतुर्विधग्रकारेण कषायाश्च परिवर्ज्जयन्निति । तत्र कृपन्ति, विलिखन्ति कर्मक्षेत्रे सुरदुःखफलयोग्य कलुषयन्ति वा जीवमिति निरुक्तविधिना कषायाः, उक्तं च-

“ सुहदुक्खवहुसईय कम्मक्खेत्त ऋसति ते जम्हा । कलुसति ज च जीव तेण कसायत्ति बुच्चति ” अथवा-कपति, हिनस्ति दे-हिन् इति कपः कर्म भवो वा तस्याया लाभहेतुत्वात्कप वा आययन्ति गमयन्ति देहिन् इति-कषायाः । उक्तं च-“ कम्म कस भ वो वा कसमाओसिं जओ कसाया उ । ऋसमाययन्ति व जओ गमयन्ति ऋस कसायत्ति ” ते चेमे क्रोधो मानो माया लोभश्च, तत्र क्रोधेन कुध्यति वा येन स क्रोधः, क्रोधमोहनीयोदयसम्पाद्यो जीवस्य परिणतिविशेषः क्रोधमोहनीयकर्मव वेति एवमन्यत्रापि । नवर जात्यादिगुणवानहमेवेत्येव मननवगमन मन्यते वाज्जेनेति, मानः । तथा मान हिंसन वञ्चनमित्यर्थः, मीयते वा अनयेति-माया तथा लोभनमभिराक्षेण लुभ्यते वाज्जेनेति-लोभः । एते चैहिकाशुष्मिफमहानर्थशतहेतवो यदाह-“ क्रोधात्प्रीतिविनाश मानाद्विन-योपघातमामोति । शास्त्रात्प्रत्ययहानिं सर्वगुणविनाशन लोभात् ॥ १ ॥ क्रोधः परितापकरः सर्वस्योद्वेगकारकः क्रोधः । वैराग्यपङ्क-

जनकः क्रोधः, क्रोधः गुणति हन्ता । २ श्रुतशीलविनयसन्दूषणस्य धर्मार्थिक्रामविघ्नस्य । मानस्य कोऽवकाशं मुहूर्त्तमपि पण्डितो दद्यात् । ३ । मायाशीलः पुरुषो यद्यपि न करोति कश्चिदपराधम् । सर्प इवाविध्यास्यो भवति, तथाप्यात्मदोषहतः । ४ । सर्वविनाश्रयिणः सर्वव्यसनेकराजमार्गस्य । लोभस्य को मुखं गतः क्षणमपि दुःखान्तरमुपेयादित्यादि ” परिवज्जन्तो इत्यादिपूर्ववत् तथा-
चत्तारि य सुहसेज्जा चउब्बिहं संवरं समाहिं च । उवसंपन्नो जुत्तो रक्खामि महच्चए पअ ॥ ९ ॥

चतस्रश्चतुःसङ्ख्याः, चः, समुच्चये का इत्याह—सुखदाः शय्याः सुखशय्याः, एता दुःखशय्याविपरीताः प्रायः प्रागिवावगन्तव्याः । यदाह—“ चत्तारि य दुहसेज्जाउ । पवचाउ तत्थ खलु इमा पढमा सुहसेज्जा, से णं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए निगंथे पावयणे निस्संकिण् निक्कंखिण् निव्वितिगिच्छे नो भेयसमावन्ने नो कलुससमावन्ने निगंथं पावयणं सहइ पचियइ रोएइ निगंथं पावयणं सहहमाणे पचियमाणे रोएमाणे नो मणं उच्चावयं नियच्छइ नो विणिग्घायमावज्जइ पढमा सुहसेज्जा ॥१॥ अहावरा दोचा मुहसेज्जा, से णं मुण्डे भवित्ता जाव पव्वइए सएणं लाभेणं तुस्सइ परस्स लंभं नो आसाएइ नो पीहेइ नो पत्थेइ नो अभिलसइ परस्स लाभं अणासाएमाणे जाव अणभिलसमाणे नो मणं उच्चावयं नियच्छइ नो विणिग्घायमावज्जइ दोचा सुहसेज्जा ॥ २ ॥ अहावरा तच्चा सुहसेज्जा, से णं मुण्डे भवित्ता जाव पव्वइए दिव्वमाणुस्सए कामभोगे नो आसाएइ जाव नो अभिलसइ दिव्वमाणुस्सए कामभोगे अणासाएमाणे जा अणभिलसमाणे नो मणं उच्चावयं नियच्छइ नो विणिग्घायमावज्जइ तच्चा सुहसेज्जा ॥ ३ ॥ अहावरा चउत्था सुहसेज्जा से णं मुण्डे जाव पव्वइए तस्स णं एवं भवइ जइ ताव अरहन्ता भगवन्ता हट्ठा अरोगा वलिया कल्लसरीरा अनयराइं उरालां विपुलां पयत्ताइं पग्गहियां महासुभागां कम्मक्खयकारणां तवोकम्मं पडिवज्जन्ति, किमङ्गण

अहं अन्भोवगमिउवक्कमिय वेयण नो सम्म सहामि रायामि तितिव्वेमि अहियासेमि, मम च ण अन्भोवगमिउवक्कमिय वेयण सम्म असहमाणस्स अणहियासेमाणस्स किं मन्ने रुज्जइ?, एगतसो मे यावे कम्मे कज्जइ, मम ण च ण अन्भोवगमिउ जाव सम्म सहमाणस्स जाव अहियासेमाणस्स किं मन्ने रुज्जइ?, एगन्तसो मे निज्जरा कज्जइ, चउत्था सुहसेज्जा ॥ ४ ॥

इट्ठप्पि शोकाभावेन हृष्टा इव हृष्टाः, अरोगा ज्वरादिवर्जिताः, बलिकाः प्राणवन्तः, कल्पशरीराः पटुशरीराः, अन्यतराणि अनशनादीना मध्ये एकतराणि उदाराणि आशसादोपरहिततयोदारचित्तयुक्तानि, कल्याणानि मङ्गलस्वरूपत्वात्, विपुलानि बहुदिनत्वात्, प्रयतानि प्रकटसपमयुक्तत्वात् प्रगृहीतानि आदरप्रतिपन्नत्वात्, महानुभागानि अचिन्त्यशक्तियुक्तत्वात्, ऋद्धिविशेषकारणत्वात् (द्वा) कर्मक्षयकारणानि मोक्षसाधनत्वात्, तपःकर्मणि तपःक्रियाः, प्रतिपद्यन्ते आश्रयन्ति, किमङ्ग पुणत्ति किं प्रश्ने अङ्गेत्यामन्त्रणेऽलङ्कारे, सा पुनरिति पूर्वोक्तार्थवैलक्षण्यदर्शने, शिरोलोचनक्षत्रचर्यादीनामभ्युपगमे भवाम्युपगमिकी उपक्रम्यतेऽनेनायुरित्युपक्रमो ज्वरातीसारदिस्तत्र भवा या सौपक्रमिकी ता वेदना, सहामि तदुत्पत्तावविमुत्तया, क्षमे विमोपतया, तितिक्षामि अदीनतया, अध्वासयामि सौष्टवातिरेकेण तत्रैव वेदनायामवस्थान करोमीत्यर्थः । मन्ये निपातो वितर्कार्थः, क्रियते-भवतीत्यर्थः । तथा-चतुर्विध चतुःप्रकार, क्रमित्याह-सवर सयम, स चाय “मणसज्जे, कायसज्जे, उवगरणसज्जे” तत्र मनोवाक्यायानामकुशलत्वेन निरोधाः कुशलत्वेनोदीरणानि सयमाः ३ । उपकरणसयमो महामूल्यवस्तुहिरण्यादिपरिहारः, वस्त्रपुस्तकतृणचर्मपञ्चकपरिहारो वा, तत्र-“गण्डी कच्छवि मुट्ठी सपुण्ड्रफलं तथा छिवाडीए । एय पुत्थयणय वक्खसणमिणं भवे तस्स ॥१॥ वाहल्लपुट्ठेहि गण्डीपुत्थो उ तुल्लगो दीहो । कच्छवि अन्ते तणुओ मज्जेपिहुलो मुणेयव्वो ॥ २ ॥ चउरगुलदीहो वा चट्ठाणिई मुट्ठिपोत्थगो अहवा । चउरगुलदीहो जिय चउ

रंसो होइ विनेओ ॥ ३ ॥ संपुडगो दुगमाई फलगा वोच्छञ्छिवाडिमेचाहे । तणुपत्तसियरूवो होइ छिवाडी बुहा वेन्ति ॥ ४ ॥
दीहो वा हस्सो वा जो पिहुलो होइ अप्पवाहल्लो । तं मुणियसमयसारा छिवाडिपोत्थं भणन्तीह ॥ ५ ॥ अप्पडिलेहियदूसे तूली उव-
हाणगं च नायव्वं । गण्डुवहाणालिङ्गिणि मसूरए चेव पोचामए ॥ ६ ॥ पल्लहविकोयविपावारनवयए तह य दाढिगाली य । दुप्पडिले-
हियदूसे एयं वीयं भवे पणगं ॥ ७ ॥ पल्लहवि हत्थुत्थरणं कोयवओ रूयपूरिओ । पडओ दढगाली धोयपोची सेस पसिद्धा भवे भेया
॥ ८ ॥ ” अत्र वृद्धसम्प्रदायः—हत्थुत्थरणं खरडं १, कोयवओ चूरडिगा (बूरडिगा) २, पावारो सलोमपडओ ३, नवओ जीणं ४,
दढगाली धोयपोची सदसवत्थन्ति भणियं होइ ५; “तणपणगं पुण भणियं जिणेहि कमट्टगंठिमहणेहिं । साली वीही कोह्व रालगर
नेतणाइं च ॥ ९ ॥ अयप्लगाविमहिमीमिगाणमजिणं च पञ्चमं होइ । तलिगाखल्लगवद्धे कोसगकत्ती य वीयं तु ॥ १० ॥ अप-
वादतस्तु पुस्तकपञ्चकादीग्रहणेऽपि संयम एव यदाह—“ दुप्पडिलेहियदूसे अद्धाणाई विचिच्च गेहन्ति विप्पइ पोत्थगपणगं कालियनि-
ज्जुत्तिकोसेट्टयादि ” । तथा समाधिं चेति समाधानं समाधिः प्रशस्तभावाविरोधलक्षणः, स च दर्शनज्ञानतपश्चारित्रिविषयभेदाच्चतु-
र्विधः, दर्शनादीनां समस्तानां व्यस्तानां वा अविरोध इतिकृत्वा तमुपसंपन्न इत्यादि पूर्ववदिति । तथा—

पञ्चैव य कामगुणे पञ्चैव अण्हवे महादोसे । परिवज्जन्तो गुत्तो रक्खामि महन्वए पञ्च ॥ १० ॥

पञ्चैव मनोज्ञशब्दरूपरसगन्धस्पर्शभेदात्पञ्चसंख्या एव, चशब्दोऽर्थान्तराभिधानसमुच्चयार्थः, के इत्याह काम्यन्ते रागातुरैः प्राणिभिरभिकांक्ष्यन्त इति कामा अभिलषणीयपदार्थास्त एवात्मसंयमनैकहेतुत्वाद् गुणाः सूत्रतन्त्रवः आत्मगुणोपघातकारणत्वाद्वा गु-

णाः कामगुणाः, अथवा-कामस्य मदनस्यामिलापामात्रस्य वा सपदाका गुणाः धर्माः पुद्गलानां कामगुणाः, ते चानर्थहेतवो यदुक्तं-
 “ कलरिभित्तमधुरगान्धर्वतूर्ययोऽपिद्विभूषणरवाद्यैः । श्रोत्रात्रबद्धहृदयो हरिण इव विनाशमुपयाति ॥ १ ॥
 गतिविभ्रमेद्भिताकारहास्यलीलाकटाक्षविक्षिप्तः । रूपावेशितचक्षुः शूलभ इव विपद्यते विवशः ॥ २ ॥
 स्नानाङ्गरागवर्त्तिकवर्णकधूपाधिवासपटवासैः । गन्धअमितमनस्को मधुकर इव नाशमुपयाति ॥ ३ ॥
 मिथान्नपानमासौदनादिमधुररसविषयगृद्धात्मा । गलयन्त्रपाशवद्धो मीन इव विनाशमुपयाति ॥ ४ ॥
 शयनासनसम्बाधनसुरतस्नानानुलेपनासक्तः । स्पर्शव्याकुलितमतिर्गजेन्द्र इव वध्यते मूढः ॥ ५ ॥ ”
 इत्यतस्तान् कामगुणान् परिवर्जयन्निति योगः । तथा-पञ्चैव प्राणातिपातमृपावादादादानमैथुनपरिग्रहमेदात्पञ्चमल्या एव,
 चः-समुच्चये, के इत्याह-आलौल्यादत्ते कर्म धैस्ते आस्रवा आस्रवा इत्यर्थस्तान्, किंविधानित्याह-महान्तश्च ते दोषाश्च महादोषा
 दारुणदुःसहंतुत्वात्प्रकटदूषणानि तान् शेष पूर्ववदिति । तथा—
 पञ्चिन्द्रियस्वरण तद्देह पञ्चवित्मेव सञ्ज्ञाय । उवसंपन्नो जुत्तो रक्त्वामि महव्वण पञ्च ॥ ११ ॥
 तत्रेन्दनादिन्द्रो जीवः सर्वविषयोपलब्धिभोगलक्षणपरमैश्वर्ययोगात्, तस्य लिङ्गमिति इन्द्रिय श्रोतादि, तच्च द्विविध द्रव्येन्द्रियं भावे-
 न्द्रिय च, तत्र “ निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रिय, ” “ लब्धयुपयोगौ भावेन्द्रिय, ” तत्र निर्वृत्युपकरणे, सा च बाह्याभ्यन्तरा च, तत्र
 बाह्याऽनेकप्रकारा, अभ्यन्तरा पुनः क्रमेण श्रोत्रादीना रुदम्बपुण्य १, धान्यमसूरा २, धान्यमसूरा ३, धुराग्र ४, नानाकार ५,

संस्थाना, उपकरणेन्द्रियं विषयग्रहणे सामर्थ्यं छेद्यच्छेदने खड्गस्येव धारा यस्मिन्नुपहते निर्वृत्तिसद्भावेऽपि विषयं न गृह्णातीति, लब्धीन्द्रियं तदावरणक्षयोपशमः, उपयोगेन्द्रियं यः स्वविषये व्यापार इति । ततश्च पञ्च च तानीन्द्रियाणि च पञ्चेन्द्रियाणि तेषां संवरणं इष्टानिष्टविषयेषु रागद्वेषाभ्यां प्रवर्तमानानां निग्रहणं पञ्चेन्द्रियसंवरणं तदुपसंपन्नः, तदेव तैव प्रकारेण पञ्चविधमेव वाचनाप्रच्छन्नापरिवर्तनानुप्रेक्षाधर्मकथाभेदात्पञ्चप्रकारमपि, तत्र-वक्ति शिष्यस्तं प्रति गुरोः प्रयोजकभावो वाचना पाठनमित्यर्थः, गृहीतवाचनेनापि संशयाद्बुत्पत्तौ पुनः प्रष्टव्यमिति पूर्वाधीतस्य सूत्रादेः शङ्कितादौ प्रश्नः प्रच्छनेति, प्रच्छन्नाविशोधितस्य सूत्रस्य मा भूद्विस्मरणमिति परिवर्तना सूत्रस्य गुणनमित्यर्थः, सूत्रवदर्थेऽपि सम्भवति विस्मरणमतः सोऽपि परिभावनीय इत्यनुप्रेक्षणमनुप्रेक्षा-चिन्तनिकेत्यर्थः, एवमभ्यस्तश्रुतेन धर्मकथा विधेयेति धर्मस्य श्रुतरूपस्य कथा व्याख्या धर्मकथेति । एवं पञ्चविधं किमित्याह-सज्ज्ञायन्ति शोभनमा मर्यादयाऽध्ययनं श्रुतस्याधिकमनुसरणं स्वाध्यायस्तमुपसंपन्न इत्यादि पूर्ववदिति । तथा—

सज्ज्ञायन्ति शोभनमा मर्यादयाऽध्ययनं श्रुतस्याधिकमनुसरणं स्वाध्यायस्तमुपसंपन्न इत्यादि पूर्ववदिति । तथा—
सज्ज्ञायन्ति शोभनमा मर्यादयाऽध्ययनं श्रुतस्याधिकमनुसरणं स्वाध्यायस्तमुपसंपन्न इत्यादि पूर्ववदिति । तथा—
सज्ज्ञायन्ति शोभनमा मर्यादयाऽध्ययनं श्रुतस्याधिकमनुसरणं स्वाध्यायस्तमुपसंपन्न इत्यादि पूर्ववदिति । तथा—
सज्ज्ञायन्ति शोभनमा मर्यादयाऽध्ययनं श्रुतस्याधिकमनुसरणं स्वाध्यायस्तमुपसंपन्न इत्यादि पूर्ववदिति । तथा—

छज्जीवनिकायवहं ह्यपि य भासाउ अप्ससत्थाउ । परिवर्ज्जन्तो गुत्तो रक्खामि महव्वए पञ्च ॥ १२ ॥
पङ्जीवनिकायानां पृथ्वीकायाप्कायतेजःकायवायुकायवनस्पतिकायत्रसकायलक्षणपङ्जीविधप्राणिगणानां वधो विनाशः पङ्जीवनिकाय-वधस्तं, तथा पङ्गि च अलीकादिभेदात् पद् सङ्ख्याः अपि च, का इत्याह-भाष्यन्ते प्रोच्यन्ते इति भाषा वचनानीत्यर्थस्ताः किंवि-शिष्टा इत्याह-अग्रशस्ता गुरुकर्मबन्धहेतुत्वादसुन्दराः उक्तं च—
“नो कण्णइ निगंथयाण वा निगंथीण वा इमां छ अवयणाइ भासित्तए तंजहा-अलियवयणे, हीलियवयणे, खिसियवयणे, फरु-सवयणे, गारत्थियवयणे, विओसवियाहिगरणउदीरणवयणेति” न कल्पते न गुज्यते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा इमानि पद् अव-

यणादिति, नञ् कुतसार्थत्वात्कुतस्तानि वचनानि भासित्तएचि भाषितु, अलीकनचन प्रचलायसे कि दिवेत्यादिग्रन्थे न प्रचलायामीत्यादि भाषण, हीलितवचन साधूप गणिन् वाचकज्येष्ठार्येत्यादिजल्पन, स्थितितवचन जन्मकर्माद्युद्धाटन, परुषनचन दुष्टशैक्षेत्यादिप्रलपन, अगारन्ति अगार गेह तद्वृत्तयः. अगारस्थिता गृहिणस्तेषा यत्तदगारस्थितवचन पुत्र मामक भागिनेयेत्यादि, तथा व्यवशमितस्योपशम नीतस्याधिकरणस्य कलहस्योदीरणनचन प्रवर्त्तनमाक्य व्यवशमिताधिकरणोदीरणवचन पशुमिति, अत्र गाथा—“ गामियवोममियाइ अहिगरणाइ तु जे उदीरिति । ते पाया नायव्या तेसि चारोवणा इणमो चि ” शेष प्राग्वदिति, ॥ तथा—

छव्विहमडिभतरय वज्झ पि य उव्विह तवोकम्म । उवसपन्नो जुत्तो रम्हामि महव्वण पच ॥ १३ ॥

पद्मिध प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्याध्यायध्यानोत्सर्गभेदात्पद्मकार अडिभन्तरयन्ति लौकिकैरनमिलस्यत्वाच्चान्तरापरिचयैश्च परमार्थतोऽज्ञासेव्यमानत्वान्मोक्षप्राप्त्यन्तरङ्गत्वाचाभ्यन्तर तदेवाभ्यन्तरक तप कर्मेतियोगः, तत्रेह चित्त जीवो भण्यते, ततः प्रायो बाहुल्येन चित्त जीव विशोधयत्यतिचारजनितकर्ममलमलिन निर्मल करोतीति प्रायश्चित्त आलोचनादि दशविधमिति, विनीयतेऽष्टप्रकार कर्मानिनेति-विनयः, स च ज्ञानदर्शनचारिभनोवचनकायलोकोपचारविनयभेदात्सप्तधा, तत्र ज्ञानमाभिनिरोधकादि पञ्चधा तदेव विनयो ज्ञानस्य वा विनयो भक्त्यादिकरण ज्ञानविनयः । उक्त च—

“ भन्ती तह वहुमाणे २ तदिद्वत्थाण सम्म भावणया ३ । विहिगहण ४ ऋभासो वि य एसो विणओ जिणाभिहिणो ” ॥ दर्शन सम्यक्त्व तदेव विनयो दर्शनस्य वा तदव्यतिरेकादर्शनगुणाधिकाना शुश्रूषणाज्ञाशतनारूपो विनयो दर्शनविनयः उक्त च—

“ सुस्वसणा अणासायणा य विणओ उ दंसणे दुविहो । दंसणगुणाहिंएसुं कज्जइ सुस्वसणाविणओ । १ । सक्कारभ्भुट्ठाणे २ सम्माणासणपरिग्गहो ४, तहय । आसणमणुप्पयाणं ५, किइक्कम्मं ६, अज्जालिगहो य । ७ । २ । एतस्सणुगच्छणया । ८ । ठियस्स तह पज्जुवासणा भणिया । ९ । गच्छन्ताणुव्वयणं १० एसो सुस्वसणाविणओ । ३ । “ इह च सत्कारः स्तवनवन्दनादिः, अभ्युत्थानं विनयार्हस्य दर्शनादेवासनत्यजनं, सन्मानो वस्त्रपात्रादिपूजनम्, आसनाभिग्रहः पुनस्तिष्ठत आदरेणासनानयनपूर्वकमुपविशतोत्रेति भगनम्, आसनानुप्रदानं तु आसनस्य स्थानात् स्थानान्तरसंचारणं, कृतिकर्म द्वादशावर्चवन्दनकं शेषं प्रकटमिति । उचितक्रियाकरणरूपोऽयं दर्शने शुश्रूषाविनय इति । अनाशातनाविनयस्तु अनुचित क्रियाविनिवृत्तिरूपोऽयं पञ्चदशविधः आहच—

“ तित्थयर १, धम्म २, आयरिय ३, वायगे ४, शेर ५, कुल ६, गणे ७, सङ्के ८, । संभोगिय ९ किरियाए १० मइनाणाईण य तहेव य १५ ” सांभोगिका एकसामाचारीकाः, क्रिया आस्तिकता । अत्र भावना—तीर्थकराणामनाशातनायां वर्त्तितव्यमित्येवं सर्वद्रष्टव्यमिति । “ कायव्वा पुण भत्ती बहुमाणो तह य वन्नवाओ य अरहन्तमाइआणं केवलनाणावसाणाणं ” उक्तो दर्शनविनयः । सांप्रतं चारित्रविनय उच्यते तत्र—चारित्रमेव विनयः चारित्रस्य वा श्रद्धानादिरूपो विनयः, चारित्रविनयः । आहच—“ सामाइयाइचरणस्स सद्वहणं १ तहेव काएणं । संफासणं २ परूवणमह पुरओ सव्वसचाणं ३ ति ” मनोवचनकायविनयास्तु मनःप्रभृतीनां विनयार्हेषु कुशलप्रवृत्त्यदिरूपाः यदुक्तं—

“ मणवइकायविणओ आयरियाईण सव्वकालंपि । अकुसलाण निरोहो कुसलाण उदीरणं तह य ” लोकानामुपचारो व्यवहारस्तेन स एव वा विनयो लोकोपचारविनयः, स चाभ्यासवर्त्तित्वादिभेदात् सप्तधा, तत्राभ्यासवर्त्तित्वं प्रत्यासत्तिवर्त्तित्वं, श्रुताद्यार्थिना

हि आचार्यादिः समीपे आसितव्यमित्यर्थः । १ । तथा परच्छन्दोऽनुवर्तित्व परामिप्रायावनुन्नित्व । २ । तथा कार्यहेतोः, कार्यं श्रुतप्रापणादिक हेतु कृत्वा श्रुत प्रापितोऽहमनेनेति हेतोरित्यर्थः विशेषेण तस्य विनये वर्तितव्य तदनुष्ठान कर्तव्यमिति । ३ । तथा कृतप्रतिकृतिता, कृते भक्तादिनोपचारे प्रसन्ना गुरवः प्रतिकृतिं प्रत्युपकारघृत्नादिदानतः करिष्यन्ति न नाम निर्जरेवेति भक्तादिदाने यतितव्यमिति । ४ । तथा-आर्तगवेपणता, आर्तस्य दुःखार्तस्य गवेपणमौषधादेरित्यार्तगवेपण तदेवार्तगवेपणता पीडितस्योपकारकरणमित्यर्थः । ५ । तथा-देशकालज्ञता अवसरज्ञता । ६ । तथा सर्वार्थेष्वप्रतिलोमता आनुकूल्यमिति । ७ । २ । उक्तो विनयः, साम्प्रत वैयावृत्त्यमुच्यते, तत्र-व्यावृत्तभाजो वैयावृत्त्य धर्मसाधनार्थमन्त्रादिदानमित्यर्थः, । आह च—

“वैयावच वावडभावो इह धम्मसाहणनिमिच । अन्नाइयाण विहिणा सपायणेमेस भावत्यो ” तच्च दशधा—“आयरियउवज्जाए येरतवस्सीगिलाणसेहाण । साहम्मियकुलगणसहसङ्गय तमिह कायव्यन्ति ” तथा सुणु आ मर्यादयाऽध्यायोऽध्ययन, स्वाध्यायः, स च पञ्चधा, वाचना, प्रच्छन्ना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा चेति । तथा-ध्यातिर्ध्यानमेकाग्रचित्तनिरोधस्तच्चतुर्धा प्राग्व्याख्यात, तत्र धर्मशुक्ले एव तपसी निर्जरार्थत्वाच्चेतरे बन्धहेतुत्वादिति । तथा-उत्सर्गः परित्यागः, स च द्वेधा द्रव्यतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो गणशरीरोपध्याहारविषयः, भावतस्तु क्रोधादिविषय इति । उक्तमाभ्यन्तर तपः । वज्ज्वापि य छज्जिह तवोकम्ममिति, बाह्यमित्यासेच्यमानस्य लौकिकैरपि तपस्तया ज्ञायमानत्वात् प्रायो बहिः शरीरतापकत्वादिति बाह्यमपिचेतिसमुच्चये, पद्दिविधमनशनाऽवमौदरिकावृत्तिसक्षेपरसपरित्यागकायहेतुश्रुतिसलीनताभेदात् पट्टप्रकार, किं तदित्याह—

तपति दुनोति शरीरकर्माणीति तपस्तस्य कर्म क्रिया तपःकर्म तपोऽनुष्ठानमित्यर्थः, तत्रानशनभोजनमाहारत्याग इत्यर्थः,

तद्द्विधा, इत्वरं यावत् कथिकं च, तत्रैत्वरं चतुर्थादि षण्मासान्तमधिकृततीर्थमाश्रित्येति, यावत्कथिकं त्वाजन्मभावि त्रिधा पादपोष-
गमनोद्भूतमरणभक्तपरिज्ञाभेदात् तत्र पादपो वृक्षस्तस्येव च्छिन्नपतितस्योपगमनं, अत्यन्तनिश्चितयाज्वस्थानं यस्मिन् तत्पादपोषगमनं,
तथेक्षिते नियमिते देश इति गम्यते मरणं मरणप्रतिज्ञा यत्र तदिक्षितमरणं; तथा-भक्तं भोजनं तस्यैव न चेष्टादेरपि प्रत्याख्यानं व-
र्जनं यत्र तद्भक्तप्रत्याख्यानं, भवन्ति चात्र गाथाः-“सीहाइसु अभिभूओ पायवगमणं करेइ थिरचिचो । आउंमि पहुणंते वियाणि-
उंमि नवरि गीयत्थो” ॥ इदमस्य गुणेन्यर्थाभातवदुच्यते, निर्व्याधातं तु यत्क्षत्रार्थनिष्ठित उत्सर्गतो द्वादशसमाः कृतपरिकर्म्ममां सन्
काल एव करोतीति, तद्विधिश्चायं-

“चत्तारि विचिच्चाइं विगईनिज्जुहियाइ चत्तारि । संवच्छरे य दोन्नि उ एगन्तरियं च आयामं ॥ १ ॥ नाइविगिड्डो य तवो छ-
म्मासं परिमियं च आयामं । अन्ने वि य छम्मासे होइ विगिड्डं तवोक्कम्मं ॥ २ ॥ वासं कोडीसहिंयं आयामं काउ आणुपुब्बीए ।
संघयणादणुल्लं एत्तो अद्दाइ नियमेणं ॥ ३ ॥” यतः-“देहंमि असंलिहिए सहसा धाऊहि खिज्जमाणाहि । जायइ अङ्गं ज्ञाणं सरी-
रिणो चरिमकालंमि । ४ ।” किञ्च-

“भावमवि संलिहेई जिणप्पणीएण ज्ञाणजोगेण । भूयत्थभावणाहि य परिवट्ठइ वोहिमूलाइं ॥ १ ॥ भावेइ भावियप्पा विसेसओ नवर
तम्मि कालम्मि । पयईए निगुणत्तं संसारमहासमुदस्स ॥ २ ॥ जम्मजरा मरणजलो अणाइमं वसणसावयाइन्नो । जीवाण दुक्खहेऊ
क रोदो भवसमुदो ॥ ३ ॥ धन्नोहं जेण मए अणोरपारंमि नवरमेयंति । भवसयसहस्सदुल्लं लद्धं सद्दम्मजाणन्ति ॥ ४ ॥ एयस्स
पभावेणं पालिज्जतस्स सह पयत्तेणं । जम्मन्तरेवि जीवा पावन्ति न दुक्खदोगच्चं ॥ ५ ॥ चिन्तामणि अउब्बो एयमपुब्बो व कप्प-

रुस्तोति । एष परमो मन्तो एष परमामय एत्य ॥ ६ ॥ एत्य वेयावडिय गुरुमाईणं । महाणुभावाण जेसि पभावेणैय पव तह पालि
य चेव ॥ ७ ॥ तेमि नमो तेसि नमो भावेण पुणोवि तेसि चेव नमो । अणुवक्यपरहियरया जे एय दिन्ति जीवाण ॥ ८ ॥ सलिहिऊ-
णप्पाण एय पच्चिप्पणितु फलगाई । गुरुमाईण य सम्म खमाविउ भावसुद्धीए ॥ ९ ॥ उववूहिऊण सेसे पडिनेद्वे तमि तह निसेसेण ।
धम्मो उज्जमियव्वं सजोगा हि वियोगता ॥ १० ॥ अह वन्दिऊण देवे जहाविहिं सेसए य गुरुमाई । पच्चारआईनु तओ तयन्तिण
सव्वमाहार ॥ ११ ॥ समभावम्मि ठियप्पा सम्म सिद्धन्तर्माणियमगेण । गिरिऊन्दरमि गन्तु पायवगमण अह करेइ ॥ १३ ॥ स-
व्वत्थापडिउद्धो दण्डाययमाइ ठाणमिह ठाउ । जावज्जीन चिट्ठइ निचिट्ठो पायवसमाणो ॥ १४ ॥ पढमिल्लुयसद्धयणे महाणुभावा
रुरेन्ति एवमिण । पाय सुहभावचिय निचलपयकारण परम ॥ १५ ॥ ” तथा—

“इगियदेसमि सय चउव्विहाहारचायनिप्पन्न । उव्वत्तणाइजुत्त ननेण उ इंगिणीमरण ” तथा—“भत्तपरिण्णसण तिचउ-
व्विहाहारचायनिप्पन्न । सपडिकम्म नियमा जहासमाही विणिद्धिद्वन्ति ” तथा—अवममूनसुदर जठरमवमोदर तस्य करण करोत्यर्थः—
“णिज्ज वडुल नान्न. कृगादिपु” ३-४-४२ इति णिजि चावमोदरिका सा च द्रव्यत उपकरणभक्त्यानविषया प्रतीता, भावतस्तु क्रो-
धादित्याग इति । तथा वृत्तेर्भिक्षाचर्यारूपायाः सक्षेपो अभिग्रहविशेषात् सकोचन वृत्तिसक्षेपः, मिक्षाचर्यया चाभिग्रहा द्रव्यादिविष-
यतया चतुर्विधा; तत्र द्रव्यतोऽप्येकतादेव द्रव्य ग्रहीष्ये, क्षेत्रतः परग्रामगृहपञ्चक्रादिलब्ध, कालतः पूर्वोक्तादौ, भावतो गानादि-
प्रवृत्तात् लब्धमिति । तथा—रसाः क्षीरादयस्तत्परित्यागः रसपरित्यागः । तथा—कायक्लेशः शरीरक्लेशन स च शिरोलोचवीरासनानादि-
रनेकधा । तथा—प्रतिसलीनता गुप्तता, सा चेन्द्रियकपाययोगविषया विविक्तशयनासनता चेति उक्त बाह्य तपः । उवसम्पन्नो इत्या

दि पूर्ववदिति, तथा—

सत्त भयट्टाणाहं सत्तविहं चैव नाणविब्भंगं । परिवज्जन्तो गुत्तो रक्खामि महव्वए पञ्च ॥ १४ ॥

सप्तहलोकादिभयभेदात् सप्तसंख्यानि, भयं मोहनीयप्रकृतिसमुत्थ आत्मपरिणामस्तस्य स्थानान्याश्रया भयस्थानानि । तत्र-मनुष्यादिकस्य सजातीयादन्यस्मात् मनुष्यादेरेव शकाशाद्यद्भ्यं तदिहलोकभयम् इहाधिकृतभीतिमतो जातौ लोक इहलोकस्ततो भयमिति व्युत्पन्नोः ॥१॥ तथा-विजातीयात्चिर्यदेवादेः सकाशान्मनुष्यादीनां यद्भ्यं तत्परलोकभयम् ॥२॥ तथा-आदीयत इत्यादानं धनं तदर्थं चौरादिभ्यो-यद्भ्यं तदादानभयम् ॥ ३ ॥ तथा-अकस्मादेवा बाह्यनिमिचानपेक्षं गृहादिष्वेव स्थितस्य रात्र्यादौ भयमकस्माद्भयम् ॥४ ॥ तथा-वेदना पीडा तद्भ्यं वेदनाभयम् ॥ ५ ॥ तथा-मरणाद्भयम् प्रतीतमेव ॥ ६ ॥ तथा-अश्लोकभयमकीर्त्तिभयमिति ॥ ७ ॥ तथा-सप्तविधमेव सप्तप्रकारमेव नाणविब्भंगान्ति पूर्वापरनिपातनाद्भिभङ्गज्ञानं, तत्र विरुद्धो वितथो वा, अयथावस्तु विकल्पो यास्मिस्तद्विभङ्गं तच्च तज्ज्ञानं च साकारत्वादिति विभङ्गज्ञानं मिथ्यात्वसहितावधिरित्यर्थः; । तच्चैवं सप्तविधं—

एकदिशि लोकाभिगमः, एकस्यां दिशि एकया दिशा पूर्वादिकयेत्यर्थः, लोकाभिगमो लोकावबोध इत्येकं विभङ्गज्ञानं, विभङ्गता चास्य शेषदिक्षु लोकस्यानभिगमेन तत्प्रतिषेधनादिति ॥ १ ॥ तथा—पञ्चसु दिक्षु लोकाभिगमो नैकस्यां कस्यां चिदिति, इहापि विभङ्गता एकदिशि लोकनिषेधादिति ॥ २ ॥ तथा-क्रियावरणो जीवः, क्रियामात्रस्यैव प्राणातिपातादेर्जीवैः क्रियमाणस्य दर्शना-चोद्धेतुकर्मणश्चादर्शनात्क्रियैवावरणं कर्म यस्य स क्रियावरणः, कोऽसौ?, जीव इत्यवष्टम्भपरं यद्विभङ्गं तत्तृतीयम् । विभङ्गता चास्य कर्मणोऽदर्शनेनानभ्युपगमादेवमुत्तरत्रापि विभङ्गता समवसेयेति ॥ ३ ॥ मुदत्रे(ग्ने) जीवे, शरीरावगाहक्षेत्रवाह्याभ्यन्तरपुद्गलरचित-

शरीरो जीव इत्यष्टमवत्, भवनपत्यादिदेवानां बाह्याभ्यन्तरपुद्गलपर्यादानतो वैक्रियकरणदर्शनादिति चतुर्थम् ॥ ४ ॥ अमुदग्ने (ग्ने) जीवे, देवानां बाह्याभ्यन्तरपुद्गलादाननिरद्वेण वैक्रिययतां दर्शनादबाह्याभ्यन्तरपुद्गलरचितावयवशरीरो जीव इत्यष्टमवत्पञ्चमम् ॥ ५ ॥ अरि जीवे, देवानां वैक्रियशरीराणां दर्शनाद् रूपेव जीव इत्यवयवष्टमवत् षष्ठमिति ॥ ६ ॥ सव्यमिण जीवा, यायुना नक्तम् पुद्गलमायस्य दर्शनाद् मयमेदे वस्तु जीवा एव चलनधर्मोपेतत्वादिति एव नियमवत् सप्तममिति ॥ ७ ॥ परिवज्जन्तोचि वि भक्तानोपलभ्यार्थप्ररूपणां परिहरन्नित्यर्थं । गुचो इत्यादि पूर्ववदिति, तथा—

पिण्डेस्मणपाणेत्सण उग्गहस्मत्तिक्काया मत्तज्जगणा । उग्रसपन्नो जुत्तो रग्गामि मत्तज्जगणे पञ्च ॥ १५ ॥

पिण्ड. ममयमापया मक्त तस्येपणा ग्रहणप्रसाराः—पिण्डेपणास्ताश्चेता.—“ससद्धा १, मससद्धा २, उद्धड, ३, तद्द अप्पलेविपा चेन ४; । उग्गहिया ५, पग्गहिया ६, उज्जिज्जयधम्मा य सत्तमिया ॥ ७ ॥” तत्रासंसुष्टा हस्तमात्राभ्या चिन्तनीया—“अससहे हत्थे अससहे मत्ते अररडिएणि तुत्त भगइ” एव गृह्यतः प्रथमा भवति । गाथाया सुखमुखोच्चारणार्थोऽन्यथा पाठः ससुष्टापि ताभ्यामेव चिन्त्या “ससहे हत्थे समहे मत्ते खरडिएणि तुत्त भगइ” एव गृह्यतो द्वितीया, उद्धृता नाम स्थाल्यादौ स्वयोगेन भोजनजातमुद्धृतं ततो “अससहे हत्थेससहे मत्ते अससहे वा मत्ते ससहे हत्थे” एव गृह्यतस्त्वृतीया । अल्पेलेपा नाम अल्पशब्दोऽभाववाचकः निर्लेपं पृथुरादि गृह्यतश्चतुर्थी । अवगृहीता नाम भोजनकाले शरावादिपूषहतमेव भोजनजातं यत्ततो गृह्यतः—पञ्चमी । प्रगृहीता नाम भोजनवेलाया दातुमभ्युद्यतेन ररादिना प्रगृहीतं यद्भोजनजातं भोक्तु वा स्वहस्तादिना तद्गृह्यतः—षष्ठी । उज्जिज्जतध-

७ ॥ पानैषणा अप्येता
मर्मा नाम यत्परित्यागाहं भोजनजातमन्ये च द्विषदादयो नावकांक्षन्ति तत् अर्द्धत्यक्तं वा गृह्णतः—सप्तमीति ॥ ७ ॥ पानैषणा अप्येता
एवं नवरं चतुर्थ्या नानात्वं तात्र ह्यायामसौवीरकादि निर्लेपं विज्ञेयमिति । 'उगृह्णति'—सूचकत्वादवग्रहप्रतिमा । अवगृह्यत इत्यवग्रहो
वसतिः तत्प्रतिमा अभिग्रहा अवग्रहप्रतिमाः, तत्र पूर्वमेव विचिन्त्यैवंभूतः प्रतिश्रयो मया ग्राह्यो नान्यथाभूत इति तमेव याचित्वा
तद्गृह्णतः—प्रथमा १। तथा-यस्य शिक्षोरेवंभूतोऽभिग्रहो भवति, तद्यथा—अहं च खल्वेषां साधूनां कृते अवग्रहं ग्रहीष्यामि, अन्येषां
चावगृहे गृहीते सति वत्स्यामीति—द्वितीया २ । प्रथमा सामान्येन इयं तु गच्छान्तर्गतानां सांभोगिकानां चोद्युक्ताविहारिणां यतस्ते-
ऽन्योन्यार्थं याचन्त इति तृतीया, त्वियं अन्यार्थमवग्रहं याचिष्ये अन्यावगृहीते तु न स्थास्यामीति एषा त्वहालंदि (तु यथालन्दि)-
कानां यतस्ते सूत्रावशेषमाचार्यादभिकांक्षन्त आचार्यार्थं तं याचन्त इति ३ । चतुर्थी—पुनरहमन्येषां कृतेऽवग्रहं न याचिष्ये, अ-
न्यावगृहीते तु वत्स्यामीतीयं तु गच्छ एवाभ्युद्यतविहारिणां जिनकल्पाद्यर्थं परिकर्म कुर्वताम् ४ । पञ्चमी—तु अहमात्मकते
अवग्रहमवग्रहीष्यामि न चापरेषां द्वित्रिचतुःपञ्चनामिति । इयं तु जिनकल्पिकस्येति ५ । षष्ठी—पुनर्यदीयमवग्रहं ग्रहीष्यामि तदीय-
मेव चेत्कटादिसंस्कारकं ग्रहीष्यामि इतरथोत्कडुको वा उपविष्टो वा रजनीं गमिष्यामीत्येषापि जिनकल्पिकादेरिति ६ । सप्तमी—एवैव
पूर्वोक्ता नवरं यथास्तुतमेव शिलादिकं गृहीष्यामि नेतरदिति ॥ ७ ॥

सत्तिकयत्ति—सप्त सप्तैककाः अनुद्देशकतयैकसरत्वेनैकका अध्ययनविशेषा आचाराङ्गस्य द्वितीयश्रुतस्कन्धे द्वितीयचूडारूपास्ते च
समुदायतः सप्तेति कृत्वा सप्तैकका अभिधीयन्ते, तेषामेकोऽपि सप्तैकक इति व्यपदिश्यते तथैव नामत्वात्, एवं च ते सप्तेति, तत्र

१ सांभोगिकाऽसांभोगिकानाम् ० प्र० ।

प्रथमः-स्थानसैकिको, द्वितीयो-नैपिधिकीसैकिकः नैपेधिकी-स्वाध्यायभूमिः, तृतीयः-उच्चारग्रथवर्णविधिसैकिकः, चतुर्थः-शब्दसैकिकः, पञ्चमो-रूपसैकिकः, षष्ठः-परक्रियासैकिकः, सप्तमः-अन्योन्यक्रियासैकिक इति । तथा-‘महज्झयणचि’ सूत्रकृताङ्गस्य द्वितीयश्रुतस्कन्धे महान्ति, प्रथमश्रुतस्कन्धाध्ययनेभ्यः सकाशाद्ग्रथतो बृहत्स्यध्ययनानि तानि च-पुण्डरीक १, क्रियास्थान २, आहारपरिज्ञा ३, प्रत्याख्यानक्रिया ४, अनाचारश्रुत ५, आर्द्रकुमारीय ६, नालन्दीयञ्चेति ७ । ‘उवसंपन्नो जुत्तो’ इत्यादि सूत्र तु प्राग्वदिति, तथा—

अट्ट मयट्ठाणाइ अट्ट य कम्माइ तेसि बन्ध च । परिवज्जन्तो गुत्तो रक्खामि मरुव्वए पञ्च ॥ १६ ॥

अष्टौ जातिकुलवरूपतपैश्वर्यश्रुतलाभमेदादष्टसख्यानि मदस्थानानि मदमेदाः, तत्र मातृकी विप्रादिका वा जातिः, पैतृकमुग्रादिक वा कुल, शक्तिर्बल, शरीरसौन्दर्य-रूप, अनशनादि-तपः, सम्पदः-प्रभुत्व-ऐश्वर्यं, बहुशास्त्रज्ञता श्रुत, अभिलषितवस्तुप्राप्तिर्लभः । अत्र च दोषः—“ जाल्यादिमदोन्मच पिशाचबद्धवति दुःखितक्षेह । जाल्यादिहीनता परभवे च निःसङ्ग्य लभत ” ॥१॥ इति । अष्टौ च ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुक्कनाभोगोत्रान्तरायभूलप्रकृतिमेदादष्टसख्यानि कर्माणि, तेसि बन्ध चेति तेषामष्टविधकर्मणा बन्धोऽभिनवग्रहण त च तद्धेतुपरिहारतः समवसेय, परिवर्जयन्नित्यादि पूर्ववदिति । तथा—

अट्ट य पवयणमाया विट्ठा अट्टविहनिट्ठियेद्वेहिं । उवसपन्नो जुत्तो रक्खामि मरुव्वए पञ्च ॥ १७ ॥

अष्टौ चैर्यासिमित्यादिमेदादष्टसख्या एव, का इत्याह-प्रवचनस्य द्वादशाङ्गस्य मातर इव तत्प्रवृत्तिहेतुत्वान्मातरो जनन्यः प्रव-

चनमातरः, तत्र सम्यगितिः प्रवृत्तिः समितिरीयां गमने समित्यश्रुव्यापारपूर्वतेतीर्थासमितिः, यदाह-ईयांसमितिर्नाम रथशक-
टयानवाहनाक्रान्तेषु सूर्यराश्मिप्रतापितेषु, प्रासुकविविक्तेषु पथिषु युगमात्रदृष्टिना भूत्वा गमनागमनं कर्तव्यमिति, अत्रोदाहरणं—

एगो साहू समणगुणभाविओ इरियासमिईए जुत्तो विहरइ, एत्थन्तरे सक्कस्स आसणं चलियं, पउत्तावाही, साहुं दहुं परम-
भत्तीए वन्दइ णमंसइ य, देवसभामज्झगओ मिच्छदिट्ठी एगो देवो असइहन्तो समागओ साहुस्स विहारभूमिं पइ पइट्ठियस्स पुरओ
मच्छियप्पमाणाओ मण्डुकलियाओ विउव्वइ, पच्छओ य मउम्मत्तहत्थिं, तहावि गइं न भिन्दइ, तओ हत्थिणा उक्खिविज्जण भू-
मीए पाडिओ, न य सो भयवं नियसरीरं गणेइ, किन्तु सत्ता मे मारियव्वत्ति जीवदयापरिणओ अच्छइ, देवोवि अचलियसत्तं
साहुं पेहित्ता इन्दुवुत्तन्तं निवेइत्ता देवलोगं गओत्ति । तथा-भापायां भापणे समितिर्निर्वद्यभाषणतो भापासमितिः, आह च-“भाषा-
समितिर्नाम हितमितासंदिग्धभाषणम् ।” अत्राप्युदाहरणम्—

कोई साहू भिक्खुद्धा नगरे रोहए निगगन्तुं वाहिरकण्डए हिण्डंतो केणई पुट्ठो, जहा-“ केवइय आसहत्थी तह निचओ दारुधन्न-
माईणं । निविन्नानिन्ना नागरगा बेहि मं समिओ ॥ १ ॥ बेह न जाणामोची सज्झायज्झाणजोगवक्खित्ता । हिण्डन्ता नवि
पेच्छह नवि सुणह य किह णु तो बेइ ॥ २ ॥ वहुं सुणेइ कणोहिं वहुं अच्छिहि पेच्छई । नयदिट्ठं सुयं सब्वं भिक्खू अक्खा-
उमरिहई ” ॥ ३ ॥ तथा-एषणायासुदमादिदोषवर्जनतः समितिर्येणसासमितिः, उक्तं च-“एषणासमितिर्नाम गोचरगतेन मुनिना
सम्यगुपयुक्तेन नवक्रोटीपरिशुद्धं ग्राह्यमिति ” । अत्र-

वसुदेवपुञ्जम्भो आहरण एसणाए समिईए मगहागोन्वरगामे गोयमधिज्जाई चवयरो ॥ १ ॥ तस्स य धारिणि भज्जा
गन्भो तीए कयाइ आहूओ । धिज्जाइ भओ छम्मासगन्भधिज्जाइणी जाए ॥ २ ॥ माउलसवद्धणकम्मकरणवेयारणा य लोणेण ।
नत्थि तुह एत्थ किंचि तो वेई माउलो त च ॥ ३ ॥ मा सुण लोगस्स तुम धूयओ तिन्नि तेसि जेह्वयर । दाहामि करे कम्म पक्कओ
पत्तो य वीवाहो ॥ ४ ॥ सा नेच्छती विसओ माउलओ वेति वीय दाहामि । सावि य तेहव णिच्छइ तइयत्ती णिच्छई सावि ॥ ५ ॥
निच्चित्रनदिवद्धणआयरियाण सगासि निक्खन्तो । जाओ छट्ठक्खमओ गिण्हइ य अभिगहमिम तु ॥ ६ ॥ वालगिलाणादीण वेया-
वच्च मए उ कायव्व । त कुणइ तिब्बसद्धो खायजसो सक्कणकित्ती ॥ ७ ॥ असहहाणे देवस्स आगमो कुणइ दो समणरूवे ।
अइसारगहियमेगो अविठिओ अहूओ बीओ ॥ ८ ॥ वेइ गिलाणा पडिओ वेयावच्च तु संहहे जो उ । सो उट्ठेउ खिप्प सुय च त
नन्दिसेणेण ॥ ९ ॥ छट्ठोववासपारणगमाणिय कवलधेपुक्कामेण । त सुयमिच्च सहसुट्ठिओ य भण केण कज्जति ॥ १० ॥ पाणगदव्व व
ताहिं ज नत्थि तेण वेइ कज्ज तु । निगयहिण्डन्तो कुणयणेसण नवि य पेहेइ ॥ ११ ॥ इय एकवार विइय च हिण्डिउ लद्ध तइय
वरमि । अणुकपाए तुरन्तो तओ गओ तस्सगास तु ॥ १२ ॥ सरफरुसनिट्ठुरेहि य अक्कोसइ सो गिलाणओ रुद्धो । हे मन्दभग !
फुक्किय तूससि त नाममेचेण ॥ १३ ॥ साहुवगारित्ति अह नामत्थ (वहसीतिगम्यते) अह समुद्धिसिउमाउ (ओ) । एयावत्थाए अहं तं
अच्छसि भत्तलोदिल्लो ॥ १४ ॥ अभियमिव मन्नमाणो त फरुसगिर तु सो असभन्तो । चलणगओ खामेई धुयइ य त असुइमललिच
॥ १५ ॥ उट्ठेइ वयामोत्ती तह काहामी जहा उ अचिरेण । होहिह निरुया तुन्मे वेई न चएमि गन्तु जे ॥ १६ ॥ आरुह ता पट्ठीए
आरुद्धो ताहे तो पयार च । परमासुइदुग्गध सुयई पट्ठए फरुस च ॥ १७ ॥ वेइ गिर धिद्धि मुण्डिय वेगघियाओ कउत्ति दुक्खविओ

इय बहुविहमक्कोसई पए पए सोवि भगवं तु ॥ १८ ॥ न गणेइ फरुसगिरं न यावि तं तारिसं असुइगन्धं । चन्दणमिव मन्नन्तो
मिच्छामिह दुक्कडं भणइ ॥ १९ ॥ चिन्तेई कह करेमी किह हु समाही भवेज्ज साहुस्स । इय बहुविहप्पयारं नवि तिन्नो जाहे खोभेउं
॥ २० ॥ ताहे अभित्थुणन्तो गओ तओ आगओ य इयरो उ । आलोइए गुरूहिं धन्नोचि तओ अणुसिद्धो ॥ २१ ॥ जइ तेण एसणा
नो भिन्ना इय एसणाइ जइयव्वं । सव्वेण सया अदीणभावओ सुद्धजोएणन्ति ॥ २२ ॥ तथा-आदाने ग्रहणे भाण्डमात्राया उपकर-
णमात्राया भाण्डस्य वा वस्त्राद्युपकरणस्य मृन्मयादिपात्रस्य वा मात्रस्य च साधुभजनविशेषस्य निक्षेपणायां च समितिः, सुप्रत्युपेक्षि-
तसुप्रमार्जितक्रमेणेति:-आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमितिः;—अत्राप्युदाहरणम्—

एकस्स आयरियस्स पंच सीससयाइं, तेसिमेगो सिद्धिसुओ पव्वईओ; सो जो जो साहू एइ तस्स २ डण्डगं निक्खिखवइ, एवं तस्स
उड्डियस्स अन्नो एइ अन्नो जाइ तहावि सो भगवं अतुरियं अचवलं उवरिं हेडा पमज्जिउं ठवेइ, एवं बहुएणावि कालेण न परित-
म्मइ । तथा-उच्चारप्रस्रवणखेलसिद्धानजल्लानां पारिष्ठपनिकायां समितिः स्थण्डिलशुद्धयादिक्रमेण सम्यग्भूवृत्तिः उच्चारप्रस्रवणखेलसि-
द्धानजल्लपारिष्ठपनिकासमितिः, तत्रोच्चारः-पुरीपं, प्रस्रवणं-मूत्रं, खेलो-निष्टीवनं, सिद्धानो-नासिकाश्लेष्मा, जल्लो-मल इति; एत्थ-
इमं आहरणं—

एगेणं खुडुगेण दिवसन्ते किहवि न पेहिय थण्डिल, काइयालायतो राओ थण्डिलं न पेहियन्ति न वोसिरे, देवयाए उज्जोओ
अणुकंपाए य कओ, दिद्वा भूमिन्ति वोसिरियन्ति । तथा-मनसश्चिन्तस्य कुशलस्य प्रवर्त्तनेन अकुशलस्य निरोधनेन गोपनं गुप्तिर्भनोगुप्तिः

“ मणगुत्तीए तहिय जिणदासो सापओ उ सिद्धिसुओ । सो सव्वराइपडिम पडिवन्नो जाणसालाए ॥ १ ॥ भज्जुब्भामियप-
हद्ध घेनु सीलजुयमागया तत्थ । तस्सेव पायसुवरि मञ्चगापाय ठवेऊण ॥ २ ॥ अणयारमारन्ती पाओ विद्धो य मञ्चखीलैण ।
सो य महन्त वियण अहियासेई तहि सम्म ॥ ३ ॥ नय मणदुबडमुप्पन्न तस्स ज्ञाणम्मि निचलमइस्स दट्ठणवि य विलीय य म-
णगुत्ती करेयव्वा ॥ ४ ॥ तथा वाचोऽकुशलवचनस्य निरोधेन कुशलस्य चोदीरणेन गुप्तिर्वागुप्तिः ॥ ५ ॥ ”

“ वइगुत्तीए साहू सन्नायगपह्छगच्छए दट्ठु । चोरगहसेणावइविमोइओ भणइ मा साह ॥ १ ॥ चलिया य जन्नजत्ता सन्नायग
मिलिय अतरा चेव । मायपियमायमाई सोवि नियत्तो सम तेहि ॥ २ ॥ तेणेहिं गहियमुसिया दिट्ठे ते वेन्ति सो इमो साहू । अ-
म्हेहिं गहियमुक्को तो वेई अम्मया तस्स ॥ ३ ॥ तुम्हेहिं गहिय मुक्को जाम आपेहि वेइ तो छुरिय । ज छिन्दामि थणन्ती किं ति
सेणावई भणइ ॥ ४ ॥ दुज्जमजाय एसो दिट्ठा तुब्भे तहवि नवि सिद्ध । किह पुत्तोत्ति अह मम किह न चि सिद्ध तु धम्मकहा ॥ ५ ॥
आउट्ठो उवसन्तो मोक्का मज्जापि त सि माइत्ति । सव्व समप्पिय से वइगुत्ती एव कायव्वा ॥ ६ ॥ ” तथा कायस्य गोपनकायगुप्तिः
प्रयोजनभावे करणचरणाधवयसलीनता, प्रयोजनोत्पत्तां तु स्थानादिषु सम्यक्वृत्तिरित्यर्थः ॥

“ काइयगुत्ताहरण अट्ठाणपवन्नगे जहा साहू । आवासियम्मि सत्थे न लहइ तहि थण्डिल किञ्चि ॥ १ ॥ लद्ध चणेण कहवि
एगो पाओ जहिं पइट्ठाइ । तहिय टिएगपाओ सव्व राइ तहिं थ(घ)ट्ठो ॥ २ ॥ नय ठमिय किञ्चि जत्थडिलमि होयव्वमेव गुत्तेण ।
मुमहब्भए वि अहवा साहु न भिन्दे गइ एगो ॥ ३ ॥ सक्कपससा असइहाण देवागमो विउव्वइ य । मण्डुकलिया साहू जयणा सो
(ए) सद्धमे सणिय ॥ ४ ॥ हत्थी विउव्विओ जा आगच्छइ मग्गओ गुलुगुलित्तो । नय गइमेय गुणइ करिणा हत्थेण उच्छट्ठो ५ ॥

वेउ पडन्तो मिच्छामिदुकुहं जिय विराहियामोत्ति । नवि अप्पाणं चिन्तो देवो तुड्डो ममं सइयत्ति ॥ ५ ॥ एता अद्यापि प्रवचनमातरो दृष्टा उपलब्धाः कैरित्याह-अष्टविधा अष्टप्रकारा निष्ठिताः. क्षयं गता अर्थाः, प्रक्रमात् ज्ञानावरणादिपदार्था येषां ते तथा तैरष्टविधनिष्ठितार्थैर्जिनैरित्यर्थः । उवसंपन्नो जुत्तो इत्यादि पूर्ववदिति, तथा-

नव पावनियाणांइं संसारत्था य नवविहा जीवा । परिवज्जन्तो गुत्तो रक्खाभि महव्वए पञ्च ॥ १८ ॥

नव नवसंख्यानि, पापानि-पापनिवन्धनानि, निदानानि-भोगादिश्रार्थनालक्षणानि, पापनिदानानि-तानि परिवर्ज्जन्ति योः, तानि चामूनि लेशतः “ निगन्थो वा निगन्थी वा नियाणं करेइ जहा सक्खं न मेदेवा देवलोगा वा दिट्ठाता इमे चेव महिद्धिया रायाणो देवा, ता जइ इमस्स तव नियमवंभचेरस्स फलमित्थ ताहमिव आगमिस्साए राया भविता ओराले माणुस्से भोगे भुज्जमाणे विहरिज्जामि, तओ नियाणकडे देवलोगं गच्छेज्जा, तओ चुयस्स नियाणाणुरूवलद्धाणस्स तस्स कोइ समणाई धम्मंमाइक्खेज्जा, ! हन्ता आइक्खेज्जा, से धम्मं पडिवज्जेज्जा ! नो इणमडे समडे दुल्लभवोहिए भवइ ॥ १ ॥ केई धम्मं सोच्चा निक्खंन्ते अणगारे परीसह-पराइए चिन्तइ, राया बहुचिन्ते बहुवावारे भवइ, तो जे इ मे उग्गाइपुत्ता विभवसंपन्ना ते पासित्ता नियाणं करेइ, जइ मे इमस्स तव नियमवमभचेरवासस्स फलमित्थ, तो उग्गाइपुत्तो विभवसंपन्नो भविज्जा, तओ देवलोगपचायाओ उग्गाइकुले जाओ नि-याणाणुरूवे भोगे भुज्जमाणो विहरइ, सो धम्ममाइखिज्जमाणंपि नो पडिवज्जइ जाव दुल्लभवोहिए भवइ ॥ २ ॥ एवं निगन्थीवि, निगन्थो नियाणं करोति, पुमं बहुवावारे सज्जामाइसु दुक्करारी य, ता अलं मे पुरिसभावेण, अब्रजमेहं इत्थिथा भवेज्जा, एस वि

नियमाणुभूतो उप्यज्जइ, धम्म नो पडिवज्जइ दुहहवोहिण भवइ ३ ॥ निगन्थीवि उग्गादिपुत्त पासिचा नियण करेइ इत्थी ण असमत्था, ण्गाणिणी गामन्तराहसञ्चरणे सव्यपरिभूया वयणिजट्ठाण सव्यकाल पराहीणा य, अओह अन्नजम्मे उग्गाइपुत्तो भवेज्जा, तहेन भवइ, नो धम्म पडिवज्जइ दुह्मभनोहिण भवइ ४ ॥ निगन्थो निगन्थी वा दिन्तेइ, इमे माणुस्सगा कामभोगा मुत्तपुरीस-
यन्तपिप्पिमिमुत्ताइआसवा, जे पुण इमे देवा अन्न देव देविं वा अचाण वा देवदेवीस्स विउविचा परियारन्ति, एय साहु, तोहमवि तहाविहदेवो भवेज्जा, तहेव भवइ, तओ चुए पुमे जाए धम्ममादिरिज्जमाण सुणेइ, न पुण सदहइ ५ ॥ निगन्थो नि गन्थी वा नियण करेइ, असुसा माणुस्साण भोगा, जे पुण देवलोगेसु देव नो अन्न देव देविं वा परियारन्ति, किं तु अत्ताणमेव देवदेवीस्स रिउरिचा परियारन्ति ण्य साहु तोहमवि तेसु भवामि तहेन भवइ तओ चुयस्स कोह धम्ममाइक्खेज्जा सुणेज्जा नो सदहज्जा न-
वरमारन्नियइसमणो भविचा तहाविहविरइवज्जिओ परोपयायगत्योवएमपरायणो इत्थीयाममुन्निओ मओ समाणो असुरेसु कि-
च्चिसियणाए उवज्जेचा चुओ समाणो भुज्जो २ एलमूयचाए उवज्जइ दुह्मभनोहिण भवइ ६ ॥ निगन्थो निगन्थी वा नि-
व्विन्नदिव्वमणुययमभोगो नियण करेइ, जइ इम्मस्स धम्मस्स फलमत्थि तो जत्थ नोपरियारणा तत्थाह भवेज्जामि, तत्थेव भवइ,
तओ चुयस्स मणुणसु उवज्जस्स समणे धम्माइक्खेज्जा, त सुणेइ, सदहइ नो देसविरइपि पडिवज्जइ, दसणसावण अहिगयजीवा-
जीवे सुलभवोहिण भवइ ७ ॥ निगन्थो निगन्थी वा दिव्वमाणुस्सएसु भोगेसु निविन्नो धमस्साद्विओ चिन्तेइ, इमे उग्गाइपुत्ता
अणुव्ययगुणव्यपाइठिया साहवो पडिलाभेमाणा विहरन्ति, एय साहु, एव नियण करेचा देवेसु उवज्जिय उग्गादिपुत्तभावद्विओ
दुवालसविह अणारधम्म पडिवज्जइ नो अणगारधम्मन्ति ८ ॥ निगन्थो निगन्थी वा कामभोगनिविन्नो नियण करेइ, जइ मे तव-

नियमफलमस्ति ताहं दरिद्रकुले उववज्जामि, एवं मे अप्पा सुनीहरए भविस्सइ, एवं कयनियाणो देवेषु उववज्जिना दरिद्रकुलेववन्नो धम्मं सोच्चा जाव पव्वयइ नो सिज्झइ ॥ ९ ॥

“ एवं नच्चा अनियाणेण भवियव्वं ति ” तथा संसरन्ति कर्मवशवर्चिनः प्राणिनः परिभ्रमन्ति यस्मिन्निति संसारस्तत्र तिष्ठन्तीति संसारस्थाश्चः समुच्चये, नवविधाः पृथिव्यसेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदान्नवसंख्याः, क इत्याह—जीवाः प्राणिनस्तान् परिवर्जयन्नित्यादि पूर्ववादिति । चूर्णौ तु—“ नवविहदंसणवरणं नव य नियाणां नवविहा जीवा ” इत्यादिपाठव्याख्या दृश्यते, तत्र नवविधं नवभेदं, किं तदित्याह—

सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यग्रहणात्मको बोधो दर्शनं तस्यावरणस्वभावं कर्म दर्शनावरणं तन्नवविधं, तत्र निद्रापञ्चकं तावत् ‘द्रा कुत्सायां गतौ’ नियतं द्राति कुत्सितत्वमविस्पष्टत्वं गच्छति चैतन्यमनयेति निद्रा सुखप्रबोधा स्वापावस्था, नखच्छोटिका-मात्रेणापि यत्र प्रबोधो भवति, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि निद्रेति कार्येण व्यपदिश्यते, तथा निद्रातिशायिनी निद्रा निद्रानिद्रा शाकपार्थिवादित्वान्मध्यपदलोपी समासः, सा पुनर्दुःखप्रबोधा स्वापावस्था तस्यां ह्यस्फुटतरीभूतचैतन्यत्वाद्दुःखेन बहुभिर्बोलनादिभिः प्रबोधो भवत्यतः सुखप्रबोधनिद्रापेक्षयाऽस्या अतिशायिनीत्वं, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि कार्यद्वारेण निद्रानिद्रेत्युच्यते । उपविष्ट ऊर्ध्वस्थितौ वा प्रचलत्यस्यां स्वापावस्थायामिति प्रचला, सा युपविष्टस्योर्ध्वस्थितस्य वा घूर्णमानस्य खप्तुर्भवति, तथाविधविपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि प्रचलेति, तथैव प्रचलातिशायिनी प्रचला प्रचलाप्रचला, सा हि चंक्रमणादि कुर्वतः स्वप्तुर्भवत्यतः स्थान-स्थितस्वप्तुभवां प्रचलामपेक्षयातिशायिनी, तद्विपाका कर्मप्रकृतिरपि प्रचलाप्रचला । रत्याना बहुत्वेन संघातमापन्ना शृद्धिरभिकांक्षा

जाग्रदवस्थाध्यवसितार्थसाधन विषयो यस्या स्वाभावस्थाया सा स्थानगृद्धिः, तस्या हि सत्या जाग्रदवस्थाध्यवसितमर्थप्रुत्थाय सा-
ध्यति, स्थाना वा पिण्डीभूता क्रद्धिरात्मशक्तिरूपाऽस्यामिति स्थानार्द्धिरित्युच्यते, तद्भावे ही प्रथममहनिनिः स्वप्नुः केशवाद्भ-
वलसदृशीशक्तिर्भवति, अथवा-स्थाना जडीभूता चैतन्यार्द्धिरस्यामिति स्थानार्द्धिरिति तादृशविषयाक्रेवया कर्मप्रकृतिरपि स्थानार्द्धिः,
स्थानगृद्धिरिति या । तदेव निद्रापञ्चरु दर्शनावरणभयोपशमाह्वयात्मलाभाना दर्शनलब्धीनामाशारकं दर्शितम् । साप्रत यद्दर्शन-
लब्धीना मूलत एव लाभमावृणोति तदिदं दर्शनावरणचतुष्कृमाख्यायते-चक्षुषा दर्शन सामान्यग्राही बोधः चक्षुर्दर्शनं तस्यावरण
चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुषा चक्षुर्वेर्जेन्द्रियचतुष्टयेन मनसा वा यद्दर्शनं तदचक्षुर्दर्शनं तस्यावरणमचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिना रूपिद्रव्यम-
यदि याज्यवधिरेव वा कारणनिरपेक्षबोधरूपो दर्शनं सामान्यार्थग्रहणमवधिदर्शनं तस्यावरणमवधिदर्शनावरण, केवलं च तद्दर्शनं च
केवलदर्शनं तस्यावरण केवलदर्शनावरणमित्येव नवविध दर्शनानरणमिति, शेष पूर्ववदिति । तथा—

नववम्भचेरगुत्तो दुनवविहं वम्भचेरपरिरुद्ध । उवसपन्नो जुत्तो रक्खामि महब्बए पञ्च ॥ १९ ॥

नववम्भचेरति सूचकत्वान्नववम्भचर्यगुप्तिभिस्तत्र ब्रह्मचर्यस्य मैथुनत्रतस्य गुप्तयो रक्षाप्रकाराः ब्रह्मचर्यगुप्तयो नर च ता ब्रह्मच
र्यगुप्तयश्च नवब्रह्मचर्यगुप्तयस्ताभिर्गुप्तं सुसद्वृत्तस्सन्निति ताश्चैताः—“ वसद्विक्रहनिस्सिज्जिन्दियकुडुन्तरपुव्वकीलियपणीए । अइमायाहार-
विभूतणा य नव वम्भगुत्तीओ” । ब्रह्मचारिणा तद्गुप्त्यनुपालनपरेण न स्त्रीपशुपण्डकसक्तता वसतिरासेवनीया, तत्सेवनेतद्वाधासम्भ-
वात् आह च—“ नहा निरालानसहस्स मूले न भूसगण वसही पसत्था । एमेव इत्थीनिलयस्स मज्जे नववम्भयारिस्स खमो निवासो ॥ १॥

बंभवयस्स अगुत्ती लज्जानासो य पीइयुद्धी य । साहु तवो वणवासो निवारणं तित्थहाणी य २ ॥ चङ्कमियं मोद्धियं च विप्पिविखयं च सविलासं । सिङ्गारे य चहुविहे दंढं भुत्तेयरे दोसा ३ ॥ गीयाणि य पडियाणि य हसियाणि य मंजुले य उल्लावे । भूसणसहे राहस्सिए य सोऊण जे दोसा ॥ ४ ॥ पसुण्डगेसुवि इहं मोहानलदीवियाणं जं होइ । पायमसुहा पवित्ती पुव्वभववभासओ तहय ॥ ५ ॥

तथा—कहत्ति न स्त्रीणां केवलानामेकाकिनीनां धर्मदेशनादिलक्षणवाक्यप्रबन्धरूपा कथा कथनीया, अथवा जातिकूलरूपनेपथ्यलक्षणा स्त्रीकथा न कथनीया, तत्र ब्राह्मणीप्रभृतीनामन्यतमायाः प्रशंसा निन्दा वा या सा जातिकथा, यथा—“धिग्ब्राह्मणीर्धवाभावे या जीवन्ति मृता इव । धन्या मन्ये जने शूद्रीः पतिलक्षेप्यनिन्दिताः” ॥१॥ इति । एवं चोग्रादिकुलोत्पन्नानामन्यतमाया यत्प्रशंसादि सा कुलकथा—यथा “अहो चौलुप्पयपुत्रीणां साहसं जगतोऽधिकम् । पत्तुर्मृत्यौ विशन्त्यग्नौ, याः प्रेमरहिता अपीति” ॥१॥ तथान्ध्रीप्रभृतीनामन्यतमाया रूपस्य यत् प्रशंसादि सा रूपकथा यथा—“चन्द्रवक्त्रा सरोजाक्षी सद्मीः पीनघनस्तनी । किं लटीनो मता सास्य देवानामपि दुर्लभेति” ॥१॥ तासामेवान्यतमायाः कच्छवन्धादिनेपथ्यस्य यत्प्रशंसादि सा नेपथ्यकथा यथा—“धिग्नारीरौदीच्या बहुवसनाच्छादिताङ्गलतिकत्वात् । यद्यौवनं न यूनां चक्षुर्भोदाय भवति संदेति” ॥१॥ स्त्रीकथायां चैते दोषाः—“आयपरमोहुदीरणउद्धाहो सुत्तमाइपरिहाणी । बंभवए य अगुत्ती पसङ्गदोसो य गमणाई ” । तथा—निसिज्जत्ति निपद्या, कोऽर्थः? स्त्रीभिः सहैकासने नोपविशेदुत्थितासु मुहूर्त्तं नोपविशेत्तदुपयुक्तासनस्य चित्तविकारहेतुत्वाद्यदाह—“इत्थीए मलियसयणासणम्मि तप्फासदोसओ जइणो । दूसेइ मणं मयणो कुट्टं जह फासदोसेणं” । तथा—इन्द्रियाणि स्त्रीसक्तनयनासिकादीनि मनोहराणि नावलोकयेत्, तद्दर्शनस्य मोहोदयेहेतुत्वात् यदाह—“चित्रेऽपि लिखिता नारी मनो मोहयते नृणाम् । किं पुनस्ताः स्मितस्मेरविभ्रमभ्रमितेक्षणाः” तस्मात्—“चित्तभित्तिं

न निज्ज्ञाए नारि वा मुअलकिय । भक्तरपि व ददूण दिट्ठि पडिसमाहरे” तथा-“वेज्जा मोहयर जुनईण दसणाइ सुवियार । एए खु मयणणा चरित्तपाणे विणासेति ” तथा-कुडिन्तरत्ति न स्त्रीणा कुड्यान्तरिताना मोहनसत्ताना, कणितादिध्वनिराकर्णयितव्यो मोहसभयादेव । तथा-‘पुव्वकीलियत्ति’ न पूरं गृहस्थान्मथाया क्रीडितं स्त्रीसभोगानुभवनलक्षण द्यूतादिरमणलक्षण वानुस्मरेन्मोहोत्था पननिमित्तत्वादिति । तथा-‘पणीयत्ति’ प्रणीत सरस स्निग्धमित्यर्थः, भक्त न भुञ्जीत धातुद्रेकहेतुत्वात् यदाह—

“ विगई परिणइधम्मो मोहो जमुदिज्जाए उदिने य । सट्ठवि चिचजयपरो कह अकज्जे न चट्ठिहिदी ॥ १ ॥ दावानलमज्झ-
गओ फो तदुचसमट्ठयाए जलमाई । सन्तेवि न गिण्हिजा मोहानलदीवि एसुवमा ॥ २ ॥ ” किं च-“रसा पगाम न निसेवियव्वा-
पाय रसा दित्तिरूरा नराण । दित्त च कामा समभिद्वन्ति दुम जहा सादुफल च पत्ती ॥ ३ ॥ जहा दवगी पडरिन्धणे वणे स-
मारुओ नोवसम उवेइ । एविदियगी वि पगामभोइणो न वभयारिस्स हियाय कस्सई ॥ ४ ॥ ” तथा-‘जइमायाहारचि’ अतिमा-
त्रस्य “अब्ब असणस्स सव्वजणस्स कुज्जा दवस्स दो भाए । वाउपवियारणट्ठा छब्भाय उणय कुज्जत्ति” ॥१॥ एवविधप्रमाणान्तिक्का-
न्तस्याहारस्य पानभोजनादेरभ्यवहर्त्ता सर्वदा न भवेत् तद्भोजने उक्तदोषप्रसङ्गादिति । तथा-‘विभूषणा यत्ति’ विभूषणा शरीरोपकरण-
णराढा सापि स्वपरचित्राविकारकान्मणत्वान्न कार्येति न न तद्वचर्यगुप्तय इति ॥ तथा—

‘द्रुनवन्निह वमचेरपरिसुद्धति’ द्विनवविध जयादशप्रकारमित्यर्थो, ब्रह्मचर्यं मैथुनविरतिं, परिशुद्धं निर्दोषं, तच्चौदारिकैः क्रियमै-
थुनस्य मनोवाक्यैः करणकारणानुमतिमर्जनाज्जायते इयमत्र भावना-इह मूलभेदतो द्विधाऽत्रल भवति, औदारिक तिर्यक्चानुप्याणा

दिव्यं च भवनवासादीनां, तत्रौदारिकं स्वयं न करोति मनसा वाचा कायेन च । १ । नान्येन कारयति मनःप्रभृतिभिः । २ । कुर्वन्त-
मन्यं नानुमोदते मनःप्रभृतिभिरेव । ३ । एवं वैक्रियमपीति । चूर्णौ तु द्वि (दु)गुणं अद्वारसविहं विवज्जंतोचि पाठो व्याख्यातः, अ-
यमप्युक्तानुसारतो भावनीयो, नवरं द्विगुणत्वं प्रकृतनवकस्य व्याख्येयमिति । तथा—

उवघायं च दसविहं असंवरं तह य संकिलेसं च । परिवज्जन्तो गुत्तो रक्खामि महन्वाए पञ्च ॥ २० ॥

उपहननमुपघातस्तं च दशविधमुद्रमोपघातादिभेदादशप्रकारं वर्जयन् तत्र यदुद्रमेनाथाकस्मर्मादिना षोडशविधिनोपहननं विरा-
धनं चारित्रस्य तत्साधकभक्तदेर्वा अल्पता स उद्रमोपघातः । १ । एवमुत्पादनया धात्र्यादिदोषलक्षणया उपघातः स उत्पादनोपघा-
तः । २ । एषणया—शङ्कितादिभेदया य उपघातः स एषणोपघातः । ३ । परिकर्म वस्त्रपात्रादेः समारचनं तेनोपघातः स्वाध्यायस्य श्र-
मादिना शरीरस्य संयमस्य वा परिकर्मोपघातः । ४ । परिहरणा अलाक्षणिकस्याकल्प्यस्य चोपकरणस्य परिभोगः तथा य उपघातः स
परिहरणोपघातः । ५ । तथा—ज्ञानोपघातः श्रुतज्ञानापेक्षया प्रमादतोऽकालस्वाध्यायादिभिः । ६ । दर्शनोपघातः—शङ्कादिभिः । ७ । चा-
रित्रोपघातः समितिभङ्गादिभिः । ८ । अचियत्तमप्रीतिकं तेनोपघातो विनयादेरचयित्तोपघातः । ९ । संरक्षणेन—शरीरादिविगयमूर्छयो-
पघातः परिग्रहविरतेरिति संरक्षणोपघातः । १० । तथा—असंवरं तह यचि संवरणं संवरः न संवरोऽसंवरः तं, तथैव दशविधं, स चायं—
श्रोत्रेन्द्रियस्येष्टानिष्टविषयेषु रागद्वेषाभ्यां प्रवर्तमानस्यासंवरणं श्रोत्रेन्द्रियासंवरः एवं चक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनेन्द्रियासंवराः अपि वाच्याः,

१ कल्पता प्र० ।

मनसोऽकुशलस्यासवरोऽनिग्रहो मनोऽसवर एव वागसवरः कायासवरश्च ८ । तथा-उपकरणस्याप्रतिनियताकल्पनीयवस्त्रादेरसवरो ग्रहणमुपकरणासवरः । अथगा-विप्रकीर्णस्य वस्त्राद्युपकरणस्यासवरणमुपकरणासवरः, अथचोधिकोपकरणापेक्षः ९ । तथा-सूच्याः कुशाग्राणां शरीरोपधातकारिणा यदसवरणमसङ्कोपनं स सूचीकुशाग्रासवरः, एषः तूपलक्षणत्वात्समस्तौपग्रहिकोपकरणापेक्षो द्रष्टव्य इति । 'सङ्किलेस च त्ति' सङ्केशोऽसमाधिः तच्च दशविधं परिवर्जयन्नित्यादि पूर्ववत्स चायं उपधीयते उपष्टभ्यते-सयमः सयमप्रधानं शरीरं वा येन स उपधिवर्त्तनादित्तिद्विपयः सङ्केश उपधिसङ्केशः १ । तथोपाथयो वसतिस्तद्विपयः सङ्केशो मनोज्ञामनोज्ञादिद्वारेणासमाधानमुपाश्रयः सङ्केशः २ । तथा-कपाया एव कपयैर्वा सङ्केशः कपायसङ्केशः ३ । तथा-भक्तपानाश्रितः सङ्केशो भक्तपानसङ्केशः ४ । तथा-मनसो मनसि वा सङ्केशो मनःसङ्केशः ५ । तथा-वाचा सङ्केशो वाक्सङ्केशः ६ । तथा-कायमाश्रित्य सङ्केशः कायसङ्केशः ७ । तथा-ज्ञानस्य सङ्केशोऽविशुद्धयमानता ज्ञानसङ्केशः ८ । एव दर्शनसङ्केशः ९ । चारित्रसङ्केशश्चेति १० । २० ॥ तथा-

सचसमाहिट्टाणां दस चैव दसाओ समणधम्मं च । उवसपन्नो जुत्तो रक्खामि महब्बणं पञ्च ॥ २१ ॥

सन्तः प्राणिनः पदार्थां मुनयो वा तेभ्यो हितं सत्यं तद्दशविधं तद्यथा-“जणवयं १, समयं २, ठवणा ३, नामे ४, रूत्वे ५, पडुच्चसच्चै-य ६’ । व्यवहार ७, भाव ८, जोगे ९, दसमे ओवम्म १० सच्चैय ” ॥ २१ ॥ ‘जणवयं’ सत्यशब्दः प्रत्येकमभिसम्बन्धीयः, ततश्च जनपदेषु देशेषु यद्यर्थवाचकतया रूढं देशान्तरेपि तत्तदर्थवाचकतया प्रयुज्यमानं सत्यमवितथमिति जनपदसत्यं, यथा कौटुणादिषु पयः पिच्च नीरमुदकमित्यादि, सत्यत्वं चास्यादुष्टविश्वेक्षाहेतुत्वाच्चानाजनपदेऽप्यिष्टार्थप्रतिपत्तिजनकत्वेन व्यवहारप्रवृत्त्यङ्गत्वाच्चेत्येव शेषेऽपि

भावना कार्येति । 'संमयत्ति'—संसर्गं च तत्सत्यं चेति संमतसत्यं, तथाहि—

कुमुदकुवलयकमलारविन्दादीनां समाने पङ्क्तसंभवे गोपालादीनामपि संमतमरविन्दमेव पङ्क्तजमिति, तत्र-कुमुदं-चन्द्रविक्राशि, कुवलयं-नीलोत्पलं, कमलं रविकरविक्रासि, अरविन्दं स्थलपद्ममिति; अतस्तत्र संमततया पङ्क्तजशब्दः सत्यः कुवलायादावसत्योऽसंमत-त्वादिति । 'उवणत्ति'—स्थाप्यत इति स्थापना, यल्लेप्यादिकर्महृदादिविकल्पेन स्थाप्यते तद्विषये सत्यं स्थापनासत्यं; यथाऽजिनोपि जि-नोऽयं अनाचार्योप्याचार्योऽयमिति । 'नामेत्ति'—नामाभिधानं तत्सत्यं नामसत्यं, यथा-कुलमवर्द्धयन्नपि कुलवर्द्धन उच्यते, एवं धनव-र्द्धन इति । 'रूवेत्ति'—रूपापेक्षया सत्यं रूपसत्यं यथा प्रपञ्चयतिः प्रव्रजितरूपं धारयन् प्रव्रजित उच्यते न चासत्यताऽस्येति । 'पडु-च्चसच्चे यत्ति'—प्रतीत्याश्रित्य वस्तुन्तरं सत्यंप्रतीत्यसत्यं यथानामिकाया दीर्घत्वं ह्रस्वत्वं चेति, तथाहि तस्यानन्तपरिणामस्य द्र-व्यस्य तत्तत्सहकारिकारणसंनिधाने तत्तद्रूपमभिव्यज्यत इति सत्यता । 'ववहारेत्ति'—व्यवहारेण सत्यं व्यवहारसत्यं, यथा-दहते गिरिर्गलति भाजनं, अयं च गिरिगतवृणादिदाहे व्यवहारः प्रवर्तते, उदके च गलति सतीति । 'भावत्ति'—भावं भूयिष्ठशुक्लादिपर्याय-माश्रित्य सत्यं भावसत्यं, यथा-शुक्ला बलाकेति सत्यमपि हि पञ्चवर्णसम्भवे शुक्लवर्णोत्कटत्वात् शुक्लेति । 'योगत्ति'—योगतः सम्ब-धतः सत्यं, यथा-दण्डयोगादण्डः, छत्रयोगच्छत्र एवोच्यते । 'दशममौपम्य सत्यमिति' उपमेवौपम्यं तेन सत्यमौपम्यसत्यं यथा-समुद्र-वत्तडागः देवोऽयं, सिंहस्त्वमिति । सर्वत्रैकारः प्रथमैकवचनार्थो द्रष्टव्यः इहेति 'समाहिठाणत्ति'—समाधे रागादिरहितचित्तस्य स्थानान्याश्रयाः समाधिस्थानानि, तान्यपि दश तद्यथा—'नो इत्थीपसुपण्डगंसंचाण्डं सयणासणाण्डं सेविता भवइ' नो नैव स्त्रियो देवीनारीतिररूच्योऽन्नासमाधिदोषः प्रतीत एव, पशवो गवादयस्तत्सत्त्वो हि तत्कृतविकारदर्शनाच्चिचिकारः संभाव्यत इति ।

पण्डकाश्च नपुंसकानि तत्सप्तकौ स्त्रीसप्तकौ दोषः प्रतीत एव, एतैः संसक्तानि समाकीर्णानि स्त्रीपशुपण्डकसप्तकानि शयनास-
नानि सत्तारकपीठकादीनि उपलक्षणतया स्थानादीनि च सेविता तेषां सेवको भवति साधुरित्येक १ । तथा - 'नो-इत्थीण कंहं कहेत्ता
भवति' नो स्त्रीणां केवलानामिति गम्यते, कथा धर्मदेशनादिलक्षणवाक्यप्रबन्धरूपा तन्नेपथ्यादिवर्णनरूपा वा कथयिता तत्कथको
भवति साधुरिति द्वितीय २ । 'नो पणीयरसभोई भवई' नो गलत्स्नेहविन्दुभोक्ता भवति मुनिरिति तृतीय ३ । 'नो पाणभोयणस्स
अइमाय आहारिचा भवई' नो पानभोजनस्य रूक्षस्याप्यतिमात्र 'अद्रमसणस्से'त्यादिप्रमाणातिक्रान्तमाहारकोऽभ्यवहर्त्ता भवति
साधुस्वाद्ययोरुत्सर्गतो यतीनामयोग्यत्वात्पानभोजनयोर्यग्रहणमिति चतुर्थ ४ । 'नोपुब्बरयपुब्बकीलियाइ सरिचा भवति' नो पूर्वत
नो गृहस्थावस्थायां स्त्रीसभोगानुभवन तथा पूर्वक्रीडित तथैव द्यूतादिरमणलक्षण सत्तां चिन्तयिता भवतीति पञ्चममिति ५ । 'नो
इत्थीठाणां सेविचा भवई' नो स्त्रीणां तिष्ठन्ति येषु तानि स्थानानि निषद्याः स्त्रीस्थानानि तानि सेविता भवति कोऽर्थः १, स्त्रीभिः सह-
कासने नोपविशेदुत्थितास्वपि हि तासु सुहृत् नोपविशेदिति षष्ठम् ६ । 'नो इत्थीण इन्दियाइ मणुन्नाइ मणोरमाइ आलोइय २
निज्जाइचा भवई' नो स्त्रीणामिन्द्रियाणि नयननासिकादीनि मनो हरन्ति दृष्टमात्राण्याक्षिपन्तीति मनोहराणि तथा-मनो रम-
यन्ति दर्शनानन्तरमनुचिन्त्यमानान्याह्लादयन्तीति मनोरमाण्यालोकाव्यय निध्याता दर्शनानन्तमतिशयेन चिन्तयिता यथाहो!
लघणत्व लोचनयोः, क्रजुत्व नासावशस्येत्यादि भवति साधुरिति सप्तममिति ७ । 'नो सदाणुवाई, नो रूवाणुवाईम नो गन्धाणुवाई
भवई' नो शुब्द मन्मथभाषितादिकमभिज्वह्नेहुमनुपतत्यनुसरतीत्येवशीलः शब्दानुपाती, एव नो रूपानुपाती, नो गन्धानुपातीति

१ प्रतिबन्ध प्र० ॥ २ पाधक्षा प्र० ॥

पदत्रयेणाप्येकमेव स्थानमित्यष्टममिति ८ । 'नो सिलोगाणुवाइ भवइ' नो श्लोकं ख्यातिमनुपतत्यनुसरतीत्येवंशीलः श्लोकानुपातीति नवममिति ९ । 'नो सायसोक्खपडिवेद्धे भवइ' सातात्पुण्यप्रकृतेः सकाशाद्यत्सौख्यं सुखं रसस्पर्शलक्षणाविषयसम्पाद्यं तत्र प्रतिबद्धस्तत्परो मुनिः सातग्रहणादुपशमसौख्यप्रतिवद्धतायां न निषेधः भवति जायते इति दशममिति १० । क्वचिनु ' चित्तसमाहिद्धाणचि' इति पाठस्तत्राप्ययमेवार्थो नवरं सत्यदशकं न व्याख्येयमिति ।

'दस चैव दसाओत्ति' दशैव दशसंख्या एव दशाधिकारामिधायकत्वाद्दशा इति बहुवचनान्तं स्त्रीलिङ्गं शास्त्रास्याभिधानमिति, ताश्चैताः-कर्मणोऽशुभस्य विपाकः फलं कर्मविपाकस्तत्प्रतिपादिका दशाध्ययनात्मकत्वादशाः कर्मविपाकदशाः, विपाकश्रुताख्यस्यैकादशाङ्गस्य प्रथमश्रुतस्कन्धो द्वितीयश्रुतस्कन्धोऽप्यस्य दशाध्ययनात्मकः कर्मविपाकप्रतिपादकश्च, न चासाविहामिमतः स्थानाङ्गेऽस्याविवृतत्वादिति ॥ १ ॥ तथा-साधूनुपासते सेवन्त इत्युपासकाः श्रावकास्तद्गतक्रियाकलापप्रतिबद्धा दशा दशाध्ययनोपलक्षिताः उपासकदशाः सप्तममङ्गमिति २ । तथा-अन्तो विनाशः स च कर्मणस्तत्फलभूतस्य वा संसारस्य कृतो यैस्ते अन्तकृतास्ते च तीर्थंकरादयः तेषां दशा अन्तकृतदशा इह चाष्टमाङ्गस्य प्रथमवर्गे दशाध्ययनानीति, तत्संख्ययोपलक्षितत्वाद्दशान्तकृतदश इत्याभिधानेनाष्टममङ्गमभिहितमिति ३ । तथोत्तरः प्रधानो नास्योत्तरो विद्यत इत्यनुत्तरः उपपत्तनमुपपातो जन्मेत्यर्थः, अनुत्तरश्चासावुपपातश्चेत्यनुत्तरोपपातः सोऽस्ति येषां तेऽनुत्तरोपपातिकाः सर्वार्थसिद्धादिविमानपञ्चकोपपातिन इत्यर्थः, तद्वक्तव्यताप्रतिबद्ध दशा दशाध्ययनोपलक्षिता अनुत्तरोपपातिकदशा नवममङ्गमिति ४ । तथा-आचरणमाचारो ज्ञानादिविषयः पञ्चधा आचारप्रतिपादनपरा दशा

दशाध्ययनात्मिका आचारदशाः दशाश्रुतस्कन्ध इति या सूत्राः ५ । तथा प्रश्नाश्च पृच्छा व्याकरणानि च निर्वचनानि प्रश्नव्याकरणानि, तत्प्रतिपादिका दशा दशाध्ययनात्मिकाः प्रश्नव्याकरणदशाः दशममङ्गमिति ६ । तथा वन्द्यदशाः ७ द्विगुधिदशाः ८ । दीर्घदशाः ९ । सक्षेपिकदशाश्चाप्रतीता एता इति । तथा—

‘समणधम्म चेत्ति’ श्राम्यन्तीति श्रमणाः साधवस्तेषा धर्मः शान्त्यादिलक्षणः श्रमणधम्मस्त्वं च दशविधमुपसपन्न इत्यादि पूर्ववत्, स चाय—“सुन्ती य मद्दवज्जवसुत्ती तवसज्जे य वोधव्वे । सच्च सोय आकिञ्चण वभं च जइवम्मो” ॥१॥ तत्र क्षान्तिः—क्रोधविषेकः, मार्दव—मानपरित्यागेन वर्त्तेन, अर्जव—मायापरित्यागः, मोचन—मुक्तिर्लोभपरित्यागः, तपो द्वादशविधमनशनादि, सयमथाश्रवविरतिलक्षणः, सत्य मृषावादविरतिः, शौच सयम प्रति निरुपलेपता निरतिचारेतेत्यर्थः, आकिञ्चन्य—कनकादिरहितता, ब्रह्म च ब्रह्मचर्यमिति । अन्ये त्वेवं श्रमणधम्मं पठन्ति—“सन्ती सुत्ती अज्जव मद्दव तह लाघवे तवे चेव । सज्जमचियागकिञ्चण वोधव्वे वभंचेरे य” ॥१॥ तत्र लाघवम् प्रतिरुद्धता त्यागः सयतेभ्यो वक्त्वादिदान, शेष प्राग्वदिति । अथाशातनावर्जनतो महाव्रतरक्षणमाह—

आसायण च सच्च त्तिगुण एकारस विवज्जनो । उवसपन्नो जुत्तो रक्खामि मद्दव्वए पच्च ॥ २२ ॥

आय—ज्ञानादिलाभ शातयतीत्याशातना अर्हदादेरवज्ञेत्यर्थस्ता विवर्जयन्निति योगः, किविशिष्टा । सर्वा समस्तां सामान्येन, अथवा—‘त्तिगुण एकारसन्ति’ च शब्दस्येह सम्यन्धात् त्रयो गुणा गुणकारका यस्य स त्रिगुणस्तेमेकादश चैकादशाङ्क त्रयस्त्रिंशतमाशातना इत्यर्थः, एकादशाना त्रिगुणिताना त्रयस्त्रिंशत्संख्योपपत्तेरिति भावना, अथवा—वचनव्यत्ययात् प्रक्रान्ताशातनाशब्दसम्बन्धाच्च

त्रिगुणा एकादश वाशातनाः कर्मतापन्ना विवर्जयन् परिहरन्, तथोपसम्पन्नः प्रतिपन्नोऽनाशतनामिति सामर्थ्याद्रिम्यते, तथा युक्तः श्रमणगुणैः रक्षामि, परिपालयामि महाव्रतानि पञ्चेति । आशतनाश्च त्रयस्त्रिंशदेताः अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुसाध्वीश्रावकश्राविकादेवदेवी १०, इह ११, परलोक १२, केवलप्रणीतधम्म १३, सदेवमनुजामुरलोक १४, सर्वसत्त्व १५, काल १६, श्रुत १७, श्रुतदेवता १८, वाचनाचार्यविषया १९, आशातनाएकोन विंशतिः; सूत्रविषयास्तु चतुर्दश तद्यथा—

व्याचिद्धाक्षर १, व्यत्याग्रेडित २, हीनाक्षरा ३, सत्यक्षर ४, पद ५, विनय ६, घोष ७, योगहीनाध्ययन ८, सुष्ठुदत्त ९, दुष्ठुप्रतीच्छतता १०, ऽकालस्वाध्यय्यकरण ११, कालस्वाध्यायकरण १२, ऽस्वाध्यायिकस्वाध्यायित १३, स्वाध्यायिकास्वाध्यायित १४, लक्षणाः एतास्त्रयस्त्रिंशदाशातनाः । आसां च स्वरूपम्—अर्हतामाशातना न सन्ति तीर्थकरा, जानन्तो वा किमिति भोगान् भुञ्जते, देवादिविहितां समवसरणादिसपर्यां वा किमिति संयमिनोऽप्युपजीवन्तीत्यादिरूपा यदुक्तं—

“नत्थि अरहन्तत्ती जाणन्तो कीस भुञ्जाए भोए । पाहुडियं तुत्र जीवई एव वयं उत्तरं इणमो ॥ १ ॥ भोगफलनिव्वत्तियपुन्न-
प्पगडीणमुदयवाहल्ला । भुञ्जइ भोगे एवं पाहुडियाए इमं सुणसु ॥ २ ॥ तित्थयरनामगोयस्स खयट्ठा तहय चेव साभव्वा । धम्मं
कहेइ अरहा पूयं चासेवए तं तु ॥ ३ ॥ खीणकसाओ अरहा कयकिच्चो अविय जीयमणुयत्ती । पडिसेवन्तो वि तहा अदोसवं होइ
तं पूयं ॥ ४ ॥ १ सिद्धानां चाशातना न सन्ति सिद्धाः सद्भिरपि वा किं तैर्निष्ठैरित्यादिका, अत्र च समाधिः—“अत्थित्ति निय-
मसिद्धा सदाओ चेव गम्मई एवं । निचेट्ठावि भवन्ती वीरियखयओ न दोसो हु” ॥१॥ सकरणवीर्यक्षयादित्यर्थः २ । आचार्याणां

चाशातना यथा—“डहरो” अकूलीणोति य दुम्मेहो दमग मन्दवयणोति । अविपपलाभलद्वी सीसो परिभवइ आयरिय ॥१॥ अ-
हवावि यए एव दिन्तुवएस परस्स जत्तेण । दसविहवेयावेच्च कायव्वे सय न कुव्वन्ति ॥ २ ॥ ” अत्रोत्तर—“ डहरोति नाणबुद्धो
अकूलीणोति य गुणारुओ मिहणु । दुम्मेहदई णेर मणति (त) सत्ताड दुम्मेहा ॥ ३ ॥ जाणति नविय एय निद्धमा मोक्खकारणं
नाण । निच्च पगासयता वेयावचाइ कुव्वति ॥४॥ ” सूत्रप्रदोषाध्यायाना चाशातना आचार्यवद् द्रष्टव्या इति ॥४॥ साधूना चाशा-
तना यथा—“अमुणियसमयसहाओ साहुससुद्धिस्स भासए एव । अविस्सहणाइसमेया ससारसहावजाणणा नेव ।
भुज्जन्ति एगओ तह विरुत्तनेवत्था । एमाइ भणयच्च मूढो न सुणेइ एव तु ॥ २ ॥ अविस्सहणाइसमेया ससारसहावजाणणा नेव ।
साहू धेवकसाया जओव भुज्जन्ति तो तहवि ॥ २ ॥ ” ॥५॥ साध्वीना चाशातना यथा—“ कलहणिया बहु उवही अहवावि समणु
वदवो समणी । मणियाण पुत्तभण्डा दुमवल्ली जलस्स सेवालो ॥ १ ॥ ” अत्रोत्तर—“कलहन्ति नेव नाऊण कसाए कम्ममन्धवीएत्ति ।
सज्जलणामुदयओ ईसिं फलहेवि को दोसो ॥ १ ॥ उवही य बहुविगप्पो धम्मवयरक्खणत्थमेयासिं । भणिओ जिणेहिं जम्हा तम्हा
उवहिम्मि नो दोसो ॥ २ ॥ समणाण नेय एया उवदवो सम्मसारचिचाण । सम्म जियमोहाण जिणवेयणसमाहिअप्पाणं ॥ ३ ॥ ”

६ । तथा जिनशासनभक्ताः गृहस्थाः श्रामणा उच्यन्ते, तेषां चाशातना—

“लद्धं य माणुस्स नाऊण य जिणमय न जे विरइ । पडिवज्जन्ति कह ते धन्ना बुच्चन्ति लोगमि ॥ १ ॥ सावगसत्तासाय-
णमित्थुत्तरकम्पपरिणइवसओ । जइवि पवज्जन्ति न त तहावि धन्ना तिवग्गठिया ॥ २ ॥ ” एव थाविकाशातनापि द्रष्टव्या । ७ ।

१ न सन्ति सिद्धारो० प्र० ।

देवानां चाशातनेयं—“कामपसत्ता विरईए वज्जिया अणिमिसा य निचेद्धा । देवा सामत्थम्मि वि नय तित्थस्सुन्नइकरा य ॥ १ ॥
एत्थ पसिद्धी मोहणियसायवेयणियकम्मउदयाउ । कामपसत्ता विरई कम्मोदयउ चिय न तेसिं ॥ २ ॥ अणिमिस देवसहावा
निचेद्धाणुचरा उ कयकिच्चा । कालणुभावा तित्थुन्नइपि अन्नत्थ कुव्वन्ति ॥ ३ ॥ एवं देव्याशातनापि वाच्या १० । तथेह—लोको
मनुष्यस्य मनुष्यलोकस्तस्य त्वाशातना वितथप्ररूपणादिनेति ११ । तथा परलोको मनुष्यस्य नारकर्तियगमरास्तस्याप्याशातना वित-
थप्ररूपणादिनैव १२ । केवलप्रज्ञसो धर्म्मो द्विविधः श्रुतधर्मश्चारित्रधर्मश्च, तस्य त्वाशातना—“पागयभासनिवद्धं को जाणेइ पणीय
केणेयं । किं वा चरणेणं तु दाणेण विणा उ हवइचि” ॥ १॥ अत्रोत्तरं “वाल्ल्हीमूढमूर्खणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम् । अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः
सिद्धान्तः प्राकृतः स्मृतः” ॥ १॥ निपुणधर्म्मप्रतिपादकत्वाच्च सर्वज्ञप्रणी—तत्त्वमिति तथा—“दानमौरत्रिकेणापि चाण्डालेनापि दीयते ।
येन वा तेनः वा शीलं न शक्यमभिरक्षिम् ॥ १ ॥ दानेन भोगानामोति यत्र यत्रोपपद्यते । शीलेन भोगान् स्वर्गं च निर्वाणं चाधि-
गच्छति ॥ २ ॥ ” किञ्चाभयदानदाता चारित्रवान्प्रियमत एवेति १३ । सदेवमनुष्यासुरस्य च लोकस्याशातना वितथप्ररूपणादिना
आह च—“देवाइयं लोयं विवरीयं भणइ सचदीवुदही । कयमहव पयावइणा पगइपुरिसाण जोगा वा ” अत्रोत्तरं—“सत्तसु परि-
मियसत्ता मोक्खासुन्नराणं हवइ एवं । केण पयावइ विहिओ अन्नेणं एवमणवत्था ॥ १ ॥ चेयन्नसुन्नपगई पुरिसो किरियाइ वज्जिओ
इहो । ता कह तेसि पविची जीए होज्जा जगुप्पची ॥ २ ॥ ” १४ । सर्वं सत्त्वानां त्वाशातना विपरीतप्ररूपणादिनैव मन्तव्या १५ ।
कालस्य त्वाशातना नास्त्येव कालः कालपरिणतिर्वा विद्यमिति तथाच—दुर्नयः—“कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः । कालः
सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः” अत्रोत्तरं—कालोऽस्ति तमन्तरेण वकुलचम्पकादीनां नियतपुष्पादिप्रदानाभावप्रसङ्गात्, न च

तत्परिणतिर्विद्य एकान्तनित्यस्य परिणामानुपपत्तेरिति १६, श्रुतस्य त्वाद्यातना “को आउरस्स कालो मडलवरथोवणे व को कालो । जइ मोक्खरहेउ नाण को कालो तस्स कालो वा” ॥१॥ इत्यादिका इह चोचर “जोगोजोगो जिणसासणम्मि दुक्खक्खया पउजन्तो । अन्नोन्नमनाद्वाए असत्तो होइ कायव्यो” ॥ १ ॥ पूर्व धर्मद्वारेण श्रुतस्य आद्यातनोक्ता इह तु स्वतन्त्रश्रुतविषयेति न पौनरुक्त्य १७ । श्रुतदेवतायास्त्वाद्यातना न विद्यते श्रुतदेवता अकिञ्चित्करी वा, अत्रोचर अस्त्येव श्रुतदेवता यतो नानधिष्ठितो मौनीन्द्रः सत्त्वागमो, न चाकिञ्चित्करी तामालम्ब्य प्रशस्तमनसः सत्त्वस्य कर्मक्षयदर्शनात् १८, तथा वाचनाचार्यो य उपाध्यायसन्दिष्ट उद्देशादि करोति, तस्य चाद्यातनेय-निर्दुःसमुलः प्रभृतान् वारान् वन्दन दापयति, उत्तर तु-श्रुतोपचार एष क इव तस्यात्र दोष इति १९, इतो व्याविद्वाक्षरादिपदानि चतुर्दशापि श्रुतक्रियाकालगोचरत्वान्न पौनरुक्त्यभाज्जीति । तत्र व्याविद्वाक्षर विपर्यस्ताक्षरम् २०, व्यत्याश्रेडित अन्योन्यासनद्ववर्णव्यामिश्र २१, हीनाक्षर अक्षरन्यूनम् २२, अत्यक्षरम् अधिकाक्षर २३, पदहीन पदेनैवोन्न २४, विनयहीन अकुतोचितविनय २५, घोषहीन उदाचादिघोषराहित २६, योगहीन सम्यङ्कृतयोगोपचारम् २७, सुष्ठु दत्त समधिक प्रदत्त गुरुणा २८, दुग्धु प्रतीच्छित कलुषितान्तरात्मना शिष्येण गृहीतम् २९, अकाले कृतः स्वाध्यायः यो यस्य श्रुतस्य कालिकादेरकालस्तत्राधीतमिति, ३०, काले न कृतः स्वाध्यायो यस्मात्मीयोऽध्ययनकाल उक्तस्तत्र स्वाध्यायो न विहित इति ३१, अस्वाध्यायिके स्वाध्यायित अनस्वाध्यायिक रुधिरमहिरापासुपातगन्धर्वनगरमग्रामादिक तत्र स्वाध्यायितमधीतमिति ३२, स्वाध्यायिकेऽस्वाध्यायिकविपर्ययलक्षणे न स्वाध्यायित नाधीतमिति ३३ । अथवा-रत्नाधिकविषयास्त्रयस्त्रिंशदाद्यातना भवन्ति, तद्यथा—

पुरजो पम्पसासने गन्ता चेदृणनिरीयणायमणे १० । आलोयण ११ पडिसुणणे १२, पुच्वालवणे य १३ आलोए १४ ॥१॥

तह उवदंस १५ निमन्तण १६ खद्धा १७ ५ । इयणे य १८ अप्पडिसुणणे य १९ । खद्धचि य २० तत्थगए २१ क्रि २२ तुम
२३ तज्जाय २४ नो सुमणे २५ ॥ २ ॥ नो सरसि २६ कंहं छित्ता । २७ परिसं भेत्ता २८ अणुट्ठियाए कहे २९ । संथारपायघट्टण
३० चिट्ठु ३१ च ३२ । समासणे यावि ३३ ॥ ३ ॥ एतस्य गाथात्रयस्य व्याख्या—
पुरओचि सेहे रायणियस्स पुरओ गन्ता भवइ आसायणा सेहस्स । यतो मार्गोपदर्शनादिकं तथाविधकारणं विना रालिकस्य पुरतो
गन्तुं न वर्त्तते, अविनयदोसप्रसङ्गादिति; सेहे रायणियस्स (स) पक्खं गन्ता भवइ आसायणा सेहस्स । अविनयदोपप्रसङ्गादेव २ आस-
नेत्ति । सेहे रायणियस्स आसन्नं गन्ता भवइ आसायणा सेहस्स । कासितक्षुतादिषु श्लेष्माद्यवयवलगनादिना अविनयसंभवादिति,
एवमन्यत्रापि दोषा वाच्याः ३; एवं स्थानेनापि तिस्र आशातनाः । सेहे रायणियस्स पुरओ चिट्ठिन्ना भवइ आसायणा सेहस्स ४, सेहे
रायणियस्स सपक्खं चिट्ठिन्ना भवइ आसायणा सेहस्स ५, सेहे रायणियस्स आसन्नं चिट्ठिन्ना भवइ आसायणा सेहस्स ६, एवं निपी-
दनेनापि तिस्रः । सेहे रायणियस्स पुरओ निसीइत्ता भवइ आसायणा सेहस्स ७, सेहे रायणियस्स सपक्खं निसीइत्ता भवइ आसायणा
सेहस्स ८, सेहे रायणियस्स आसन्नं निसीइत्ता भवइ आसायणा सेहस्स ९, आयमणत्ति । सेहे रायणिएण सद्धिं वहिं वा विचारभूमिं
निक्खन्ते समाणे तत्थ सेहे पुव्वतराणं आयमइ पच्छा रायणिए आसायणा सेहस्स १०, आलोयणत्ति सेहे रायणिएण सद्धिं वहिया
वियारभूमिं निक्खन्ते समाणे तत्थ सेहे पुव्वतराणं गमणागमणमालोइ पच्छा रायणिए, आसायणा सेहस्स ११, अपडिसुणोत्ति
सेहे रायणियस्स राओ वा वियाले वा वाहरमाणस्स अज्जो के सुत्ते के जागरे, तत्थ सेहे जागरमाणे रायणियस्स अप्पडिसुणेत्ता
भवइ आसायणा सेहस्स १२, पृथ्वालवणेत्ति केइ रायणियस्स पुव्वसंलत्तए सिया तं सेहे पूव्वामेव आलवइ पच्छा रायणिए आसायणा

मेहम् १३, आग्नेय पक्षि मेहे अग्नय ३, पाण ३, सादमं वा, माइम वा, पडिगाहिचा त पुष्पामेव सेहतरागस्म आलोण्द पच्छा
 रायणीयस्म आसायणा मेहम् १४, उदमसि मेहे अग्नय ४ पडिगाहिचा त पुष्पामेव मेहतरागस्म उदमेइ पच्छा रायणीयस्म
 आसायणा मेहम् १५, निमन्तगनि मेहे अग्नय वा ४ पडिगाहिचा त पुष्पामेव मेहतराग उमिमन्तेइ पच्छा रायणीय आसायणा
 मेहम् १६, गद नि मेहे रायणीण मदि अग्नय वा ४ पडिगाहिचा त रायणीय अणापुच्छिचा तस्म २ इच्छइ तस्म २, प्रचुर
 २ दन्त्यइ २ आसायणा मेहम् १७, आद्यणेचि सेहे अग्नय वा ४ पडिगाहिचा त रायणीय अणापुच्छिचा तस्म २ इच्छइ तस्म २, प्रचुर
 २ उमट २ रमिय २ मणुत्र २ मणाम २ निस् २ तुस्त्र २ आहारेचा भवइ आसायणा मेहम् १। इह न सख २
 नि रट्टरेट् लचणे, उग २ नि पत्रागार वृत्ताकचिर्भट्टिसदि सारणापेक्षमिद, उमट २ ति वर्णगन्धरगस्पशोपेत, रसियन्ति २
 रमात् रमिय दाडिमागादि इदमपि सारणापेक्षामेव, मणुत्र मणुत्र ति मनस इष्ट मनोत्रं स्वभायतो मनोहूलमित्यर्थः, मणामन्ति मनसा
 अग्नये गुन्द्रमिति गायते इति मनोम तुतोऽपि सारणाग्रान्मनसः प्रियमित्यर्थः, निस् २ ति क्रोधावगाड, तुस्त्र २ इति क्रोधावर्चितम्
 त्रिग्नमत्तस्यैतदपि प्रिय भवतीति १८, अप्यडिमुणेचि सेहे रायणीयस्म गहर्माणस्म अपडिमुणेचा भवइ आसायणा मेहम्
 गामान्येन दिग्मनोऽप्रतिथोता भवति १९, गदक्षिय चि सेहे रायणीय राब्द २ उचा भवइ आसायणा सेहस्म, इह न सख २ ति
 गद २ मरेण सगरास निद्रुर भवइ २०, तत्यग्नचि सेहे रायणीयस्म वाहर्माणस्म जत्यग्न मुणेइ तत्यग्न येन उल्लान देइ आ-
 सायणा मेहम् २१, स्मिति सेहे रायणीण आहुण स्मिति उचा भवइ आसायणा सेहस्म किन्ति किं भणसीत्यर्थः। भणियच्च च एय
 (१) मतराण्य चन्दाभि २२, तुम ति सेहे रायणीय तुमतिवचा भवइ आसायणा सेहस्म मी तुम चोइत्तए २३, तजायन्ति सेहे रायणीय

तज्जाणं पडिहणित्ता भवइ आसायणा सेहस्स, तज्जाणं ति कीस अज्जो गिलाणस्स न करेसि, भणइ कीस तुमं न करेसि. आयरिओ भणइ तुमं आलसियो, सो भणइ तुमं चेव आलसियो इत्यादि २४, नो सुमणेत्ति सेहे रायणियस्स कंहं कहेमाणस्स नो सुमणसे भवइ आसायणा सेहस्स, इह च नो सुमणसे इति ओहयमणसङ्कप्पे अच्छइ, नाणुवूहइ कंहं, अहो सोहणं कहियं ति २५, नो सरसिस्ति सेहे रायणियस्स कंहं कहेमाणस्स नो सुमरसिस्ति वचा भवइ आसायणा सेहस्स, इह च नो सुमरसिस्ति न सरसि तुमं एयं अत्थं न एस अत्थो एवं भवइ २६, कंहं छेत्तन्ति सेहे रायणियस्स कहेमाणस्स तं कंहं अच्छिन्दिच्चा भवइ आसायणा सेहस्स, अच्छिन्दिच्चा भणइ अंहं कहेमि २७, परिसं भत्तन्ति सेहे रायणियस्स परिसं भेत्ता भवइ आसायणा सेहस्स, इह च परिसं भेत्तेत्ति एवं भणइ भिक्खावेलासमुद्दिसणवेलासुतत्थवेलाउ भिन्दइ २८, अणुद्धियाए कहेत्ति सेहे रायणियस्स कंहं कहेमाणस्स तीसे परिसाए अणुद्धियाए अब्बोच्छिन्नाए अब्बोगडाए चि दोच्चापि तमेव कंहं कहेत्ता भवइ आसायणा सेहस्स, इह च तीसे परिसाए अणुद्धियाएत्ति निविट्ठाए चेव, अब्बोच्छिन्नाएत्ति जाहे कोचि अच्छइ, अब्बोगडाएत्ति अविस्सरिया एत्ति तुत्तं हवइ, दोच्चापि तच्चापि चि विहिं तिहिं चउहि वि, तमेवत्ति जो आयरिण कहेओ अत्थो तमेवाधिकारं विकप्पेइ अयमपि प्रकारस्तस्सैवैकस्य सूत्रस्येति २९, सन्धारपायघट्टणत्ति सेहे रायणियस्स सेज्जासन्धारयं पाणं सद्धेत्ता हत्थेण अणुनवेत्ता गच्छइ आसायणा सेहस्स, इह शय्या स- वीझिकी संस्तारकोऽर्द्धतृतीयहस्तप्रमाणः, अथवा शय्येव संस्तारकः शय्यासंस्तारकः, पादेन संघट्टयति नानुज्ञापयति न क्षमयती- त्युक्तं भवति । भणितं च “सद्धइत्ता काणं तहा उवहिणामवि । खमेह अवराहं मे वाग्ज्ज न पुणेत्ति य ” ३०, चिद्धत्ति सेहे रा- यणियस्स सेज्जासन्धारयसि चिद्धत्ता वा निसीइत्ता व तुयद्धिच्चा वा भवइ आसायणा सेहस्स ३१, उच्चत्ति सेहे रायणियस्स उच्चासणे

चिद्विज्ञा वा, निरीक्षणा वा, तुयद्विज्ञा वा भवद् आसायणा सेहस्स ३२, समासणे यावित्ति सेहे रायणियस्स समाणे आसणे चिद्विज्ञा वा निरीक्षणा वा तुयद्विज्ञा वा भवति आसायणा सेहस्स ३३। इति दशाशुतस्कन्धसुत्रासुरीगाथात्रयभावार्थः। एताः पुनस्त्रयस्त्रिंशदप्याशातनाश्चतुर्षु (तस्यु) समवतरन्त्येतासु तद्यथा द्रव्याशातनाया क्षेत्राशातनाया कालाशातनाया भावाशातनाया च, तत्र द्रव्याशातना-रत्नाधिकेन सम भुज्जानो मनोवृत्तात्मना भुक्ते एवमुपधिसत्तारकादिभ्यपि वाच्यम् १, क्षेत्राशातना-रत्नाधिकस्यासन्नगमनादिभ्यः २, कालाशातना-रात्रौ वा निकाले वा व्यवहारतः तूष्णीरुक्तिप्रति ३, भावाशातना-त्वाचार्यं त्वमिति वक्ति ४, एव त्रयस्त्रिंशदपि चतुर्षु द्रव्यादिषु समवतरन्तीति। एवमेकस्यादिशुभाशुभस्थानाङ्गीकारवर्जनद्वारेण कृता महान्तोच्चारणा, साम्प्रतमनुक्तभ्यानाति-देशतस्ता र्गुमाह—

एव त्विदण्डविरजो निगरणसुद्धो तिसल्लनीसल्लो। निविहेण पडिक्कन्तो रक्खामि मट्ठए पच्च ॥ २३ ॥

एव प्रागुक्तलेश्यादित्यानवत्त्रिदण्डविरतो दण्ड्यते चारित्रैश्वर्यापहारतो निःसारीक्रियते एभिरात्मेति दण्डास्त्रयश्च ते दुःप्रयुक्त-मनोवाक्कायभेदाः त्रिसल्लया दण्डास्तेभ्यो विरतो निवृत्तचिद्विदण्डविरतः, उदाहरणानि चात्र मनोदण्डे ऋङ्गणार्थः “सो किर एगया महावाए वायन्ते उट्टुजाणू अहोसिरो चिन्तवो चिट्ठइ, साहूणो य अहो सन्तो सुहज्झाणोवगओचि वदन्ति, नय किंचि पडिक्कयण देइ, चिरेण सल्लान देउमारद्धो साहूहिं पुच्छिओ, किम्मेचिर झाइयन्ति, सो भणइ, सपय सरतरो मारुओ वायइ, जइ ते मम पुचा इयाणि वल्लराणि क्षेत्राणीत्यर्थः पल्लीवेज्जा तओ तेसि वासारेच्च सरसाए भूमीए सुवहू सालिसम्पया होज्जा एय मए चिन्तय, तओ आयरिएहिं वारिओ, ठिओ एवमाइ जमसुह मणेण चिन्तेइ सो मणदण्डो १। वाग्दण्डोदाहरणमिद-“एगो साहू सन्नाभूमीओ आगओ अविहीए आलोएइ जहा असुगत्य

स्वरविन्द दिद्वन्ति, तं सोऽण लुब्धयपुरिसेहिं तत्थ गन्तूणं तं मारियं ति, एवमाइ सावज्जभासा वइदण्डोति” । कायदण्डोदाहरणं-
“चण्डरुहो आयरिओ, उज्जेणि वाहिरिगामाओ अणुजाणपेक्खओ यात्रादर्शनार्थमित्यर्थः आगओ, सो अईवरोसणो, तत्थ य समोसरणे ग-
णियाघरपरिभूओ जाइकुलाइसम्पन्नो इभदारओ समागत्ति, सो भणति, पव्यामिच्चि, तत्थ अणोहिं साहुहिं असइहन्तेहिं चण्डरुहस्स सगासे
पेसिओ “कलिणा कली घस्सउत्ति” तओ सो तस्स उवड्ढियो, तेण सो ताहे चेव लोयं काउं पव्वाविओ; पच्चूसे सयणभया गामं व-
चंताणं पुरओ सेहो, पिड्ढिओ चण्डरुहो, आवडिओ रुड्ढो, सेहं दण्डएण मत्थए आहणेइ, कंहं ते पत्थरो न दिड्ढोत्ति, सेहो सम्मं सहइ,
आवस्सयवेलाए रुहिरावलित्तो दिड्ढो, चण्डदस्स तं पासिअण मिच्छादुकडन्ति भणमणस्स वेरगमग्गयस्स केवलनाणं समुप्पन्नं, सेहस्स
वि कालेणं ति, एवमाइ दुप्पउत्तकायजोगो दण्डोत्ति” तथा-“तिगरणसुद्धोत्ति” त्रीणि च तानि करणानि च मनः प्रभृतीनि
त्रिकरणानि तैः शुद्धो निर्दोषत्रिकरणानि वा शुद्धानि सर्वदोषरहितानि यस्य स त्रिकरणशुद्धः आह-त्रिदण्डविरतत्रिकरणशुद्धः
एव भवत्यतः किं तद्ग्रहणेन!, सत्यं, सावद्ययोगनिवृत्तस्त्रिदण्डविरत उच्यते, निरवद्ययोगप्रवृत्तस्तु त्रिकरणशुद्धः, अथवा वा-
सावद्ययोगविरतो दण्डत्रयविरत उच्यते, करणकारणानुमतिरूपसावद्ययोगविरतस्तु त्रिकरणशुद्ध इति न दोषः, अन्यथा वा-
नयोर्वहुश्रुतैर्विशेषो भावनीयः यतो गम्भीरमिदमार्थमिति । तथा-‘तिसल्लनीसल्लोत्ति’ शल्यते वाध्यते प्राणी एभिरिति शल्यानि द्रव्य-
तत्त्वोभरादीनि भावतस्तु मायादीनि, निर्गतानि, शल्यानि यस्य स निःशल्यः, स चैकशल्यापेक्षयापि स्यादित्याह-त्रीणि च
तानि शल्यानि, च त्रिशल्यानि, तेषु विषये निःशल्यस्त्रिशल्यनिःशल्यः सन्, तत्र मायाशल्यं माया निवृत्तिः सैव शल्यं मा-
याशल्यं, नियण नितरां दायते ल्ळ्यते मोक्षफलमनिन्द्यवृत्तचर्यादिसाध्यकुशलकर्मकल्पतरुवनमनेन देवद्वर्यादिप्रार्थनपरिणामनिशि-

सिनेति निदानं तदेव शल्यं निदानशल्यं, मिथ्यादर्शनशल्यं मिथ्या विपरीत दर्शनं तत्त्वावबोधलक्षणं मिथ्यादर्शनं, तदेव शल्यं मिथ्यादर्शनशल्यमिति । त्रिविहेन पडिक्त्वोत्ति त्रिविधेन त्रिप्रकारेण करणेनेति गम्यते, प्रतिक्रान्तः सर्वातिचारप्रतिनिवृत्तो, रक्षामि महात्रतानि यञ्चेति । अथ महात्रतोच्चारणं निगमयन्नाह—

इच्चयं महद्वयउच्चारणं, धिरत्तं सत्तुद्धरणं धिइवल्लयं ववसाओ साहणट्टो पावनिवारणं निकायणा भाववविसोही पडागाहरणं निज्जुहणाराहणा गुणाणां सवरजोगो पसत्थज्झाणोवउत्तया जुत्तया यं नाणे परमट्टो उत्तमट्टो एस तित्थरुरेहिं रइरागदोसमहणेहिं देसिओ पवयणस्स सारो छल्लीवनिकायं सजम उवएसियं तेह्लोक्कसक्कयं

ठाणं अब्भुयगया

इत्येतदनन्तरोक्तं महात्रतोच्चारणं त्रतोत्कीर्चनं कृतमिति शेषोऽत्र च को गुण इत्याह—‘धिरत्तमित्यादि’ अथवा—तत् कथं भूतमित्याह—‘धिरत्तन्ति’ महात्रतेष्वेव धर्मे वा स्थैर्यहेतुत्वात् स्थिरत्वं—निश्चलत्वं, भवति चासन्नसमाधेः सत्त्वविशेषस्य तत्करणश्रवणादिभ्यः सवेगातिशयान्महात्रतेषु धर्मे वा निष्प्रकम्पतेति । शल्यानां—मायाशल्यदीनामुद्धरणत्वाच्छल्योद्धरणमिति । तथा—धृतिश्चि-
त्तसमाधेर्वलमवष्टम्भो धृतिरलं तत्कारणत्वात्तन्महात्रतोच्चारणमपि धृतिवलं स्वार्थिकप्रत्ययोपादानात् धृतिवलकं, धीवलं वा धृतिवलं वा धीवलं वा ददातीति धृतिवलं दधीवलद्वयव्युत्पद्यते, जायते चासकृत्तद्व्यासितमतेर्धृतिवलमिति । एवमन्यत्रापि भावना कार्या, तद्यथा व्यवसा-
यो दुष्करकरणाध्यवसायः, तथा—‘साहणट्टोत्ति’ साध्यतेऽन्नेन साध्यमिति साधनं साधकतत्करणं तल्लक्षणोऽर्थः पदार्थः साधनार्थः मोक्षा-
ख्यपरमपुरुषार्थनिष्पत्त्युपाय इत्यर्थः, तथा—पावनिवारणन्ति पापस्याशुभकर्मणो निवारणं—नियेधकं पापनिवारणं, तथा निकायणतित्तिकाच-

नेव निकाचना स्वव्रतप्रतिपत्तिदृढतरनिबन्ध इत्यर्थः, शुभकर्मणां वा निकाचनाहेतुत्वानिकाचनेदमुच्यते, न च सरागसंयमिनाप्रयमर्थो न घटत इति, तथा-भावविसोहित्ति, भावस्यात्मपरिणामस्य जलमिव वस्त्रस्य विशोधिकारणत्वाद्भावविशोधिर्भावनिर्मलत्वहेतुरित्यर्थः, तथा-‘पडागारणरन्ति’ पताकायाश्चारित्राराधनवैजयन्त्या हरणं ग्रहणं पताकाहरणमिदं, लोके हि मल्लयुद्धादिषु वस्त्रमाभरणं द्रव्यं वा ध्वजोत्रे वध्यते, तत्र यो येन युद्धादिना गुणेन प्रकर्षवान् स रङ्गमध्ये पुरतो भूत्वा गृह्णातीति पताकां हरतीत्युच्यते, एवमत्रापि पाक्षिकादिषु महाव्रतोच्चारणतः समुपजातचारित्रविशुद्धिप्रकर्षः साधुः प्रवचनोक्तायाश्चारित्राराधनापताकाया हरणं करोतीति, तथा-निज्जहृणत्ति निज्जहृणा-निष्काशना कर्मशत्रूणामात्मनगरात्रिवासनेत्यर्थः, तथाराधना अखण्डनिष्पादना केपामित्याह-गुणानां मुक्तिप्रसाधकजीवव्यापाराणां, तथा संवरयोग इति नूतनकर्मर्मागमनिरोधहेतुः संवरस्तद्रूपो योगो व्यापारः संवरयोगः, अथवा-संवरेण पञ्चाश्रवनिरोधलक्षणेन योगः संवन्धः संवरयोग इति, तथा-‘पसत्थज्ञाणोवजुत्तयत्ति’ प्रशस्तध्यानेन धर्मशुक्लक्षणशुभाध्यवसानेनोपयुक्ता संपन्नता प्रशस्तध्याने वोपयुक्ता प्रशस्तध्यानोपयुक्ता, महाव्रतोच्चारणं कुर्वतः शृण्वतो वा नियमादन्यतरशुभध्यानसंभन्नादिति, तथा-‘जुत्तयाय नाणेत्ति’ युक्ता च समन्वितता च विभक्तिव्यत्यात् ज्ञानेन तत्त्वावगमेन सद्बोधसंपन्नतेत्यर्थः, महाव्रतप्रतिपत्तेः सम्यग्ज्ञानफलत्वादितिभावः, चूर्णौ तु जुत्तया यत्ति पाठो व्याख्यातस्तत्र युक्ता चाष्टादशशीलङ्गसहस्रैरिति द्रष्टव्यं, तथा-‘परमद्भुत्ति’ परमार्थः सद्भुतार्थः अकृत्रिमपदार्थ इत्यर्थ इति, कश्चित्पदार्थः परमार्थोऽपि परमाण्वादिबहुतमो न भवत्यत आह-उचामश्वासार्थश्चोचमार्थः-प्रकृष्टपदार्थः मोक्षफलप्रसाधकत्वेन महाव्रतानां सर्ववस्तुप्रधानत्वोदितिभावः, तथा-एसत्ति, लिङ्गव्यत्यायादेतन्महाव्रतोच्चारणं प्रवचनस्य

१ ता-दत्तावधानता० प्र० ॥

सारो देयित इति मनन्य, अथवा-एष इत्यनेन सार इत्येतस्य लिङ्ग गृहीतमिति कैरित्याह-तीर्थहरैः प्रवचनगुरुभिः किमिधैरित्याह-
रतिधारित्रमोहनीयकर्मोदयजन्यस्तथाविधानन्दरूपधित्तविकारः, रागश्च ममकारो, द्वेषश्चाहकारो, रतिरागद्वेषास्तान्मश्नन्ति-व्यपन-
यन्तीति रतिरागद्वेषमथनाः तैः, किमित्याह-देशितः केवललोकेनोपलभ्य भव्येभ्यः प्रवेदितः, प्रवचनस्य द्वादशाङ्गार्थस्य सारो नि-
ष्पन्दः, महात्रतानि तीर्थहरैः प्रवचनार्थस्य सारभूतानि कथितानीत्यतो मुमुक्षुणा तेषु महानादरो विधेय इति भावः, ते च भगवन्त-
स्तीर्थहराः पङ्जीननिरायसयम पदसङ्घट्टयिव्यादिसत्त्वसमूहश्चापुलक्षणत्वान्मुपावादादिपरिहार चोपदिश्य भव्येभ्यः कथयित्वा
उपलक्षणत्वात् स्वय कृत्वा च त्रैलोक्यसत्कृत लोकाग्रयपूजित स्थान प्रदेश सिद्धिक्षेत्रमित्यर्थः, अभ्युपगता सप्ताष्टा इत्यनेनापि महा-
त्रतानामत्यन्तोपादेयता सूचयतीति ।

अथ महात्रतोत्कीर्चनापरिसमाप्तौ मङ्गलार्थं प्रत्यासन्नोपकारित्वाद्विशेषतो भगवतो महानीरस्य स्तुतिमाह—

नमोऽस्तु ते सिद्ध बुद्ध सुत नीरय निस्सग माणसुरण गुणरयणसागर मणन्तमप्पमेय, नमोऽस्तु ते महद्दमहा-
वीरवद्दमाणसामिस्स, नमोऽस्तुते अरहओ नमोऽस्तुते भगवओ तिकद्दु ।

नमो नमस्कारोऽस्तु, भगवतु कस्मै ? ते तुभ्य हे वर्द्धमानस्वामिन्निति प्रक्रमः, किञ्चिशिष्टः?, सिद्ध कृतार्थं बुद्ध केवलज्ञानेनावग-
तसमस्तवस्तुतत्तु मुक्त पूर्ववद्दकर्ममन्धनैस्त्यक्त नीरजः वध्यमानकर्मरहितः, अथवा नीरय निर्गतैस्त्यक्त्यः, निःसङ्गः-पुत्रकलत्रमित्रधन-
धान्यहिरण्यसुवर्णादिसकलसम्बन्धविकलः, मानमूर्ण-सर्वगर्भोद्दलनः गुणरत्नसागर इति व्यक्तम् । तथा-अनन्तज्ञानात्मकत्वादनन्तस्त

स्यामन्त्रं अनन्त मकारः प्राकृतशैलीप्रभवः, अग्रमेय प्राकृतज्ञानपरिच्छेद, अशरीर जीवस्वरूपस्य छद्मस्थैः परिच्छेत्तुमशक्यत्वादिति तथा नमो नमस्कारोऽस्तु भवतु, कस्मै?, ते तुभ्यं किंविशिष्टेत्याह—महति गरियसि प्रक्रमात् मोक्षे कृतमते इति गम्यते । पुनरपि किंविशिष्टेत्याह—विशेषेणेरयति मोक्षं प्रति गच्छति गमयति वा प्राणिनः प्रेरयति वा कर्म्मणि निराकरोति, वीरयति वा रागादि शत्रून् प्रति पराक्रमत इति वीरः, निरुक्तितो वा वीरः यदाह—

“विदारयति यत्कर्म तपसा च विराजते । तपोवीर्येण युक्तश्च तस्माद्वीर इति स्मृतः” इतरवीरापेक्षया महांशसौ वीरश्चेति महावीरस्तस्यामन्त्रं हे महावीर! पुनरपि किंविशिष्टः, वर्द्धमान स्वकुलसमृद्धिहेतुतया पितृभ्यां कृतवर्द्धमानाभिधान! कुतस्ते नमस्कारोऽस्त्वित्याह—‘सामि-स्सत्ति’ विभक्त्येत्यादिति कृत्वेति प्रत्येकमभिसम्बधाच्च स्वामीति कृत्वा प्रभुरिति हेतोः, तथा नमो नमस्कारोऽस्तु ते इति कुत इत्याह—‘अरहओत्ति’ उक्तहेतुभ्यां अशोकाद्यष्टमहाप्रातिहाय्यादिरूपां पूजामर्हतीत्यर्हन् स इतिकृत्वा, नमोऽस्तु ते कुत इत्याह—‘भगवतोऽत्ति’ भगवानितिकृत्वा भगवानिति हेतोः तत्र भगः समग्रैश्वर्यादिलक्षणः । उक्तं च—“ऐश्वर्यस्य समग्रस्य रूपस्य यशसः श्रियः । धर्मस्याथ प्रयत्नस्य पण्णां भग इतीदृशः” ॥१॥स विद्यते यस्येति भगवानिति । अथवा—‘महद्’ महति रूढिवशादतिमहान् स चासौ वीरश्चातिमहा-वीरः स चासौ वर्द्धमानश्चातिमहावीरवर्द्धमानः स चासौ स्वामी तस्मै, तथा नमोऽस्तु ते अर्हते, तथा नमोऽस्तु ते भगवते इति कृत्वा इति हेतोः यतस्त्वमुक्तविशेषणोऽस्तस्ते नमोऽस्त्विति भावः । अथवा—कथं नमोऽस्त्वित्याह—तिकट्टुत्ति त्रिकृत्वः त्रीन् वारानिति, प्रतिवाक्यं च नमस्क्रियाभिधानं स्तुतिप्रस्तावदुष्टमिति । यथा—महाव्रतोच्चारणं कर्मक्षयाय तथा श्रुतोत्कीर्चनमपि कर्मविलयायेति महाव्रतोत्कीर्चनं निगमयन् श्रुतोत्कीर्चनं कर्तुंकाम इदमाह—

एसा खलु महव्यउच्चारणा कया इच्छामो सुत्तकित्तण काउं ।

एषानन्तरोक्ता, खलुर्वक्यालङ्कारमात्रे, महाप्रतोच्चारणा महान्तसशब्दाना, कृतोक्तन्यायेन विहिता, साम्प्रत इच्छामोऽभिलषामः, श्रुतकीर्चना आगमग्रन्थाभिधानसशब्दाना, कर्तुं विधातुमिति । तत्पुनः अ समासतो द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा-अङ्गप्रविष्ट अगनाद्य च, तत्र “पायदुग २ जङ्घो ४ रू ६ गायदुगद्ध तु दो य वाहू य १० । गीवा ११ सिर च १२ पुरिसो वारस अङ्गो सुयविसिङ्गो” मानद्विराद्धं पृष्ठोदरलक्षण, एवमिधश्रुतपृथक्स्योगेषु प्रविष्ट व्यवस्थित अगप्रविष्ट तथाहि-प्रवचनपुरुषस्य पादयुगमाचारसूत्रकृते, ज-ह्वाद्विक स्थानसमवायावित्यादि । अथवा-“गणधरकयमङ्गगय ज कय धेरेहि वाहिर त तु । नियय व(अ)ङ्गप्रविष्ट अणिययसुय वाहिर मणिय ” श्रुतपुरुषाडव्यतिरिक्तमङ्गवाद्य तदपि द्विविध प्रज्ञप्त आवश्यक च आशयकव्यतिरिक्त च, तत्र तानदल्पवक्तव्यत्वादाव-श्यकश्रुतसमुत्कीर्चनाय तदुपदेशरुनमस्कारपूर्वकं सूत्रमाह-

नमो तेसि खमासमणाण जेहि इम वाइयं छविहमावस्सय भगवन्त ।

नमो नमस्करोऽस्त्विति गम्यते, केभ्यः?, इत्याह-तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यः-क्षमादिगुणप्रधानमहातपस्विभ्यः स्वगुरुभ्यस्ती-र्थरुगणधरादिभ्यो वेति भावः, यैरिदं वक्ष्यमाणं वाचित अस्मभ्यं प्रदत्तं, अथवा-वाचित परिभाषित सूत्रार्थतया विरचितमित्यर्थः । पदविध पदकारमवश्यकरणादावश्यक, गुणानां वाऽभिविधिना वक्ष्यमात्मन करोतीत्यावश्यक, किंविशिष्ट-भगवन्तम् सातिश-याभिधेयसमृद्ध्यादिगुणयुक्त, पदनिधत्वमेवोपदर्शयन्नाह-

तं जहा-सामाहयं चउवीसत्यओ वंदणयं पडिक्कमणं काउस्सगो पच्चक्खणाणं, सव्वेहिं पि एयंमि छविहे आ-
वस्सए भगवंते समुत्ते सअत्थे संगंथे सनिज्जुत्तिए ससंगहणिए जे गुणा वा भावा वा अरहन्तेहिं भगवन्तेहिं
पन्नत्ता वा परूविया वा ते भावे सहहामो पत्तियामो रोएमो फासेमो पालेमो अणुपालेमो ।

तद्यथेत्युदाहरणोपदर्शनार्थः, सामायिकं-सावद्ययोगविरतिप्रधानोऽध्ययनविशेषः १, चतुर्विंशतिस्तवः-ऋषभादिजिनगुणोत्कीर्त्त-
नाधिकारवानध्ययनविशेषः २, वन्दनकं-गुणवत्प्रतिपत्तिप्रधानोऽध्ययनविशेष एव ३, प्रतिक्रमणं-स्खलितनिन्दप्रतिपादकोऽध्ययनविशेष
एव ४, कायोत्सर्गो-धर्मकायातिचारव्रणशोधकोऽध्ययनविशेष एव ५, प्रत्याख्यानं विरतिगुणकारकोऽध्ययनविशेष एव ६ सर्वस्मिन्नापि
समस्तेऽप्येतस्मिन्ननन्तरोक्ते, पड्विधे पड्भेदे, आवश्यके भणितस्वरूपे, भगवति समग्रैश्वर्यादिमतिः सह सूत्रेण मूलतन्त्ररूपेण वर्त्तत
इति सख्खं तस्मिन्सहोर्थेन तद्व्याख्यानरूपेण वर्त्तत इति सार्थं तस्मिन्, सह ग्रन्थेन सूत्रार्थोभयरूपेण वर्त्तत इति सग्रन्थं तस्मिन्, सह
निर्धुत्तया प्रतीतरूपया वर्त्तत इति सनिर्धुत्तिकं तस्मिन्, सह संग्रहण्या निर्धुत्तयैव बह्वर्थसंग्रहणरूपया वर्त्तत इति ससंग्रहणिकं तस्मि-
न्, केचन ये गुणा विरतिजनगुणोत्कीर्त्तनादयो धर्म्मः, वा शब्दउत्तरपदापेक्षया समुच्चये, भावाः क्षायोपशमिकादिपदार्था जीवादिपदा-
र्था वा, वाशब्दः पूर्वपदापेक्षया समुच्चय एव, अर्हद्विदेवादिभूतसपर्याहैर्भगवद्भिः समग्रैश्वर्यादिमद्भिः किमित्याह-प्रज्ञप्ताः सामान्येनो-
द्दिष्टाः, प्ररूपिता विशेषेण निर्दिष्टाः, वाशब्दौ पूर्ववत्, तान् भावानुपलक्षणत्वाद् गुणांश्च, 'सहहामोत्ति' श्रद्धमेहे सामान्येनैवमेवैतत्
इतिश्रद्धाविषयीकुर्मः, 'पत्तियामोत्ति' प्रतिपद्यामेहे प्रीतिकरणद्वारेण, 'रोएमोत्ति' अभिलापातिरेकेण रोचयामः आसेवनाभिमुखतया

रुचिविषयीकुर्म' इत्यर्थः, न च प्रीतिरुची न भिन्ने, यतः क्वचिद्द्व्यादौ प्रीतिसङ्गावेऽपि न सर्वदा रुचिरतो विभिन्नताऽनयोरिति, 'फासेमोत्ति' स्पृशामः आसेवनाद्वारेण छुपामः, 'पालेमोत्ति' पाठोऽशुद्ध इव लक्ष्यः, 'अणुपालेमोत्ति' अणुपालयामः पौनःपुन्यकरणेन, यदि पुनः प्रसिद्धत्वात् 'पालेमोत्ति' पदमवश्य व्याख्येयं तदा पालयामः पौनःपुन्यकरणेन, रक्षामः, एतच्च कतिपयदिनपालनेऽपि स्यादतः अनुपालयामः, पालनादननु पथादाजन्मापीत्यर्थः पालयामोऽनुपालयामः । तथा-

ते भावे सद्गृहन्तेहि पत्तियन्तेहि रोयन्तेहि फासन्तेहि अणुपालन्तेहि अन्तोपक्वस्स ज वाइय पढियं परियट्टिय पुच्छिय अणुपेहिय अणुपालिय त दुक्खक्खयाए कम्मक्खयाए मोक्खाए बोहिंलाभाए ससारुत्तारणाए तिकइदु उवस्सपज्जित्ताण विहरामि ।

तान् भावान् श्रद्धानैरेवमेवैतदितिसामान्येन प्रतीतिं कुर्वन्ति, प्रतिपद्यमानैर्विशेषग्रीतिकरणद्वारेण मन्यमानैः, रोचयद्भिरभिलाषातिरेकेण आसेवनाभिमुखतया रुचिविषयीकुर्वन्तिरित्यर्थः, स्पृशद्भिरासेवनाद्वारेण च्छुपद्भिः पालयद्भिरिति पदमत्रापि न विद्मः, तदङ्गीकारे च पूर्ववदर्थविशेषो वाच्यः, अनुपालयद्भिः पौनःपुन्यकरणेन रक्षयद्भिः, अन्तर्मध्ये पक्षस्य चन्द्राभिधानार्द्धमासस्य यत्किमपि, वाचित अन्येभ्यः प्रदत्त, पठित स्वयमधीत, परिवर्तित स्रततो गुणित, पृष्ट पूर्वाधीतस्य स्रतादेः शङ्कितादौ प्रच्छन्नं विहितमित्यर्थः, अनुप्रेक्षितमर्थविस्मरणभयादिना चिन्तितं, अनुपालितं एभिरेव प्ररौरनधमनुष्ठितं तद्दुःखक्षयाय शरीरमानसासातोच्छेदाय, कर्मक्षयाय ज्ञानावरणाद्यदृष्टविनाशाय, मोक्षाय परमनिःश्रेयसाय, बोधिलाभाय प्रेत्यसद्धर्मवाप्तये, ससारोच्चारणाय भव-अमरणपारगमनाय, अस्माकं भविष्यतीति गम्यते, इतिकृत्वा इतिहेतोरुपसपद्याङ्गीकृत्य, विहरामीति वचनव्यत्ययाद्विहरामो मासक-

दिना साधुविहारेण वर्त्तामहे इति । तथा—
अन्तोपक्वस्स जं न वाइयं, न पढियं, न परियट्ठियं, न पुच्छियं, नाणुपेहियं; नाणुपालियं सन्ते बले सन्ते वीरिए
सन्ते पुरिसकारपरक्कमे तस्स आलोएमो पडिक्कमामो निन्दामो गरहामो विउट्टेमो विसोहेमो अकरणायाए अब्भु-
ट्टेमो अहरिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जामो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

अत्र नञ्विशेषितद्वयाणि पूर्ववद्वाख्येयानि, कस्मिन् विद्यमानेपि वाचनादि न कृतमित्याह—सति विद्यमाने बले शरीरे प्राणे,
तथा सति विद्यमाने वीर्ये जीवप्रभवे प्राणे एव, तथा सति पुरुषकारपराक्रमे तत्र पुरुषकारः पुरुषाभिमानः, स एव निष्पादितफलः
पराक्रम इति, तस्स ‘आलोएमोत्ति’ विभक्त्यत्ययात्तदवाचितादिकमालोचयामो गुरवे निवेदयामः, तथा—‘पडिक्कमामोत्ति’—प्रति-
क्रामामः प्रतिक्रमणं कुर्मः, तथा—‘निन्दामोत्ति’ निन्दामः स्वसमक्षं जुगुप्सामहे, आह च—‘सचरित्तपच्छयावो निन्दत्ति’—तथा—
‘गरहामोत्ति’ गर्हामो गुरुसमक्षं जुगुप्सामहे आह च—‘गरहावि तहाजाइयमेव नवरं परप्पयासणयत्ति’ तथा—‘विउट्टेमोत्ति’ व्यति-
वर्त्तयामो वित्रोटयामो विकुट्टयामो वा अवचनाद्यनुबन्धं व्यवच्छेदयाम इत्यर्थः, ‘विसोहेमोत्ति’ विशोधयामः प्रकृतदोषपङ्कमलि-
नमात्मानं विमलीकुर्मः, तथा—अकरणतया पुनर्न करिष्याम इत्येवमभ्युत्तिष्णामोऽभ्युपगच्छामं इति, यथाहमपराधाद्यपेक्षयायथोचि-
तं, तपःकर्म निर्विकृतिकादिकं, पापच्छेदकत्वात्पापच्छित् प्रायश्चित्तविशोधकत्वाद्वा प्रायश्चित्तं, प्रतिपद्यामहे अभ्युपगच्छामः, तथा
तस्य यन्न वाचितमित्यादेरपराधस्य मिथ्यादुष्कृतं स्वदोषप्रतिपत्तिगर्भं पश्चात्तापानुसूचकं मिथ्यादुष्कृतमिति वाक्यं प्रयच्छाम इति ।

१. भद्रप तेण । पापण वावि चित्तं विसोहए तेण पच्छित्तं । तपः कर्मनिर्विकृतिकादिकं० । प्र०

समुत्कीर्तितपात्रपकमिदानीं तद् व्यतिरिक्तस्यावसरस्तदपि द्विविध प्रज्ञप्त, तद्यथा-कालिक चोत्कलित च, यदिह दिवसनिशाग्रथम-
पथिमपौरुषीद्वय एवास्याध्यायिकाभावे पठ्यते तत्कालेन निर्वृत्त कालिक, यत्पुनः कालवेलापञ्चविधास्याध्यायिकवर्ज्यं पठ्यते तदुत्का-
लिक । तत्र तावदुत्कालिकममुत्कीर्तनायाह-

नमो तेसिं खमासमणाण जेहिं इम वाइय अङ्गबाहिरं उक्कालिय भगवन्त त जहा-दसवेयालिय, कल्पियाकल्पिय
चुल्लकप्पसुय, महाकप्पसुय, ओवाइय, रायप्पसेणइय, जीवाभिगमो, पन्नवणा, महापन्नवणा, नन्दी, अणुओ
गदाराह, देविन्दत्थओ, तन्दुलवेयालिय, चन्दाविज्झय, पमायप्पमार्था, पोरिसिमण्डल, मण्डलप्पवेसो, गणि-
विज्जा, विज्जाचरणविणिच्छओ, झणविभत्ती, मरणविभत्ती, आयहिबिसोहि, सलेहणासुयं, बीयरागसुयं
विहारकप्पो, चरणविही आउरपच्चक्खाण महापच्चक्खाण ॥

नमो नमस्कारोऽस्त्विति गम्यते तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यः स्मार्थदातृभ्य इत्यर्थः, यैरिदं वक्ष्यमाण, वाचितमस्मभ्य प्रदत्तमङ्गचाद्य
प्रवचनपुरुषाङ्गेभ्यो बहिर्भव, उत्कालेन निर्वृत्तमुत्कालिक, भगवत् महार्थत्वसमृद्ध्यादिगुणवत्, तद्यथा-“दसवेयालियन्ति” विकाले-
नापरकलक्षणेन निर्वृत्त वैकालिक, दशाध्ययननिर्माणं च तद्वैकालिक, च मध्यपदलोपात् दशवैकालिक, वृद्धसम्प्रदायश्चात्र-

“वृद्धमाणसामिणो चरमतिथयरस्स सीसो तित्थसामी सुधम्मो नाम अणगारो आसि । तस्सवि य जवुनामो । तस्सवि य प-
मवो । तस्सन्नया कयाई पूहरत्तावरत्तसमयमि चिन्ता समुप्पन्ना । को मे गणहरो होज्जत्ति । ताहे अप्पणो गणे समणसंहे य सज्जओ

१ चोत्कालिकवधिक प्र० ।

उवओगो कओ । न दीसइ कोइ अव्वोच्छिन्निकरो । ताहे गारत्थेसु उवउत्तो । उवओगे कए रायगिहे नगरे सेज्जंभवं वंभणं जंबं जयमाणं पासइ । ताहे रायगिहं नगरमागन्तूण सङ्गाढयं वावारेइ । जन्नावाडं गन्तुं भिक्खुट्ठा धम्मलामेह । तत्थ तुज्जे पडिसेहिज्जि-
हिह । ताहे तुज्जे भणिज्जह । “अहो कष्टं तत्त्वं न ज्ञायते इति” ते य साहुणो तत्थ गया जाव पडिसेहिया । तओ तेहिं भणियं “अ-
हो कष्टं तत्त्वं न ज्ञायते इति” तेण य सेज्जं भवेणं दारमूले ठिएण तं वयणं सुयं । ताहे सो विचिन्तेइ । एए उवसन्ता तवस्सिणो अ-
सन्तं न वयन्तिचि काउं अज्जावगसगांसं गन्तुं भणइ ‘किं तत्तन्ति’ । सो भणइ वेदास्तत्त्वं । ताहे सो अस्मिं कड्डिऊण भणइ । सीसं
ते छिन्दासि जइ मे तुमं तचं न कहेसि । तओ अज्जावओ भणइ ‘पुनो मे समओ’ । भणियमेयं वेयत्थे ‘शिरश्छेदे तत्त्वं कथनीयमि-
ति’ । तो संपयं कहयामि जं एत्थ तचं । एयस्स जूयस्स हिट्ठा सव्वरयणामई अरहओ पडिमा, सा बुच्चइ, तो अरहओ धम्मो तत्तन्ति
। तओ सिज्जंभवो जिणपडिमादंसणेण पडिबुद्धो । उवयारित्ति अज्जावगस्स पाएसु पडिऊण जन्नावाडोवक्खरं च दाउणं निगओ ।
साहुणो गवेसमाणो गओ य आयरियसगांसं । आयरियं साहुणो य वन्दिता भणइ ‘मम धम्मं कहेह’ । ताहे आयरिया उवउत्ता
जहा इमो सोत्ति । ताहे आयरिएहिं साहुधम्मो कहिओ । तं सोउं सो पव्वईओ चोदसपुव्वी जाओ । जया य सो पव्वओ तदा
तस्स गुधिणी महिहा होत्था । तम्मि पव्वए लोगो नियल्लओ तं ववस्सइ । जहा तरुणाए भत्ता पव्वओ अपुत्ता य एसत्ति । तहा अ-
वि यत्थि तव किंचि पोड्ढेत्ति पुच्छइ । सा भणइ । उवलक्खेमि मणागं । तओ समएण दारओ जाओ । तओ निवत्तवारसाहस्स निय-
यल्लगा जम्हा पुच्छिज्जन्तीए मायाए से भणियं मणागन्ति, तम्हा मणगो से नामं कारेति । जया य सो अट्ठवग्गिओ जाओ तया मा-
यरं पुच्छइ । को मम पिया । सा भणइ । तव पिया पव्वओ । ताहे सो नस्सिउं पियुसगासे पड्डिओ । आयरिया य तक्कालं चम्पाए

विहरन्ति । सोवि दोरओ उवलद्धुत्तन्तो चपाए आगओ । आयरिएण सत्ताभूमिं गएण सो दारओ दिट्ठो । दारएण वन्दिओ आ-
यरिओ । आयरियस्स त दारय पेच्छन्तस्स नेहो जाओ । तस्सेव दारगस्स तहेव । तओ आयरिएण पुच्छिओ भो दारगा ! कुओ
आगमणन्ति । तेण भणिय रायगिहाओ । आयरिएण भणिय । तत्थ तुम कस्स पुत्तो नत्तुओ वा । सो भणइ । सेज्जभवो नाम
वभणो तस्साह पुत्तो । सो किर पव्विओ । स्वरिहि भणिय । केण कज्जेण तुम आगओमि । सो भणइ । अहयि यवइस्स । तो भगव
जाणेह तुम्मे तं, तो आयरिया भणन्ति जाणामो । तेण भणिय सो रुहन्ति । स्वरिणा भणिय सो मम मिच्चो एगसरीरभूओ, पव्वया-
हि तुम मम सगासे । तेण भणिय एव करेमि । तओ तत्थेव त पवावेचा आयरिया आगन्तु पडिस्सए आलोएन्ति सच्चिचो पडिपुओ
सो पव्वइओ । पच्छा आयरिया उवउत्ता । केइय काल एस जीवइत्ति, नाय जाव छम्मासा । ताहे आयरियाण बुद्धी समुप्पन्ना ।
इमस्स थोवग आउं । किं कायवन्ति ? चोइसपुब्बी रुम्हि कारणे समुप्पन्ने निज्जूहइ । अपच्छिमो पुण चोइसपुब्बी अवस्समेव निज्ज-
हइ । ममवि इम कारण समुप्पन्न । ता अहमवि निज्जूहामि । ताहे आठत्तो निज्जहिउ । जाव योनावसेसे दिवसे दम अज्जयणा नि-
ज्जूढा । तेणेद दसवेयालिय भणिज्जइ । इम च मण्णेण छहिं मासेहिं पटिय । तओ समाहीए काल गओचि । यथा-

चानेनैतावता श्रुतेनाराधितमेवमन्येऽप्येतदध्ययनानुष्ठानतः आराधका भवन्तीति वृद्धाः । तस्मिन् कालगते अहो आराधितमने-
नेत्यानन्दाश्रुपात श्रग्यम्भवस्थविरा अरूपुः । ततो यशोभद्रेण, श्रग्यम्भप्रधानशिष्येण गुर्व्यश्रुपातदर्शनात् किमेतदाश्चर्यमिति विस्मि-
तेन भगवन् किमेतदकृतपूर्वं क्रियते इति पृच्छा कृता । ततः श्रग्यम्भेन भगवता समारम्भेह ईदृशः, सुतोऽय मम, वलनानपत्यस्ने-
होऽत्रापराध्यतीति कथित । ततो यशोभद्रादयो “गुराविन गुरुपुत्रके वार्त्तितव्यमिति विद्वत्प्रवादो” न चायमस्माभिः कृत इत्यनुताप

चकृस्ततो गुरुणा प्रतिबन्धदोषपरिहारार्थं न मया कथितं, नात्र भवतां दोष इति वदता परिसंस्थापितास्ते । ततः शय्यम्भवेनाल्पा-
गुप्तेनमवेत्य मयेदं शास्त्रं निर्वृद्धं, किमत्र युक्तमिति सङ्गाय निवेदिते विचाराणा कृता यदुत—कालहासदोषात् प्रभूतसत्त्वानामि-
दमेवोपकारकमतस्तिष्ठत्वेतदिति नोपसंहृतं प्रवचनगुरुरेति ” । तथा—

“ कथिपपाकपियन्ति ”—कल्पाकाकल्प्यप्रतिपादकं कल्पाकल्प्यं तथा—“ चुल्लकृष्णसुयं महाकृष्णसुयन्ति ” कल्पनं कल्पः स्थ-
विरकल्पादिस्तत्प्रतिपादकं शुतं कल्पश्रुतं तत्पुनर्दिभेदमेकमल्पग्रन्थमल्पार्थं च, द्वितीयं महाग्रन्थं महार्थं च ॥ तथा—“ ओवाइयन्ति ”
प्राकृतत्वात् वर्णलोपे औपपातिकं उपपत्तनमुपपातो देवनारकजन्म सिद्धिगमनं च, तमधिकृत्य कृतमध्ययनमौपपातिकमिदं चोपाङ्गं
वर्तते, । आचाराङ्गस्य हि प्रथममध्ययनं शस्त्रपरिज्ञा, तस्याद्योदेशके सूत्रमिदं “ एवमेगेसि नो नायं भवइ, अत्थि वा मे आया उववा-
इए, नत्थि वा मे आया उववाइए । के वा अहं आसी, के वा इहचुए पिच्चा भविस्सामीत्यादि ” इह च सूत्रे यदौपपातिकत्वमात्म-
नो निर्दिष्टं तदिह प्रपञ्च्यत इत्यर्थतोऽङ्गस्य समीपभावेनदमुपाङ्गमिति । “ रायप्पसेणइयन्ति ” राज्ञः प्रदेशिनामनः प्रश्नानि राजप्रश्नानि-
तान्युपलक्षणभूतान्यधिकृत्य प्रणीतमध्ययनं राजप्रश्नीयमिदमप्युपाङ्गं सूत्रकृताङ्गमेति । तथा—“ जीवाभिगमोत्ति ” जीवानामुपलक्षत्वा
दजीवानां चाभिगमो ज्ञानं यत्र स जीवाभिगमो ग्रन्थः, सोऽपि स्थानाङ्गस्योपाङ्गमिति । तथा ‘पणवणत्ति’ जीवादीनां प्रज्ञापनं—
प्रज्ञापना, बृहत्तरा महाप्रज्ञापना; । एते च समवायाङ्गस्योपाङ्गे इति । तथा—

“ नन्दित्ति ” नन्दनं नन्दी, नन्दन्यनयेति वा भव्यप्राणिन इति नन्दी, पञ्चप्रकारज्ञानस्वरूपप्रतिपादकोऽध्ययनविशेष इति ।
तथा—“ अणुयोगदाराइन्ति ” अनुयोगो व्याख्यानं तस्य द्वाराण्युपक्रमदीनि चत्वारि मुखान्यनुयोगद्वाराणि तत्स्वरूपप्रतिपादकोऽ-

ध्ययनप्रदेशोऽमेदोपचारादनुयोगद्वाराणीत्युच्यते । तथा—

“देविन्दत्यओत्ति” देवेन्द्राणा चमरवैरोचनादीना स्तवन भवनस्थित्यादिस्वरूपादिवर्णन यत्रासौ देवेन्द्रस्तव इति । तथा—
“तन्दुलवेयालियन्ति” तन्दुलाना वर्षशतायुष्कपुरुषप्रतिदिनभोग्याना सख्याविचारेणोपलक्षितो ग्रन्थविशेषः तन्दुलवैचारिकमिति ।
तथा—“चदाविज्जयन्ति”—इह चन्द्रो यन्त्रपुत्रिकाक्षिगोलको गृह्यते, तथा मर्यादया विध्यत इति आवेध्य, तदेवावेध्यक, चन्द्रलक्ष-
णामावेध्यक चन्द्रावेध्यक राधावेद्य इत्यर्थः, तदुपमानमरणाराधनाप्रतिपादको ग्रन्थप्रदेशश्चन्द्रावेध्यकमिति । तथा—

“सूपरपणाच्चित्ति” क्वचित् पाठस्तदर्थमुपरि वक्ष्यामः । तथा “पमायप्पमायन्ति” प्रमादाप्रमादस्वरूपभेदफलविपाकप्रतिपादक-
मध्ययन प्रमादाप्रमाद, तत्र प्रमादस्वरूप महाकर्मन्धनप्रभवाविध्यातदुःखानलज्वालाकलापपरीतमशेषमेव ससारवासगृह पश्यंस्त-
न्मध्यवर्त्यपि सति तन्निर्गमनोपाये वीतरागप्रणीतधर्म्मचिन्तामणौ यतो निचित्रकर्मोदयसाचिव्यजनिततात्परिणामप्रदेशोपादपश्यन्निव
तद्भयमविगणय्य त्रिशिष्टपरलोकक्रियानिष्ठस एवास्ते सत्त्वः स सल्लु प्रमाद इति । मेदा मद्यादयस्तत्कारणत्वादुक्तं च “मज्ज
विसय रुसाया निहा विगहा य पञ्चमी भणिया । एए पञ्च पमाया जीव पाडन्ति ससारे” । फलविपाको दारुणः उक्तं च—

“अथो त्रियसुरभोक्कु धम भवेक्कीडितु हुताशेन । ससारवन्धनगर्तेतु प्रमादः धमः कर्त्तुम् । १ । अस्यामेव हि जातौ नरसु-
पह्न्याद्विप हुताशो वा । आसेवितः प्रमादो हन्याज्जन्मान्तरयतानि । २ । यत्र प्रयान्ति पुरुषाः स्वर्गं यच्च प्रयान्ति विनिपातम् ।
अत्र निमित्तमनार्यः प्रमाद इति निश्चितमिदं मे । ३ । ससारवन्धनगतो जातिजराव्याधिमरणदुःखार्त्तः । यन्नोद्विजते सत्त्वः सोऽप्य-
पराधः प्रमादस्य । ४ । आज्ञाप्यते यदयशस्तुल्योदरपाणिपादवदनेन । कर्मं च करोति नहुविधमेतदपि फलं प्रमादस्य । ५ । इह हि

112011

अन्तःसिद्धिः ५१, १११
१ मण्डलेपुमण्डलान् ० प्र०।

च १४ । मरण भक्तपरिणामा १५, इक्षिणि १६, पाओवगमण च १७ । २ । तत्रावीचिमरण आ समन्ताद्वीचय इव वीचयः प्रतिसम-
यमनुभूयमानायुयोऽपराऽपरायुर्दलिकोदयात् पूर्वपूर्वायुर्दलिकविच्युतिलक्षणावस्था यस्मिन् तदावीचिमरण । अथवा-वीचिर्विच्छेदस्त-
दभावादवीचिस्तद्वक्ष्ये मरणमवीचिमरण ॥१॥ ‘अहोति’ अवधिमरण अवधिमर्मर्यादा, ततश्च या नितारकादिभवनिन्यनतयायुःक-
र्मदलिकान्यनुभूय त्रियते, यदि पुनः तान्नेवानुभूय मरिष्यति तदा तदवधिमरण, सभनति हि गृहीतोऽज्ञितानामपि कर्मदलिकानां
पुनर्ग्रहण परिणामवैचित्र्यादिति ॥ २ ॥ “अन्तियत्ति” आत्यन्तिकमरण यानि नारकाद्यायुधकृतया कर्मदलिकान्यनुभूय त्रियते, मृतो वा
न पुनस्तान्यनुभूय मरिष्यतीति ॥ ३ ॥ बलवन्मरणवशाच्चमरणस्वरूप यथा—

“सञ्जमजोगविसन्ना मरन्ति जे त बलायमरण तु ॥ ४ ॥ इन्दियविसयवसगया मरन्ति जे त वसइ तु ॥५॥ ” अन्तःशल्यम-
णस्वरूप यथा—“लज्जाए गारवेण य बहुसुयमएण वावि दुच्चरिय । जे न कहन्ति गुरूण नहु ते आराहगा होन्ति ॥ १ ॥ ” गारव-
पङ्कनिनुट्टा अइयार जे परस्स न कहन्ति । दसणनाचरिच्च ससहमरण इवइ तेसि ॥ २ ॥ एय ससहमरण मरिज्जण महाभए दुर-
न्तमि । सुचिर भमन्ति जीया दीहे मसारकान्तारे ॥ ६ ॥ ३ ॥ तद्भवमरणस्वरूपमिदं “मोनु अकम्मभूमगनरतिरिए सुरगणे य णेरहए ।
सेसाण जीवाण तन्भवमरण तु केसिञ्चि ॥ ७ ॥ ” तस्मिन्नेव भवे उत्पद्यमानानामिति भावना । अथ बालादिमरणसप्तकस्वरूप यथा—
“अविरयमरण बाल ॥८॥ मरण विरयाण पण्डिय वेन्ति । जाणाहि बालपण्डियमरणं पुण देमविरयाण ॥१०॥ १ ॥ मणपञ्चवो-
हिनाणी सुयमत्ताणी मरन्ति जे समणा । छउमत्थमरणमेय ॥ ११ ॥ केवलमरण तु केवल्लिणो ॥ १२ ॥ २ ॥ गिद्धादिभक्त्युणं
गिद्धपट्ट ॥ १३ ॥ उव्वन्धणाइ वेहास ॥ १४ ॥ एए दुन्नि वि मरणा कारणज्जाए अणुन्नाया ॥ ३ ॥ ” तथा—“भत्तपरिणत्ति” चतुर्विधा-

एव इङ्गयते प्रतिनियतप्रदेश ॥ १५ ॥ तथा उपशब्दश्चोपमेतिवत् सादृश्येपि हारस्य त्रिविधाहारस्य वा यावज्जीवमपि परित्यागामत्कं प्रत्याख्यानं भक्तपरिज्ञोच्यते ॥ १६ ॥ तथा-पादैरधःप्रसार्षिणमूलात्मकैः पिवति पादपो वृक्ष उपशब्दश्चोपमेतिवत् सादृश्येपि चेष्ट्यतेऽस्यामनशनक्रियायामितीङ्गिनी ॥ १७ ॥ एतेषां मरणानां वि-
दृश्यते, ततश्च पादपमुपगच्छति सादृश्येन प्राप्नोतीति पादपोपगमनम् । किमुक्तं भवति-यथैव पादपः क्वचित्कथंचिन्निपतितो निश्चल-
मेवास्ते तथायामपि भगवान् यद्यथा समविपमदेशेज्जमुपाङ्गं वा प्रथमतः पतितं न तत्तत्थलयतीति ॥ १७ ॥ एतेषां मरणानां वि-
भक्तिर्विभजनं विचारणं यस्यां ग्रन्थपद्धतौ क्रियते सा मरणविभक्तिरिति । तथा-“आयविसोहिन्ति” आत्मनो जीवस्यालोचनादिप्रा-
यश्चित्तप्रतिपत्त्यादिप्रकारेण विशुद्धिः कर्मविगमलक्षणा प्रतिपाद्यते यत्र तदध्ययनमात्मविशुद्धिः । तथा-“संलेहणासुयन्ति” द्रव्य-
भावसंलेखना प्रतिपाद्यते यत्र तदध्ययनं संलेखनाश्रुतम् । तत्र द्रव्यसंलेखनोत्सर्गतः “चत्तारि विचिन्ताइं विगईनिज्जुहियाइ चत्तारि”^१ य-
इत्यादिका । भावसंलेखना तु क्रोधादिकपायप्रतिपक्षाभ्यास इति । “वीयरायमुयंति” सरागव्यपोहेन वीतरागस्वरूपं प्रतिपाद्यते य-
त्राध्ययने तद्वीतरागश्रुतम् । तथा-“विहारकप्पोत्ति” विहरणं विहारो वर्त्तनं तस्य कल्पो व्यवस्था स्थविरकल्पादीनामुच्यते, यत्र ग्र-
न्थेऽसौ विहारकल्पः । तथा-“चरणविहिन्ति” चरणं व्रतादि यथोक्तं-“वयसमणधम्मसज्जमवेयावच्चं च वम्मभुत्तीओ । नाणाइ तियं
तवकोहनिग्गहा इय चरणमेयं” एतत्प्रतिपादकमध्ययनं चरणविधिः । तथा-“आउरपच्चम्माणंति” आतुरः क्रियातीतो ग्लानस्तस्य

तवकोहनिग्गहा इय चरणमेयं । अत्रेति य छम्मासे होइ विगइ
१ संवच्छरेय दोन्निओ एगंतरियं तु आद्यमं । नाइ विगिद्धो य तवो छम्मासे परिमियंतु आयामं । अत्रेति य छम्मासे होइ विगइ
तवोक्कम्मं । वासं कोडीसहियं आयामं काउ आणुपुब्बीप । गिरिकंदरं तु गन्तुं पयावगमणं अहकरेई ।

प्रत्याख्यानं आतुरप्रत्याख्यानं एतथा विही-गिलाण क्रिरियातीत नाउ गीयत्था पचक्खावेन्ति । दिणे २ दव्वहास करेत्ता अन्ते य सब-
दव्वदाज्झयणयाए भत्ते वेरग्ग जणेत्ता भत्ते विणिण्हस्स भवचरिम पचक्खाण करेत्ति, एय जत्थज्झयणे सवित्थर वन्नज्जइ तमज्झयणं
आतुरप्रत्याख्यानमिति । तथा-“महापचक्खाणन्ति” महच्च तत्प्रत्याख्यानं चेत्ति समासः । एसत्थ भावत्थो-थेरक्कप्पेण जिणक्कप्पेण
वा विहरित्ता अन्ते थेरक्कप्पिया वारस वासे सलेहण करेत्ता, जिणक्कप्पिया पुण विहारेणेव सलीढा, तहावि जहाजुत्त सलेहण करेत्ता
निबाधाय सचेद्वा चेव भवचरिम पचक्खन्ति, एय सवित्थर जत्थज्झयणे वन्नज्जइ तमज्झयण महाप्रत्याख्यानमिति । एवमेतान्यथा-
विंशत्यध्ययनानि यथार्थान्यभिहितान्युपलक्षणं चैतानि यतो नैतावन्येवोत्कालिकमासीदिति ।

सन्वेहिं पि एयम्मि अंगवाहिरे उक्कालिण भगवन्ते ससुत्ते सअन्थे ससगहणिण जे गुणा वा भावा वा अरह-
न्तेहि, भगवन्तेहि पन्नत्ता वा परुविया वा ते भावे सद्धामो, पत्तियामो, रोणमो, फासेमो, पालेमो, अणु-
पालेमोते, भावे सद्धन्तेहि, पत्तियन्तेहि, रोयन्तेहि, फासिन्तेहि, पालन्तेहि, अणुपालन्तेहि अतोपक्खस्स ज
चाइय पढिय परियट्ठिय पुच्छिय अणुपेहिय अणुपालिय त दुक्खल्लयाए कम्मल्लयाण मोल्लयाण बोहिलाभाए
ससारुत्तारणाए त्तिकट्टु उपसपज्जित्ता ण विहरामि । अन्तोपक्खस्स ज न चाइय न पढिय न परियट्ठियं
न पुच्छिय नाणुपेहिय नाणुपालिय सन्ते वळे, सते विरिण, सन्ते पुरिसकारपरक्कमे, तस्सालोणमो पडिक्कमामो
निन्दामो गरहामो विउट्टेमो विसोहेमो अकरणयाण अब्बुट्टेमो अहारिह तवोक्कम्मं पायच्छित्त पडिवज्जामो
तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

इदमपि सूत्रं प्राग्वत्समवसेयमिति । समुत्कीर्तितमुत्कालिकमथ कालिकोत्कीर्तनायाह-
णमो तेसिं खमासमणणां जेहि इमं वाइयं अङ्गवाहिंरं कालियं भगवन्तं तंजहा-उत्तरज्झयणाइं, दसाओ
कप्पो. ववहारो, इसिभासियाइं, निसीहं, महानिसीहं, जंबुदीवपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, चन्दपन्नत्ती, दीवसाग-
रपन्नत्ती, खुद्धियाविमाणपविभत्ती, महहल्लोयाविमाणपविभत्ती, अङ्गचूलियाए, वग्गचूलियाए, विवाहचूलियाए;
अरुणोववाए, वरुणोववाए, गरुलोववाए, धरणोववाए, वेसमणोववाए, वेल्न्धरोववाए, देविन्दोववाए, उट्टा-
णसुए समुट्टाणसुए, नागपरियावणियाणं, निरयावलियं, कप्पियाणं, कप्पवाडिंसयाणं, पुष्फियाणं, पुष्फचूलि-
याणं वण्हिआणं, वण्हिदसाणं, आसीविसभावणाणं, चारणभावणाणं, महासुमिणभावणाणं, तेयगिगिस-
ग्गाणं, सन्वेहिंपि एयंमि अङ्गवाहिरे कालिए भगवन्ते समुत्ते सअत्थे सगन्थे सन्निजुत्तिए ससङ्गहणिए
जे गुणा वा भावा वा अरहन्तेहिं भगवन्तेहिं पन्नत्ता वा परुविया वा ते भावे सहहामो पत्तियामो रोएमो
फासेमो पालेमो अणुपालेमो ते भावे सहहन्तेहिं पत्तियन्तेहिं रोयन्तेहिं फासन्तेहिं पालन्तेहिं अणुपालितेहिं
अन्तोपक्खस्स जं वाइयं पढियं परियद्धियं पुच्छियं अणुपेहिंयं अणुपालियं तं दुक्खखयाए कम्मखयाए मोक्खयाए
योहिलाभाए संसारुत्तारणाए त्तिक्कट्टु उवसंपज्जित्ता णं विहरामि । अन्तोपक्खस्स जं न वाइयं न पढियं
न परियट्ठयं न पुच्छियं नाणुपेहिंयं नाणुपालियं सन्ते वळे, सन्ते वीरिए, सन्ते पुरिसकारपरक्कमे; तस्स आलो-
एमो पडिक्कमामो निन्दामो गरिहामो विसोहेमो विउट्टेमो अकरणयाए अब्भुट्टेमो अहारिहं तवोक्कम्मं

पागच्छित्त पडिवज्जामो तस्स भिच्छामि दुक्कट् ॥

एतदपि पूर्ववद् व्याख्येय नवर उचारज्जयणाहन्ति” उत्तराणि प्रधानान्यध्ययनानि रुढिवशाद्विनयश्रुतादीन्येव पत्रिशतं ग्रन्थमाङ्गोपरिपाठादोत्तराध्ययनानीति “दसाओत्ति”-दशाध्ययनात्मको ग्रन्थ विशेषो दशाः दशाश्रुतस्कन्ध इति यः प्रतीत इति “रूप्योत्ति”-रूप्यः साध्याचारः व्यतिरिक्त्यदिर्वो तत्प्रतिपादकमध्ययन कल्प इति । “ववहारोत्ति”-प्रायश्चित्तगोचरव्यवहारप्रतिपादकमध्ययन व्यवहार इति “इमिभासियाहन्ति”-इह ऋषयः प्रत्येकुरुद्रसाधवस्ते चात्र नेमिनाथतीर्थवर्त्तिनो नारदादयो विंशति, पार्थनाथतीर्थवर्त्तिनः पञ्चदश, वर्द्धमानस्वामितीर्थवर्त्तिनो दश ग्राह्याः, तैर्भाषितानि पञ्चचत्वारिंशत्सख्यान्यध्ययनानि अत्रणाध्याहार (म) वन्ति ऋषिभाषितानि । अत्र बृद्धसम्प्रदायः—

“सोरियपुरे नयरे सुरसरो नाम जकसो धणञ्जओ सेट्ठी सुमहा भञ्जा । तेहिं अन्नया सुरवरो विद्वत्तो जहा—‘जइ अम्हाण पुत्तो होहि तो तुज्ज महिससय देमोत्ति’ एव ताण मञ्जाओ पुत्तो । एत्थन्तरे भगव वद्धमाणसमी ताणि सज्झिहन्तित्ति सोरियपुरमागओ । सेट्ठी सभज्जो निगओ, सबुद्धो, अणुबयाणि गहियाणि । सो जकसो सुविणए महिसे मगइ । तेणवि सेट्ठिणा पिट्टमया दिण्णत्ति । सामिणोय दोन्नि सीसा धम्मयोगोधम्मनस्सो य एगस्स असोगवरपायवस्स हेट्ठा परियट्ठिन्ति । ते पुण्हट्ठिगा अवरण्हेवि छाया न परियत्तइ । तओ इको भणइ तुज्जेसा लब्धी । विइओ भणइ, तुज्जत्ति । तओ एको काइयभूमि गओ जाव च्छाया तेहव अच्छइ । तओ नीओवि गओ तत्थेव तेहव अण्डइ । तेहि नाय जहा एकसवि न लब्धी । तओ सामी पुच्छिओ । भगवया भणिय, जहा इहव सोरियपुरे समुद्विजओ राया आसि, जन्नदत्तो तावमो, सोमजसा तावसी, ताण पुत्तो नारओ, ताणि उल्लविचीणि

एकदिवसंमि जेमिन्ति, एकदिवसं उववासं करोन्ति । अन्नया ताणि तं नारयं पुवण्हे असोगपायवस्स हेट्ठा ठवेळणं उञ्छन्ति । इओ य वेयट्ठाओ वेसमणक्काइया तिरियजंभगा देवा तेणन्तेणं वीइवयन्ता पेच्छन्ति तं दारयं । ओहिणा आभोइन्ति । सो ताओ चेवदेव-
निकायाओ चुओ । तओ ते तस्साणुक्रंपाए तं छांयं थंभन्तित्ति । एवं सो उम्मुक्कालभाओ अन्नया तहिं जंभगदेवेहिं पन्नाचिमाइयाओ किं
विज्जाओ पाढिओ । तओ कञ्चणकुण्डियाए मणिपाउयाहिं आगसे हिण्डइ । अन्नया नारवइं गओ । वासुदेवेण पुच्छिओ । किं
सोयं ति ? , सो न तरति परिकहिउं । तओ अन्नक्रहाए ववखेवं काउण उट्ठिओ गओ पुव्विवेहं । तत्थ य सीमंवरं तित्थयरं जुगवाहू
वासुदेवो पुच्छइ, किं सोयं ? । तित्थगरेणं भणियं, सच्चं सोयन्ति । जुगवाहुणा एकवयेणेणवि सच्चं उवलज्जं । नारओवि तं निसुणिता
उप्पइळणं अवरविदेहं गओ । तत्थवि जुगन्धरं तित्थयरं महावाहू वासुदेवो तं चेव पुच्छइ, भगवयावि तं चेव वागरियं,
महावाहुस्सवि सच्चं उवगयं । नाराओवि तं सुणिता वारवइं गओ वासुदेवं भणइ । किं ते तदा पुच्छियं । वासुदेवो भणइ किं सोयं-
ति । नारओ भणइ सच्चं सोयं ति । वासुदेवो भणइ किं भणइ किं सच्चन्ति । तओ नारओ खुभिओ न किञ्चि उत्तरं देइ । तओ
कण्हावासुदेवेण भणियं । जत्थेवं तं पुच्छियं तत्थ एयंपि पुच्छियवं हुन्तन्ति खिसिओ । ताहे नारओ भणइ सच्चं भट्टारओ न पु-
च्छिओत्ति, चिन्तेउमारद्धो, जाईसरया, संबुद्धो, पढममज्झयणं सोयव्वमेव इचाइयं वदति । एवं सेसाणिवि दट्ठवाणि त्ति” । “नि-
सीहन्ति” निशीथो मध्यरात्रिस्तद्वहोभूतं यदध्ययनं तन्निशीथं आचाराङ्गपञ्चमचूडेत्यर्थः, अस्मादेव ग्रन्थार्थभ्यां महत्तरं महानि-
शीथं “जंबुद्वीवपन्नत्ति” — जम्बूद्वीपादिस्वरूपप्रज्ञापनं यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः “सुरपन्नत्ति” — सूरचरितप्रज्ञापनं
यस्यां सा सूरप्रज्ञप्तिः, केचिदेनामुत्कालिकमध्येऽधीयन्ते । तदपि युक्तं । नन्वध्ययनेऽप्यसा उत्कालिकमध्येऽधीतत्वादिति “चंदप-

पण्यन्ति चि'—चन्द्रचारविचारप्रतिपादको ग्रन्थग्रन्थप्रवृत्तिः “दीपसागरपद्मचिन्ति”-दीपसागराणा प्रज्ञापन यस्यां ग्रन्थपद्धतौ सा द्वी-
पसागरप्रवृत्तिः । इह चापलिङ्गाप्रतिष्ठितविमानप्रविभक्तन यस्या ग्रन्थपद्धतौ सा विमानप्रविभक्तिः, सा चैका अल्पग्रन्थार्था, तथाऽ-
न्या महाग्रन्थार्था, अतः क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्तिः “अङ्गचूलियचि”-अङ्गस्याचारादेशचूलिका अङ्गचूलिका यथाचारस्यानेकविधा,
इहोक्तानुक्तार्थसंग्रहात्मिका चूलिका । “वर्गचूलियचि” इह वर्गोऽध्ययनादिसमूहः यथान्तकृद्देशस्वयौ वर्गौ इत्यादि, तस्य चूलिका
वर्गचूलिका “विमहचूलियचि” न्याख्या भगवती तस्याश्चूलिका व्याख्याचूलिका “अरुणोपवाएत्ति” —इहारुणो
नाम देवः तत्समयनिर्देशो ग्रन्थस्तदुपपातहेतुररुणोपपातो, यदा तदध्ययनमुपयुक्तं सन् श्रमणः परिवर्तयति तदासावरुणो
देवः स्वममयनिर्देशाचलिनासनः सप्रमोद्धान्तलोचनः प्रयुक्तमधिस्तद्विज्ञाय हृष्टप्रहृष्टलचपलकुण्डलधरो दिव्ययाद्युत्था दिव्यया
निभूत्या, दिव्यया मत्या यत्रैवासौ भगवान् श्रमणस्तत्रैवोपगच्छति । उपागत्य भक्तिभरावनतवदनो विमुक्तवरकुसुमधृष्टिरवपतति ।
अवपत्य च तदा तस्य श्रमणस्य पूतः स्थित्वा अन्तर्हितः कृताञ्जलिकः उपयुक्तः सर्वगमिशुद्धयमानाध्यवसायः शृण्वस्तिष्ठति । स-
माप्ते च भगति ‘मुस्वाध्यायित मुस्वाध्यायितमिति वर वृण्वति’ ततोऽसाविहलोरुनिष्पिपासः समतृणमणिमुक्तालेन्दुराञ्जनः सि-
द्धिबभूनिर्भरानुगतचिन्ताः श्रमण प्रतिभगति । न मे वरेणार्थ इति, ततोऽसावरुणो देवोऽधिभूतजातसर्वेगः प्रदक्षिणा कृत्वा वन्दित्वा
नमस्कृत्वा च प्रतिगच्छति । एव वरुणोपपातगरुडधरुणोपपातदैश्रमणोपपातवेलाधरोपपातदेवेन्द्रोपपातैवपि वान्यम् ।

“उद्वाणसुएत्ति”-उत्थानश्रुतमध्ययन “त पुण सद्धमाइयरुज्जेसु जस्सेगस्स कुलस्स वा गामस्स वा जाव, रायहाणीण वा स-
मणे कयसङ्कप्पे आसुरेत्ते चण्डकिए अप्पसन्नेसे विसमासुहासणत्थे उवउत्ते समाणे उद्वाणसुयमज्झयण परियेइइ एफ

दोन्नि तिन्नि वा वारे । ताहे से कुले वा गामे वा जाव रायहाणी वा ओह्यमणसङ्कप्पे विलवन्ते दुयं दुयं पहाविन्ते उट्टेइ, उट्टसइत्ति बुत्तं भवई ” । “समुट्टाणसुएत्ति”-समुत्थानश्रुतमध्ययनं “ तं पुण समत्तकज्जे तस्सेव कुलस्स वा गामस्स वा जाव रायहाणीए वा से चेव समणे (कय) सङ्कप्पे तुट्टे पसेन्ने पसन्नेलेसे समसुहासणत्थे उवउत्ते समुट्टाणसुयमज्झयणं परियट्टेइ एकं दोन्नि तिन्नि वा वारे, ताहे. से कुले वा गामे वा जाव रायहाणी वा. पहट्टचित्ते सुपसत्थमङ्गलकलयलं कुणमाणे मन्दाए गईए सललियं आगच्छन्ते समुट्टाह, आवसइत्ति तुत्तं भवई । एवं कयसङ्कप्पस्स परियट्टिन्तस्स पुविट्टियं पि समुट्टेइ ” इतः पट्ठान्तानि श्रुताभिधानानि दृश्यन्ते, विभक्तिविपरिणामात् प्रथमान्तानि व्याख्येयानि । अथवा-णकारस्थालङ्कारार्थत्वात् प्रथमान्तान्येवामूनि द्रष्टव्यानि । अथवा-प्रथमान्तान्येवामूनि पठनीयानि कापि तथैव दर्शनात् । “ नागपरियावणिआओत्ति ”-नागपरिज्ञा नागचित्ता नागकुमारस्तत्समयनिचद्रमध्ययनं “ तं जया समणे उवउत्ते परियट्टेइ तथा अकयसंक्कप्पसवि ते नागकुमारा तत्थत्था चेव परियाणन्ति वन्दन्ति नमंसन्ति बहुमाणं च करेन्ति, सङ्कमइयकज्जेसु य वरदा भवन्तीति ” । निरयावलिआओत्ति-“निरयावलिक्काः यासु “ आवलियापविट्ठा इयरे य निरया तग्गामिणो य नरतिरिया पसङ्गओ वन्निज्जन्ति ” । “कप्पियाउत्ति”-सौधर्मादिकल्पगतवक्तव्यतागोचराः ग्रन्थपद्धतयः कल्पिका उच्यन्ते “कप्पवडिसियाउत्ति”-“सोहम्मसीसाणकप्पेसु जाणि कप्पप्पहाणाणि विमाणाणि ताणि कप्पवडिसयाणि, तेसु य देवीओ जा जेण तवोविसेसेण उववन्नाओ इट्ठि च पत्ताओ, एयं जासु सवित्थरं वन्निज्जइ ताओ कल्पावत्तसिक्काः प्रोच्यन्त इति ” “पुप्फियाओत्ति”-इह यासु ग्रन्थपद्धतिषु गृहवाससुकुलपरित्यागेन प्राणिनः संयमभावपुष्पिताः सुखिताः, पुनः संयमभावपरित्यागतो दुःखावासिसुकुलेन मुकुलिताः, पुनस्तत्परित्यागादेव पुष्पिताः प्रतिपाद्यन्ते ताः पुष्पिताः उच्यन्ते । “ पुप्फचूलियाओत्ति ”-पूर्वोक्ताथ-

विशेषप्रतिपादिकाः पुष्पचूडा इति । “वण्हदसाओत्ति”-वृष्णिग्रन्थकवृष्णिनराधिपः तद्वक्तव्यताविषया दद्या वृष्णिदशा उच्यन्ते इति । “आसीविसभावणाओत्ति”-आस्योदष्ट्रास्तासु विषयेषां ते आसीविषयास्ते च द्विविधाः जातितः कर्मतश्च, तत्र जातितो वृश्चि-कमण्डूरुसर्पमनुष्यजातयः क्रमेण बहुबहुतरबहुतमातिबहुतमविषाः, वृश्चिकविषं ह्युत्कृष्टतोऽर्द्धभरतक्षेत्रप्रमाणं शरीरं व्याप्नोति, मण्डू-कनिषं तु भरतक्षेत्रप्रमाणं, भुजङ्गविषं तु जम्बूद्वीपप्रमाणं, मनुष्यनिषं तु समयक्षेत्रप्रमाणं वयुर्व्याप्नोति । कर्मतस्तु पञ्चेन्द्रियतिर्यश्चो मनुष्या देवाश्चसहस्राररदिति । एते हि तपश्चरणानुष्ठानतोऽन्यतो वा गुणत आसीविषवृश्चिकभुजङ्गादिसाध्यं कर्मं क्रिया कुर्वन्ति, श्लाघप्रदानादिना परं व्यापादयन्तीत्यर्थः । देवाश्चापर्याप्तस्थाया तच्छक्तिमन्तो द्रष्टव्याः । ते हि पूर्वं मनुष्यमेव समुपाजितासीन्विष-लब्धयः सहस्रारान्तदेवैर्ज्वभिन्नोत्पन्नाः अपर्याप्ताः स्थानायां प्राग्भविक्कासीविषलब्धिमन्तो मन्तव्यास्ततः परं तद्विधेयदिनदृष्टेः पर्याप्ता अपि देवाः श्लाघादिना परं विनाशयति, किं तु लब्धिव्यपदेशस्तदा न प्रवर्तते, इत्येवविधमाशीविषस्वरूपं भाव्यते प्रतिपाद्यते यासु ग्रन्थे पद्धतिषु ता आशीविषभावना इति । “दिद्वीविसभावणाओत्ति”-दृष्टौ विषयेषां ते दृष्टिविषाः तत्स्वरूपप्रतिपादिका दृष्टिविषभावना इति । “चारणभावणाओत्ति” अतिशयबहुगमनस्वरूपाचारणाः सातिशयगमनागमनलब्धिसपन्नाः साधुविशेषास्ते च द्विविधा (विधा-चारणाः जङ्घाचारणाश्च, तत्र विद्या विवक्षितः कोप्यागमः तत्प्रयानधारणो विद्याचारणः,) अस्य च यथाविधिसातिशयपष्टलक्षणेन तपसा सर्वदैवतपसस्तो विद्याचारणलब्धिरुत्पद्यते, तथा चासौ इत एकेनोत्पातेन मानुषोत्तरपर्वतं गच्छति, चैत्यानि च तत्र वन्दते, ततो द्वितीयेनोत्पातेन नन्दीश्वरनामानमष्टमद्वीपं गत्वा चैत्यानि वन्दते, तत एकेनोत्पातेन प्रतिनिवृत्त्य यतः स्थानादतः पुनस्तत्रागच्छतीत्येष तांस्तस्य तिर्यग्गतिनिषयः । उद्धृत्य त एकेनोत्पातेन नन्दनवनं गत्वा तत्र चैत्यानि वन्दते, ततो द्वितीयेनोत्पातेन मेरु-

शिखरस्थं पण्डकवनं गत्वा चैत्यानि वन्दते, ततश्चैकेनोत्पातेन प्रतिनिवृत्त्य यतः स्थानाद्गतः पुनस्तत्रागच्छतीति । लूतातन्दुनिर्व-
र्तितपुटकतन्तून्स्वरकरान्वा निश्रां कृत्वा (निश्रीकृत्य) जङ्घाभ्यामाकाशेन चरतीति जङ्घाचारणः, अस्य च यथाविविध सातिशयाष्टमलक्ष-
णेन विकृष्टतपसा सर्वदैव तपस्यतो जङ्घाचारणलब्धिरुत्पद्यते, तथा चासौ इत एकोनोत्पातेन त्रयोदशरुचकवरद्वीपं गत्वा तत्र चै-
त्यानि वन्दते, ततो निर्वर्त्तमानो द्वितीयो नोत्पातेन नन्दीश्वरमागत्य तत्रचैत्यानि वन्दते, ततस्त्वृतीयो नोत्पातेन यतः स्थानाद्गतस्त-
त्रागच्छतीत्येषोऽस्य तिर्यग्गतिविययः । ऊर्ध्वन्वित एकोत्पातेन पण्डकवनं गत्वा चैत्यानि वन्दते, ततो निर्वर्त्तमानो द्वितीयो नो-
त्पातेन नन्दवने चैत्यानि वन्दित्वा तृतीयो नोत्पातेन यतः स्थानाद्गतस्तत्रागच्छतीत्यादिचारणस्वरूपं भाव्यते सविस्तरं प्रतिपद्यते यासु
ताश्चारणभावना इति । “महारुचिणभावणाथोत्ति” — महास्वप्नानि गजवृषभसिंहादीनि भाव्यन्ते यासु ता महास्वप्नभावना इति । “तेय-
गनिसगगणन्ति” तैजसनिसर्गो वर्ण्यते यासु तस्तैजसनिसर्गा इति । अत्र चाशीविषभावनादिग्रन्थपञ्चकस्वरूपं नामानुसारतो दर्शितं,
विशेषसम्प्रदायश्च न दृष्ट इति । एतान्यपि षट्त्रिंशदध्ययनान्युपलक्षणभूतानि द्रष्टव्यानि, यतो भगवतो वृषभस्वामिन आदितीर्थकस्य
चतुरशीतिप्रकीर्णसहस्राणि, तथा मध्यमानामजितादीनां पार्श्वपर्यन्तानां जिनवराणां संख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि, यस्य यावन्तः
शिष्यास्तस्य तावन्तीत्यर्थः । तथा चतुर्दशप्रकीर्णकसहस्राणि भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः आसन्निति । उक्तं कालिक, तदभिधानाच्चावश्य-
कव्यतिरिक्तं, तद्गणनाच्चाङ्गवाह्यं श्रुतमुक्तम् । साम्प्रतमङ्गप्रविष्टश्रुतसमुत्कीर्त्तनायाह—

नमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइयं दुवालसंगं गणिपिडंगं भगवन्तं तंजहा-आग्रो, सूयगडो, ठाणं,

समवाओ, विग्रहपन्नती, नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अन्तगडदसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, प-
ण्हावागरण, विवागसुय, दिट्ठोवाओ १२। सन्वेहिं पियमि दुवालसगे गणिपिडगे भगवन्ते समुत्ते सअत्थे सगन्थे
सन्निज्जुत्तिण ससगहणिण जे गुणा वा भावा या अरहन्तेहिं भगवन्तेहिं पन्नत्ता वा परूविया वा ते भावे सइ-
हामो पत्तियामो रोएमो फासेमो पालेमो अणुपालेमो ते भावे सइहन्तेहिं पत्तियन्तेहिं रोयन्तेहिं फासन्तेहिं
पालन्तेहिं अणुपालन्तेहिं अन्तोपक्खस्स ज वाडय न पढिय परियट्ठिय पुच्छिय अणुपेहिय अणुपालिय त दु-
क्खम्बयाण कम्मम्बयाण मोम्बयाण वोहिलाभाए ससारउत्तरणाए त्तिक्कट्ट उवसपज्जित्ता ण विहरामि । अ-
न्तोपक्खस्स ज न वाडय न पढिय न परियट्ठिय न पुच्छिय नाणुपेहिय नाणुपालिय सन्ते बले सन्ते वीरिए
सन्ते पुरिसकारपरक्कमे तस्स आलोएमो पडिक्कमामो निन्दामो गरहामो विउट्टमो विसोहेमो अकरणयाए अ-
वमुट्टेमो अहरिह तवोक्कम पार्यच्चित्त पडिवज्जामो तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥

एतच्च प्राग्वद्व्याख्येय, नवर गणिपिटकम्-आचार्यस्यार्थसारग्रधानभाजनमित्यर्थः । “आयारोत्ति”-आचरणमाचारः आचार्यत
इति आचारः, शिष्टाचरितो ज्ञानाधासेनविधिरित्यर्थः, तत्प्रतिपादको ग्रन्थोऽप्याचार एवोच्यते । “स्यगडोत्ति”-“स्य च सूचाया”
सूचनोत्सूत्र सूत्रेणसूत्रकृत स्वरसमयादिसंस्मरणपदार्थसूचक यदित्यर्थः । “ठाणन्ति”-तिष्ठन्त्यासते-वसन्ति यथावदभिधेयतयैकत्वादिवि-

शेषिता आत्मादयः पदार्था यस्मिंस्तत् स्थानम्, अथवा-स्थानशब्देनैहैकादिकः सह्याभेदोऽभिधीयते ततश्चात्मद्यर्थगतानामेकादिदशान्तानां स्थानानामभिधायकत्वेन स्थानमाचाराभिधायकत्वादाचारवदिति । “समवाओत्ति”-समिति सम्यक्, अवेत्याधिकः, अयः जीवादिपरिच्छेदः समवायः, तद्वेतुश्च ग्रन्थोऽपि समवाय इति । “विवाहपणात्तिचि”-विशिष्टा वाहा अर्थप्रवाहस्तत्त्वार्थविचारपद्धतय इत्यर्थः, तेषां प्रज्ञप्तिः प्रज्ञापनं व्याख्यानं यस्यां सा विवाहप्रज्ञप्तिः, पूज्यत्वेन नामान्तरतो भगवतीत्यपीयमुच्यते “नायाधम्मकहाओत्ति”-ज्ञातान्युदाहरणानि तत्प्रधाना धर्मकथा ज्ञातार्धमकथा-“उवसागदसाओत्ति”-उपासकाः श्रावकस्तदुगतक्रियाकलापप्रतिबद्धा दशाध्ययनोपलक्षिता उपासकदशाः “अन्तगडदसाओत्ति”-अन्तो विनाशः, स च कर्मणस्तत्फलभूतस्य वा संसारस्य कृतो येस्ते अन्तकृतास्ते च तीर्थकरादयस्तेषां दशाः ग्रथमवर्गे दशाध्ययनानीति तत्संख्ययोपलक्षिता अन्तकृतदशा इति । “अणुत्तरोववाइयदसाओत्ति”-उत्तरः प्रधानो नास्योत्तरो विद्यत इत्यनुत्तरः, उपपत्तनमुपपातो जन्मेत्यर्थः, अनुत्तरथासाबुपपातश्चेत्यनुत्तरोपपातः, सोऽस्ति येषां तेऽनुत्तरोपपातिकाः सर्वार्थसिद्धादिविमानपञ्चकोपपातिन इत्यर्थः, तद्वक्तव्यताप्रतिबद्धा दशा दशाध्ययनोपलक्षिता अनुत्तरोपपातिकदशा इति । “पण्हावागरणन्ति”-ग्रन्थाश्च पृच्छा व्याकरणानि च निर्वचनानि समाहारत्वात्प्रश्नव्याकरणं, तत्प्रतिपादको ग्रन्थोऽपि प्रश्नव्याकरणमिति । “विवागसुयन्ति”-विपचनं विपाकः शुभाशुभकर्मपरिणाम इत्यर्थः, तत्प्रतिपादकं श्रुतं विपाकश्रुतं । “दिट्ठिवाओत्ति”-दृष्टयो दर्शनानि, वदनं वादः, दृष्टीनां वादो दृष्टिवादः, दृष्टीनां वा पातो यत्राऽसौ दृष्टिपातः, सर्वनयदृष्टयो यत्राख्यायन्ते समवतरन्ति चेति भावः । इत्युत्कीर्णितं सामान्यतोऽङ्गप्रविष्टश्रुतं । साम्प्रतं श्रुतदातृपालकेभ्यो नमस्कारमात्मीयग्रमादधिपये मिथ्यादुष्कृतं चाह-

नमो तेति खमासमणाण जेहि इम वाइय दुवालसग गणिपिडग भगवन्त, सम्म काण्ण फात्मन्ति पालन्ति पूरति तीरति किट्टति सम्म आणाए आराहति, अह च नाराहेमि तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

नमो नमस्कारोऽस्तु, तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यः क्षमादिगुणगणप्रधानमहासुनिभ्यः स्वगुरुभ्यः तीर्थरुग्णधरादिभ्यो वेति भावः, धेरिद प्रागुक्त वाचित प्रदत्त परिभाषित वा सूत्रार्थतः प्रणीतमित्यर्थः, द्वादशाङ्ग द्वादशानामङ्गानां समाहारो द्वादशाः, किंविशिष्ट-मित्याह—“गणिपिटगन्ति” गुणगणः साधुगणो वास्यास्तीति गणी आचार्यस्तस्य पिटकमिद रत्नादिकरण्डक इव पिटक गणिपिटक सप्तार्थसारकोशभूतमित्यर्थः, पुनरपि किंविशिष्ट—“भगवन्तन्ति” भग—समग्रैश्वर्यादिलक्षणः यदुक्त—“ऐश्वर्यस्य समग्रस्य रूपस्य य-शसः श्रियः । धर्मस्याथ प्रयत्नस्य पण्णा भग इतीङ्गना” इङ्गना नाम, सा विद्यते यस्य तद्भगवत्, तेनैव समग्रैश्वर्यं सातिशयाभि-धेयमिभूति यदवाचि “सर्वनर्ण जा होज्ज वालुया सबउदहि ज वा सलिल । एत्तोवि अणतगुणो अत्थो एगस्स सुत्तस्स” रूपं च निर्देष्टव्यमावच्छेदेषु युक्तत्वालकृतत्वादिगुणगणसम्पाद्य, यश्च विध्वव्यापिनी कीर्तिः, श्रीश्च कमनीयता श्रुतिहृदयानन्ददायितेत्यर्थः, धर्मधामाभिधेयत्वेन सर्वोपाधिविशुद्धोऽहंसादिकः, प्रयत्नश्चायभिधेयतया सर्वप्रमादवर्जनरूप उद्यमः, अथवा प्रयत्नो माहात्म्य प्र-भाव मामर्थमिति यावत्, सुप्रसिद्धैश्चैतदागमस्वरूपवेदिनामिति । ये चेद सम्यगप्यपरीत्येन कायेन कायप्रवृत्त्या न मनोमात्रेणेत्य-र्थः, स्पष्टयन्ति ग्रहणकाले विधिना गृह्णन्ति, पालयन्ति पुनः पुनरभ्यासकरणेन रक्षन्ति, पूरयन्ति मात्राभिन्दक्षरादिभिरध्येतृदोषाद-परिपूर्णं कुर्वन्ति, तीरयन्ति अपिस्मृत जन्मपार नयन्ति कीर्त्तयन्ति स्वनामभिः साध्यायकरणतो वा सशब्दयन्ति, सम्यगाज्ञया आराधयन्ति सम्यग्यथावत् आज्ञया तदुक्तार्थरूपया गुरुनियोगात्मिकया वा आराधयन्ति तदुक्तक्रियारणतः फलद कुर्वन्तीत्यर्थः,

तेभ्योऽपि नम इति प्रक्रमः । “अहं च नाराहेमि” यच्चाहं-नाराधयामि प्रमादतो नानुपालयामि, तस्सत्ति षष्ठीसप्तम्योरभेदात्त-
स्मिन्नाराधनविषये ‘मिच्छामिदुक्कण्डन्ति’-मिथ्या मे दुष्कृतमिति स्वदुश्चरितानुतापसूचकं स्वदोषप्रतिपत्तिस्वचकं वा प्रतिक्रमणमिति
परिभाषितं वाक्यं प्रयच्छामीत्यर्थः । साम्प्रतं प्रस्तुतसूत्रपरिसमाप्तौ श्रुतदेवतां विज्ञपयितुमाह—

सुयदेवया भगवर्ह नानावरणीयकर्मसंघायं । तेसिं खवेउ सययं जेसिं सुयसायरे भत्ती ॥ १ ॥

सुयदेवया भगवर्ह नानावरणीयकर्मसंघायं । तेसिं खवेउ सययं जेसिं सुयसायरे भत्ती ॥ “सव्वं च लक्खणोवेयं सम-
श्रुतमर्हत्प्रवचनं, श्रुताधिष्ठात्री देवता श्रुतदेवता, संभवति च श्रुताधिष्ठातृदेवता यदुक्तं कल्पभाष्ये—“सव्वं च लक्खणोवेयं सम-
हिट्टन्ति देवता । । सुत्तं च लक्खणोवेयं जेण सब्बणुभासियं ति” भगवती पूज्या, ज्ञानावरणीय कर्मसङ्घातं ज्ञानाशातनाया उद्भूतं
(ज्ञानाघ्नं) कर्मनिवहं तेषां प्राणिनां क्षपयतु क्षयं नयतु सततमनवरतं, येषां किमित्याह—श्रुतमेवातिगम्भीरतया अतिशयरत्नप्रचुरतया
च सागरः—समुद्रः—श्रुतसागरस्तस्मिन् भक्तिर्वहुमानो विनयश्च समस्ततीति गम्यते, ननु श्रुतरूपदेवताया उक्तरूपविज्ञापना युक्ता,
श्रुतभक्तेः कर्मक्षयकारणत्वेन सुप्रतीतत्वात्, श्रुताधिष्ठातृदेवतायास्तु व्यन्तरादिप्रकाराया न युक्ता, तस्याः परकर्मक्षयेऽसमर्थत्वा-
दिति, तन्न । श्रुताधिष्ठातृदेवतागोचरशुभप्राणिधानस्यापि स्मृतुः कर्मक्षयहेतुत्वेनाभिहितत्वात्, यदुक्तं—
“सुयदेवयाए जीए संभरणं कम्मवखयकरं भणियं । नत्थित्ति अक्ककरी व एवमासायणा तीएत्ति ” किञ्चेहेदमेव व्याख्यानं
कर्तुमुचितं, येषां सततं श्रुतसागरे भक्तिस्तेषां श्रुताधिष्ठातृदेवता ज्ञानावरणीयकर्मसङ्घातं क्षपयत्वितिवाक्यार्थोपपत्तेः, व्याख्यानान्तरे
श्रुतरूपदेवता श्रुते भक्तिमतां कर्म क्षपयत्विति सम्यगोपपद्यते इति, श्रुतस्तुतेः प्राग्वहुशोऽभिहितत्वाच्चेति । ततः स्थितमिदमर्हत्पा-
क्षिकी श्रुतदेवतेह गृह्यते इति ।

॥ इति पाक्षिकवृत्तिः समाप्ता ॥

साम्प्रत शेषप्रतिक्रमणविधिरुच्यते-तत्रो उद्धट्टिय पक्वपडिकमणसुत्तकिनावावसाणे विहिणा निसिद्धिा करेमि भन्ते सामा-
इय इत्यादि सञ्च निविट्टपडिकमण कट्टिा उद्धट्टिया तस्स धम्मस्स अञ्चुट्टिओमिस्ति एयमाइय वन्दामि जिणे चउवीसन्ति आ-
लावगपज्जवसाण सुत्त कट्टन्ति, कट्टिए य करेमि भन्ते सामाइयमिच्चाइ काउस्सगदण्डगुच्चारणपुरस्सर उद्धट्टिया चेव मूलुत्तरगु-
णेसु ज एण्डिय तस्स पायच्छिन्नमिस्ति उस्सासयतिगपरिमाण काउस्सगग करेन्ति, तत्थ वारस उज्जोयगरे चिन्तन्ति, चउमासिए
पञ्चसयुस्सासमाण उज्जोयगरे वीस, सनच्छरिए अट्ठुत्तरसहस्सुस्सासमाण उज्जोयगरे चालीस नमोकार च चिन्तति तत्रो
विहिणा पारित्ता चउवीसत्थय पढन्ति, पच्छा उवविट्ठा मुहणतग काय च पडिलेहिच्चा किइकम्म करेन्ति, तत्रो घरणीयलनिहियजा-
णुकरयलुचमङ्गा समग मणन्ति-

इच्छामि खमासमणो अञ्चुट्टिओमि अग्निमन्तरपक्खिय खामेउ पन्नरसणह दिवसाण पन्नरसणह राईण ज किञ्चि
अपत्तिय परपत्तिय भत्ते पाणे विणए वेयावचे आलावे सलावे उच्चासणे समासणे अन्तरभासाए उवरिभासाए
ज किञ्चि मज्झ विणयपरिहीण सुहुम वा बायर वा तुब्भे जाणह अहं न याणामि तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

अस्यार्थ-इच्छाम्यभिलषामि क्षमयितुमिति योगः । 'एवमासमणोत्ति'-हे क्षमाश्रमण ! ओकारान्तत्वं प्राकृतत्वान्न केवलमि-
च्छाम्येव किन्तु 'अञ्चुट्टिओमिस्ति'-अस्मृत्येतोऽस्मि प्रारब्धोऽस्म्यह । अनेनाभिलाषमात्रव्यपोहेन क्षमणक्रियायाः प्रारम्भमाह,-
अग्निमन्तरपक्खियन्ति पक्षाम्यन्तरसम्भवमतिचारमिति गम्यते, क्षमयितुं मर्यादयितुमिति प्रस्तावना । क्षमणमेवाह-

‘पन्नरसणंहति’ पञ्चादशानां दिवसानां, पन्नरसणंहं पञ्चदशानां राईणन्ति, रात्रीणामभ्यन्तरमितिशेषः । ‘जं किञ्चित्’-यत्किञ्चित्-
त्सामान्यतो निरवशेषं वा, अपत्तिर्यं प्राकृतशैल्याऽप्रीतिकमप्रीतिमात्रं, ‘परपत्तिर्यन्ति’-प्रकृष्टमप्रीतिकं परात्ययं वा परहेतुकं उपलक्ष-
न्धः । तत्र भक्ते-भोजनविषये, पाने-पानविषये, विनये-अभ्युत्थानादिरूपे, वैयावृत्त्यै-औपधपथ्यदानादिनो एव तस्सत्ति-पष्टीसप्त-
म्योरभेदात्तस्मिन्न पष्टम्भकरणरूपे, आलापे सकृज्जल्पे, संलापे मिथः कथायां, उच्चासणे समासणे चेति व्यक्तं, ‘अंतरभासाएत्ति’-
अंतरभाषायामाध्यस्य भाष्यमाणस्यान्तरालभाषणरूपायां, उपरिभाषायामाध्यभाषणानन्तरमेव तदधिकभाषणरूपायां, इह समुच्च-
यार्थश्चशब्दो लुप्तो द्रष्टव्यः, यत्किञ्चित्समस्तं सामान्यतो वा, ‘मञ्जुचित्’ मम विनयपरिहीणं शिक्षावियुतत्वमनौचित्यमित्यर्थः संजा-
तमिति रोषः, सामस्त्यं सामान्यरूपतां वा विनयपरिहीणस्यैव दर्शयन्नाह-सूक्ष्मं वा वादरं वा, वाशब्दौ द्वयोरपि मिथ्यादुष्कृतविप-
यतातुल्यतोद्भावनार्थौ, ‘तुम्भे जाणहत्ति’ यूयं जानीथ यत्किञ्चिदिति वर्त्तते, ‘अहं न याणामिचित्’-अहं पुनर्न जानामि मूढत्वाद्यत्कि-
ञ्चिदिति वर्त्ततेऽप्रीतिकविषये विनयपरिहीणविषये च, ‘मिच्छामि दुक्कडन्ति’ मिथ्या मे दुष्कृतमिति स्वदुश्चरितानुतापसूचकं स्वदोषप्र-
तिपत्तिस्वचकं वा प्रतिक्रमणमिति परिभाषितं वाक्यं ग्रयच्छामीति वाक्यशेषः । अथवा ‘-तस्सत्ति’-विभक्तिपरिणामात्तदप्रीतिकं विनय-
परिहीणं च मिथ्या मोक्षसाधनविपर्ययभूतं वर्त्तते, मे मम, तथा-दुष्कृतं पापमिति स्वदोषप्रतिपत्तिरूपमपराधक्षमणमिति-अत्रा-
चार्यो ब्रूते-‘अहमवि खामेमि तुम्भेचित्’ प्रतीतार्थमेवेदमिति । अत्राह-कश्चित्-ननु पुत्रमेव समन्नाथो विसेसओ विपक्खियावराह-
खामणं कयं, ता किं पुणो इयाणि पक्खियं खामेहे, उच्यते-काउस्सग्गाड्डियाणं सुभेग्गभाजसुवग्गयाणं किंचवराहपयं समग्गियं

द्वोज्जा, तस्स रामणानिमित्तं पुरो रामणं करेमोचि, अहवा-सवहेह पक्खपडिक्कमणपरिसमची, तओ पुब्बिछलामणगणान्तरं जं किञ्चि अप्पचियं वित्तहकिरियावइयराइणां समुप्पन्नं तमिहं रामिज्जइचि । अहवा-विही चेव सो कम्मक्खयहेऊ भयवया तइय-वेज्जोसहपओगसरिसो दरिसिओ, ता कायवमिथियि खामणं, न कोइ पज्जणुजोगो कायवो, आणा चेवेह भागवई पमाणन्ति— ततो यया राजानं पुण्य(ण्)माणवा अतिक्रान्ते माइल्लयकार्ये बहुमन्यन्ते यदुत अखण्डितवलसं ते सुण्ठु कालो गतोऽन्योऽप्येवमेवो- पस्थित एव पाक्षिकं विनयोपचारं द्वितीयक्षामणरुद्धेण तथास्थिता एव साधव आचार्यस्य कुर्वन्ति, तच्चेद— इच्छामि खमासमणो पियं च मे जं भे इट्ठाणं अप्पायङ्काणं अभग्गजोगाणं सुसीलाणं सुच्चयाणं सायरिय- उवज्झायाणं नाणेण दसणेण चरित्तेण तवसा अप्पाणं भावेमाणानं बहुसुभेण भे दिवसो पोसरो पम्बो वइक्कतो अन्यो यं भे कल्लाणेण पज्जुवट्ठिओ सिरसा मणसा मत्थणं वन्दामि ।

तत्रेच्छामि-अभिलषामि वक्ष्यमाणं वस्तु, हे क्षमाश्रमण ! कुतोपि कारणादप्रियमपि किञ्चिदिष्यत इत्याह-प्रियमभिमतं, चशब्दः समुच्चये, मे मम, किं तदित्याह-यद्दमे भगता हृष्टानां रोगरहितानां, तुष्टानां तोषवता, अथवेदं हर्षतिरेकप्रतिपादनार्थमेकार्थि-कपदद्वयोपादानं, अल्पातङ्कानां अल्पशब्दस्याभावचनत्वात् सद्योधातिरोगवर्जितानां, सामान्येन वा नीरोगाणां स्तोक्रोगाणां वा सर्व्वथा निरुजत्वस्यासम्भवात्, “अभग्गजोगाणन्ति”-अभग्नसयमयोगानां “सुसीलाणसुवयाणन्ति”-व्यक्त-साचार्योपाध्यायानां अनुयो-गाध्याचार्योपाध्यायोपेतानां, ज्ञानादिना आत्मानं भावयता, बहुशुभेन अत्यर्थश्रेयसा ईषदनुभूतेन वा सर्व्वथा शुभस्यासम्भवात्, भे

इति भो भगवन्तः, दिवसो दिनं, किंविधः?, पौषधः-पर्वरूपः; तथा पक्षोऽर्धमासरूपो व्यतिक्रान्तोऽतिलङ्घितः, अन्यत्र पक्ष इति वर्तते भे-भवतां, कल्याणेन-शुभेन युक्त इति गम्यते, पर्युपस्थितः-प्रक्रान्त इति । एवं पुष्पमाणव इव मङ्गलचनमभिधाय प्रणाममाह-शिरसा मनसेति व्यक्तं, चशब्दश्चेह समुच्चयार्थो द्रष्टव्यः । मत्थणवन्दापि नमस्कार वचनमव्युत्पन्नं समयप्रसिद्धमतः शिरसेत्यभिधायापि यन्मस्तकेनेत्युक्तं तददुष्टं, यथैषां वलीवर्दानां एष गोस्वामीति, गोस्वामिन् शब्दस्य स्वामिपर्यायतया लोके रूढत्वादिति अत्राचार्य आह—तुब्भेहिं संमं ति ।

शुष्माभिः सार्धमेतत्संपन्नमित्यर्थः । अथ चैत्यवन्दापनं साधुवन्दापनं च निवेदयितुकामा भणन्ति—

इच्छामि खमासमणो पुब्बिं चेइयाइं वंदित्ता नमंसित्ता तुब्भण्हं पायमूले विहरमाणेणं जे केइ ग्रहुदेवसिया साहुणो दिट्ठा समाणा वा वसमाणा वा गामाणुगामं दूइज्जमाणा वा रायणिया (सं) पुच्छंति ओमरायणिया वन्दन्ति, अज्जया वन्दन्ति, अज्जिआओ वन्दन्ति, सावया वन्दन्ति, सावियाओ वन्दन्ति; अहंपि निस्सल्लो निक्कसाओ तिककद्दु सिरसा मणसा मत्थण वन्दाभि, अहमवि वन्दावेमि चेइयाइं ।

इच्छाम्यभिलषामि चैत्यवन्दापनं साधुवन्दापनं च भवतां निवेदयितुमिति वाक्य शेषः । “खमासमणोत्ति”-व्यक्तं पुष्पन्ति पूर्वकाले विहारकालवत् । “चेइयाइन्ति”-जिनप्रतिमाः, “वन्दित्ति”-स्तुतिभिः, “नमंसित्ति”-प्रणामतः सहसत्कचैत्यवन्दना ह्येतदहं करोमीति प्रणिधानयोगात्, क वन्दित्वेत्याह—“तुब्भण्हन्ति”-शुष्माकं “पादमूलेत्ति”-चरणसंनिधौ ततश्च विहरमाणेणन्ति

ग्रामानुग्राम सञ्चरता मया—“जे केइत्ति”—ये केचन सामान्यतः, “बहुदेवसिया”—बहुदेवसपर्यायाः, “साहुणो दिट्ठा”—इति व्यक्त, क्रियावास्त इत्याह—“समाणा वचि”—जहावलपरिक्षयात् वृद्धवासितया आश्रितक्षेत्रादवहिर्निर्गतो, “वसमाणावचि”—विहारवन्तो विहारश्च तेषां श्रुतवदे मासकल्पेन वर्षाकाले चतुर्मासकल्पेनेत्यत एवाह—“गामाणुगाम”—ग्रामश्च प्रतीतोऽनुग्रामश्च तदनन्तर इति ग्रामानुग्राम तद् द्रव्यन्तं गच्छन्तः, अथवा-ग्रामादावेकरात्रिक वसन्त आहिण्डका इत्यर्थः, वाशब्दाः समुच्चयार्थः, इह स्थाने तेषु मध्ये इति वाक्यशेषो द्रष्टव्यः—“राइणियत्ति”—राल्लिका भावरत्नव्यवहारिणः बृहत्पर्याया आचार्या इत्यर्थः । “पुच्छन्ति”—मा प्रश्नयन्ति मया वन्दिताः सन्तो भवता शरीरकुशलादिवाचांमिति गम्य, “ओमराइणियत्ति”—अवमराल्लिका भवतः प्रतीत्य लघुतरपर्याया आचार्या एव वन्दन्ते भवतः प्रणमन्ति कुशलादि तु प्रश्रयन्त्येव, “अज्जया वन्दन्ति”—सामान्यसाधवो वन्दन्ते, एवमार्थिकादयोऽपि, तथाहमऽपि तान्यथा दृष्टसाधून्निःशल्यादिविशेषेण वन्दे, शेष प्राग्वत्, तथा—“अहमवि वन्दावेमि चेइयाइन्ति”—तान् यथादृष्टसाध्यादीन् वन्दापयामि चैत्यानि, यथा-अमुन् नगरादौ गुणभक्ते चैत्यानि वन्दितानि तानि च यूय वन्दध्वमित्येवमिति एव शिष्येणोक्तः सन्नाचार्यः प्रत्युत्तरयति यथा—मत्थण्ण वन्दामि अहपि तेहिंस्स ति

मस्तकेन वन्देऽहमपि तानिति, ये मम वार्त्तासप्रच्छन्नादि कुर्वन्तीति भावः—“अन्ने भणन्ति अहमवि वन्दावेमिस्सि” । तत आत्मानं गुरुणा निवेदयन्ति वृत्तीयक्षामणरुद्धेण, तच्चेद—

इच्छामि खमासमणो उवट्ठिओमि तुब्भण्हं सन्तियं अह्मकप्पं वा वत्थं वा पडिगण्हं वा कंवलं वा पायपुंछणं वा रय-
हरणं अक्खरं वा पयं वा गाहं वा सिलोणं वा अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा वागरणं वा तुब्भेहिं चियत्तेणं विन्नं मए
अविणण्ण पडिच्चियं तस्स मिच्छामिदुक्खंडंति ।

“इच्छामि खमासमणोचि” इह स्थाने आत्मानं निवेदयितुमिति वाक्यशेषो दृश्यः “उवट्ठिओमिति” उपस्थितोऽसि आत्मा-
निवेदनायेतिशेषः “तुब्भण्हं सन्तियं” युष्माकं सत्कं युष्मदीयमिदं सर्वं यदस्मत्परिभोग्यं किंभूतं किन्तदित्याह—“अह्मकप्पन्ति”—
यथाकल्पं कल्पानतिक्रान्तं स्थविरकल्पोचितं कल्पनीयं चेत्यर्थः; वस्त्रादि प्रतीतं नवरं ‘पडिगण्हन्ति’ पात्रं, “पायपुंछणन्ति” पादशोच्छनं
रजोहरणं “अट्ठवत्ति”—अर्थः स्रज्वाभिधेयः प्राकृतत्वाच्च नपुंसकनिर्देशः “पसिणं वत्ति”—प्रश्नः पण्डिताभिमानी परो माननिग्रहाय
यत्प्रश्नयति “वागरणन्ति”—व्याकरणं तथैव परेण प्रक्षिते यदुत्तरं दीयते, वागव्दाः समुच्चयार्थः; एवं वस्त्रादिनिवेदनाद्वारेणात्मानं
गुरूणां निवेद्य युष्माभिरेवेदं वस्त्रादिकं मे दत्तं इत्यावेदने तद्वर्णेह च संभविनमविनयं क्षमयन्निदमाह—“तुब्भेहिल्यादि”—
“तुब्भेहिन्ति”—युष्माभिः, “चियत्तेणन्ति” ग्रीत्या दत्तं मया त्वविनयेन प्रतीक्षितमत्र यदिति शेषो दृश्यः । “तस्सत्ति” तत्र मिथ्या-
दुक्खतमिति प्राग्वत् । एवमुक्ते आचार्यो ब्रूते—आचारियसन्तिग्रं ति ।

पूर्वाचार्यसक्तयेतदिति किं ममात्रैति अहद्वारवर्जनार्थं, गुरुषु भक्तिख्यापनार्थं चैतदिति । अथ यच्छिक्षां ग्राहितास्तमनुग्रहं
बहुमन्यमाना आहुः—

इच्छामि एमासमणो अहमपुवाइ कयाइ च मे किइकम्माड आयारमन्तरे विणयमन्तरे सेहिओ सेहाविओ सङ्गहिओ उवगहिओ सारिओ वारिओ चोइओ पडिचोइओ चियत्ता मे पडिचोयणा उवट्टिओडह तुब्भणह तवतेयसिरीण इमाउ चाउरन्तससारकन्ताराओ साहट्टु नित्थरिस्सामित्तिक्कट्टु सिरसा मणसा मत्थएण वन्दामि । इच्छामि-अभिलषामि, अहमपूर्वाण्यनागतगलीनानि, कृतिकर्माणीतिर्योगः, वर्तुमिति वाक्यशेषः । “खमासमणोत्ति”-व्यक्त तथा कृतानि पूर्वकाले, चः-समुच्चये, “मेत्ति”-मया कृतिकर्माणि वैयावृत्यविशेषा भवतामिति गम्यते, तेषु च “आयारमन्तरेत्ति”-आचारान्तरे क्वचिज्ज्ञानाधाचारविशेषे त्रिपयभूते आचारव्यवधाने वा सति, ज्ञानादिक्रियाया अकरणे सति इति भावः । तथा-“विणय-मन्तरेत्ति”-विनयान्तरे आसनदानादिविनयविशेषे त्रिपयविभूते विनयविच्छेदे वा तदकरणे इत्यर्थः । ‘सेहिओत्ति’-शिक्षितः स्वयमेव गुरुभिः शिक्षा ग्राहित इत्यर्थः । सेधितो निष्पादित आचारविशेषविनयविशेषेषु कुशलीकृत इत्यर्थः । “सेहाविओत्ति”-शिक्षापितः सेधा-पितो वा उपाध्यायादिप्रयोजनतः । तथा-“सङ्गहिओत्ति”-सङ्गृहीतः शिष्यत्वेनाश्रितः । तथा-उवगहिओत्ति”-उपगृहीतः ज्ञानादिभिः वत्तादिभिथोपष्टम्भितः । तथा-“सारिओत्ति”-सारितो हिते प्रवर्तितः, कृत्य वा स्मारितः, “वारिओत्ति”-अहिताग्निवारितः, “चोइओत्ति”-सयमयोगेषु स्वलितः सन्नयुक्तमेतद्वाद्या विधातुमित्यादिवचनेन प्रेरितः । “पडिचोइओत्ति”-तथैव पुनः पुनः प्रेरित एव “चियत्ता मे पडिचोयणत्ति”-चियत्ता प्रीतित्रिपया नत्तहट्ठारादप्रीतेति मे मम प्रतिप्रेरणा भगद्भिः क्रियमाणेति, उपलक्षणं चैतच्छिष्टादेरिति । ततश्च “उवट्टिओहन्ति”-उपसितोऽहमस्मि प्रतिप्रेरितार्थसंपादनविषये कृतोद्यम इत्यर्थः । तथा-“तुब्भणह तवतेयसिरीण” युष्माकं तपस्सेव-श्रिया भयदीयया तपःप्रभासपदा हेतुभूतया-“ इमाउत्ति ” इतः प्रत्यक्षात्, “चाउरन्तससारकन्ताराउत्ति”-चतुरन्त

चतुर्विभागं नरकत्वादिभेदेन तदेव चातुरन्तं तत्संसारकान्तारं च भवारण्यमिति ममासस्तस्मात्, “साहदृत्ति”-संहृत्य कपायेन्द्रिययो-
गादिभिर्विस्तीर्णमात्मानं संक्षिप्येत्यर्थः । “नित्यरिस्सामिति”-लङ्घयिष्यामि, “इतिकृष्टु”-इतिकृत्वा इतिहेतोः “सिरसा मणसा
मत्थएण वन्दामिति” प्राग्वत्, इह भगवन्तमिति वाक्यशेषः; इहाचार्यवचनम्-नित्यारगपारगा होह.

निस्तारकाः संसारसमुद्रात् प्राणिनां प्रतिज्ञाया वा (थ) पारगाः संसारसमुद्रतीरगामिनो भवत यूयमित्याशीर्वचनमिति । पच्छा
देवसियं पडिक्कमन्ति, तत्थ खामणानिमित्तं किइक्कम्मं करित्ता भणन्ति-इच्छामि खमासमणो अब्बुद्धिओमि अब्भिन्नतरदेवसियं पडिक्क-
खामेउं, जं किंचि अपत्तियमित्यादि, पच्छा साहुदुगं खामन्ति, तओ आयरियस्स य अल्लियावणनिमित्तं पडिक्कमणवत्तं निवेयणत्थंति
भणियं होह किइक्कम्मं करन्ति, तओ दुरालोहयं वा होल्ला दुप्पडिक्कन्तं वा हुडा अणाभोगाहणा कारणेण, अओ पुणोचि कयसामाह-
आइसुत्तुच्चारणा चरित्तविसोहणत्थमेव पञ्चासुस्सासपरिमाणं काउस्सगं करन्ति, तओ नमोक्कारेण पारित्ता विसुद्धचरित्ता विसुद्ध-
चरित्तदेसयाणं दंसणविसुद्धिनिमित्तं नासुक्कित्तणं करन्ति लोगस्सुजोयगरे इत्यादि, तओ दंसणविसुद्धिनिमित्तं पणुवीससासपरिमाणं
काउस्सगं करेन्ति, तओ नमोक्कारेण पारित्ता नाणविसुद्धिनिमित्तं सुयनाणत्थयं पढन्ति,-पुक्खवरदीवट्टे इत्यादि; तओ सुयनाण-
विसुद्धिनिमित्तं पणुवीससासपरिमाणं काउस्सगं करन्ति तओ नमोक्कारेण पारित्ता सिद्धत्थयं पढन्ति सिद्धाणं बुद्धाणमित्यादि,
तओ सेज्जादेवयाए काउस्सगं करन्ति, तत्थ सत्तावीससासे पुरन्ति इत्यावक्कयक्कचूर्णिः । आयरणओ अट्टत्ति, तओ विहिणा निसिइत्ता
शुहपोत्तियं ससीसोवरियं कायं च पडिलेहित्ता आयरियस्स वन्दरणं करेन्ति, तं च जहा रओ मणूसा आणत्तियाए पेसिया पणामं

काञ्चन गच्छन्ति, त च सुहृन् काञ्चन पुणो पणामपुवग निवेदन्ति, एव साहुणोवि गुरुममाइडा वन्दनपुवग चरित्ताइ विसोहिं काञ्चन पुणोवि सुकयकिइक्कम्मा सन्ता गुरुणो निवेदन्ति, भयव कय पेसण आयरिसोहिकारगन्ति (निवेयणत्थन्ति) त च काञ्चन पुणो उक्कड्डया आपरियामिमुहा विणयरइयल्लिपुडा चिट्ठन्ति, जावायरिया वड्डुमाणीओ सरेणं छन्दमा वा तिन्नि थुईओ भणन्ति, इमेवि अञ्जलि-मउलियग्गहत्था एक्केक्काए समत्तीए नमोक्कारग करोन्ति, सबड्डुमान सिरसा प्रणमन्तीत्यर्थः । केचिदत्र नमो खमासमणान्ति भणन्ति, पच्छ सेसगावि तिन्नि थुइओ तहेव भणन्ति, त रयणिं नेव सुत्तपोरिसी नेव अत्थपोरिसी, थयथुइओ भणन्ति, जस्स जेत्तियाओ इन्तित्ति । देवसिए पुण ताव चिट्ठन्ति जात्र गुरुथुइगहण करोन्ति, तओ पढमथुइसमत्तीए गुर कट्ठन्ति, विणओत्ति, सेसाओ दोन्नि सहेव भणन्ति । एय सुओक्तः पाक्षिरूपतिरुमणविधिः । चाउम्मासियसवच्छरिएसु वि एस चेव विही, वित्तो लामणगकाउस्सग्गेसु, त्तो पुण लामणत्थ दसिओ चेव, तहा चाउम्मासियसवच्छरिएसु मूलगुणउत्तरगुणड्डयाराण आलोपण दाउण पडिक्कमन्तित्ति, खित्त-देवपाए य उस्सग्गा करेन्ति, केड पुण चाउम्मासिगे सेजादेवपाए नि उस्सग्गा करेन्ति, तहा पभाए आवस्सए कए निरइयारावि पञ्चरुल्लणग गेण्हन्ति, पुव्वगहिए य अभिग्गहे निवेदिन्ति, ते य सम्म जइ नाणुपालिया तओ तव्विसुद्धिनिमित्त उस्सग्गा करेन्ति, पुणोवि अन्ने गेण्हन्ति, निरभिग्गहाण य न वड्डुइ अच्छिउन्ति, सवन्च्छरिए य आवस्सए एक पज्जोसवणक्कपो कट्ठिज्जइ, दिवसओ कट्ठिउ चेव न कप्पइ, नावि सज्जर्द्धिहत्थपासत्थाईण पुरओ, जत्थवि खेत्त पडुब कट्ठिज्जइ, जहाणन्दपुरे मूलचेइयधरे दिवसओ सव्वजणमक्कल कट्ठिज्जइ, तत्थवि साहू नो कट्ठइ, त माहू सुणिज्जा ण दोसो, पासत्थो कट्ठइ, पासत्थाण वा कट्ठगस्स असइ दण्डिगेण सट्ठेहिं वा अब्भत्थिओ ताहे दिवसओवि कट्ठइ, तत्थ इमो विही, अणागय चेव पञ्चरत्तेण अप्पणो उवस्सए पाउसिए आवस्सए कए

कालं घेतुं काले सुद्रे असुद्रे वा पट्टवेत्ता काड्डुजइ, एव चउसु राइंसु, पज्जोसवणराईए पुण कड्डिए सव्वे साहवो समप्पावणियं काउस्सगं करेन्ति, पज्जोसवणकप्पस्स समप्पावणियं करेमि काउस्सगं, जं खण्डियं जं विराहियं जं न पडिपूरियं सब्बो डण्डओ कड्डियवो जाव वोसिरामित्ति, लोगस्सुज्जोयगरं चिन्तेज्जण उस्सारित्ता पुणो लोगस्सुज्जोयगरं कट्टन्ता सब्बे साहवो निसीयन्ति, जेण कड्डिओ सो ताहे कालस्स पडिक्कमइ, ताहे वरिसाकालट्टवणा ठविज्जइ, तंजहा-ज्जोयरिया कायव्वा, विगइनवगपरिच्चाओ कायव्वा, जम्हा निच्चो कालो, बहुपणा मेइणी, विज्जगज्जियाईहि य मयणो दिप्पइ, पीढफलगइसन्थारगाणं उच्चारपासवणखेलमत्तगाण य जयणाए परिभोगो कायव्वा, निच्चं लोओ कायव्वा, सेहो न दिक्खियव्वा, अभिनवो उवही न गहेयव्वा, दुगुणं वरिसोवगहोवगरणं धरेयव्वं, पुव्वगहियाण छारडगलाईणं परिच्चाओ कायव्वा, इयरेसिं धारणं कायव्वं, पुव्वावरेणं सकोसजोयणाओ न गन्तव्वमित्यादि, किं च पक्खचाउम्माससंवच्छरियपव्वेसु जहक्कम्मं चउत्थछट्टट्टमतवो चेइयवन्दणपरिचाडी सट्ठुणं धम्मकहा य कायव्वत्ति। इयाणिं पसङ्गओ राइयविही भन्नइ-पढमं चिय सामाइयं कड्डिज्जण चरित्तविसुद्धिनिमित्तं पणुवीसुस्सासपरिमाणं काउस्सगं करन्ति, तओ नमोक्कारेण पारेत्ता दंसणविसुद्धिनिमित्तं चउवीसत्थयं पढन्ति, पणुवीसुस्सासपरिमाणं काउस्सगं करन्ति, एत्थवि नमोक्कारेण पारित्ता सुयना-णविसुद्धिनिमित्तं सुयनाणत्थयं कट्टन्ति, तत्थ य पाउसियथुइमाइयं अहिगयकाउसगपज्जन्तमइयारं चिन्तेन्ति, आह-किंनिमित्तं पढमकाउस्सग एव राइयाइयारं न चिन्तेन्ति, किंवा पढममेव तिन्नि काउस्सगो करन्ति, उच्यते-निहाभिभूया न संभरन्ति, सुहु अइयारं न चिन्तेति, मा य अन्धयारे वन्दन्ताणं अन्नोन्नधट्टणं, अन्धयारे वा अदंसणाओ मन्दसद्धा न संभवन्दणं देन्तित्ति काउ पच्चूसे तइए निसाइयारं चिन्तन्ति, आइए य तिन्नि काउस्सगा भवन्ति, न पुण पाउसिए जहा एक्कोत्ति, तओ चिन्तेज्जणइयारं

नमोकारेण पारित्या सिद्धाण श्रु क्राउण पुष्यभिणिएण विहिणा वन्दिता आलोएन्ति, तओ सामाइयपुष्यग पाडिकमन्ति, तओ वन्दणपुष्य खामेन्ति, तओ कयकिईकम्मा सामाइयपुष्य काउसग्ग करेन्ति, तस्य य चिन्तेन्ति कम्मि निओगे निउता वय गुरुहिं, तो तारिस तव पवज्जामो जारितेण तस्स हाणी न भग्ग, तओ चित्तेति-छम्माम खवण करेमो न सकेमो, एगादिवसेण ऊण तहावि न सकेमो, एव जाव एक्कणतीसाए ऊण, एव पञ्च मासे, तओ चत्तारि, तओ तिग्गि, तओ दुक्कि, तओ एक, तओ एगेण दिणेण ऊण जाव चउदसहि ऊण न सकेमो, तओ वत्तीसइम तीसइम जाव चउत्थ, आयविल एगट्टाणय एकासणय गुरिमइ निग्गिगइय पोरिसि नमोकारसहिय वचि, एव जे समत्था तव काउ तमसढमावाहियए करेन्ति पच्छा वन्दिता गुरुसक्खिय पवज्जन्ति । सन्वेय न नमोकरइत्तगा समग्ग उड्डित्ति, काउन्ति वोसिरावेन्ति निसीयन्ति य, एव पोरिसिमाइसु विग्गमा, तओ तिग्गि श्रुओ जहा पुष्य, नवरमप्पसइग देन्ति जहा घरकोइलाई सत्ता न उड्डित्ति, तओ देवे वन्देन्ति, तओ बहुवेल सदिमावेन्ति, तओ गुरुणन्तग पाडिलेहिता रयहरण पाडिलेहिन्ति, पुणो ओहिय सदिमावेन्ति, पाडिलेहिन्ति य, तओ वसहिं एमज्जिय काल निवेदेन्ति, अण्णे भण्ति श्रुइसमणन्तर काल निवेएन्ति, एव च पाडिकमणकाल तुलति जहा पाडिकमन्ताण श्रुअवसाणे चेन पाडिलेहणवेला भग्गति ॥ समासा चेय शास्त्रानुसारिणी पाक्षिकप्रतिक्रमणवृत्तिरिति ॥

॥ कतिरिय श्रीयशोदेवधरिभिः । सुवत् १३२७ वर्षे माघ सुदि ९ बुधे । मगल महाश्रीः शुभंभवतु भद्रमस्तु ॥ प्र० ॥

चन्द्रकुलाम्बरशशिनो भव्याम्बुजचोद्यनैकदिनपतयः । गुणगणरत्नसमुद्रा आसन् श्रीवीरगणिभिः ॥ १ ॥
ये च-शुद्धध्यानजलापनीतकलिलाः सज्ज्ञानदीपालयाः निःसङ्गवतभारधारणरतास्तीव्रे तपस्युद्यताः ।
ग्रीष्मे आतपवेदनां गुरुतरां जेतुं सदोपस्थिता, हेमन्तेषु च शर्वरं हिमभरं सोढुं सदा निश्चलाः ॥ २ ॥
श्रीचन्द्रसूरिनामा तेषां शिष्यो बभूव गुणराशिः । आनन्दितभव्यजनः संशितसंशुद्धसिद्धान्तः ॥ ३ ॥
कलिकालदुर्लभानां गुणरत्नानां (लब्धीनां यो) निधानमनवयम् । समयावदानबुद्धिस्तथापरो देवचन्द्रगणिः ॥ ४ ॥
श्रीचन्द्रनामसूरेः पादपङ्कजसेविना । हृद्भेयं प्रस्तुता वृत्तिः श्रीगोदेवसूरिणा ॥ ५ ॥
गम्भीरमेतदार्थं न चोद्दने शक्तिरस्ति मम दक्षा । नापीह संप्रदायः सम्यग्वहवश्च पाठगमाः ॥ ६ ॥
शास्त्रानुसारात्सुखबोधपटैरात्मीयशक्त्या विभृतं तथापि ।

यच्चेह किञ्चिद्विषयं निबद्धं तत्रास्तु मिथ्या मम दुष्कृतं हि ॥ ७ ॥

अणहिलपाटकनगरे सौवर्णिकेनेमिचन्द्रसत्कायाम् । वरपौषधशालायां राज्ये जयसिंहभूपस्य ॥ ८ ॥

विशारदैः सूखैर्विहारिभिर्विशोधिता यत्नपरायणैरियम् ।

तथापि यन्यूनमुत्ताधिक पद तच्छोधनीय कुशलैः कृपापरैः ॥ ९ ॥

शुभाशयवशाच्चेह यन्मया सुकृत कृतम् । ते भूयान्ममाभ्यासः सर्वदैव जितगमे ॥ १० ॥

एकादशशतैरधिकैरशीत्या विक्रमाद्भूतैः । द्वे सहस्रे शतैरधिकैः सप्तभिर्घन्थमानतः ॥ ११ ॥

यावल्लवणसमुद्रो यावन्नक्षत्रमण्डितो मेरुः । यावच्चन्द्रादित्यौ तावदिदं पुस्तकं जयतु ॥ १२ ॥

॥ मङ्गलमस्तु ॥ इति सूखित्रीयशोदेवकृता पक्खीसूत्रटीका ॥



॥ इति समाप्त्यं सन्नामणक-पादिक-सूत्रवृत्तिः ॥

